SATSAI

of

TULSIDAS

edited by

Vihari Lal Chaube

1888-97

Calcutta The Asiatic Society

BI 121

121

[illegible]स्थ (य) के स्थान में चवर्गीय (ज) दिया गया है जैसे १०वें पृ० सञ्जोगाऽऽदि। जहां ओकार लघु पढ़ा गया है वहां ो लिखा गया है जैसे ११वें पृष्ठ में (राम सों)। जहां केवल अ है तहां उ पढ़ा गया है क्योंकि बहुतेरे विद्वानों का मत है कि तुलसी-दास जी उकार को विशेष काम में लाते थे और यह मीठा भी सुन पड़ता है जैसे १३ वें पृष्ठ में तुलसी-दास के स्थान में दासु है। जहां एकार ह्रस्व पढ़ा जाता है वहां उसका आ कार उलट दिया गया है जैसे १०वें पृष्ठ में। इसी प्रकार कई एक चिह्न हैं जिनका सङ्केत आगे दिखलाया है॥

पटना कौलेज बांकीपुर
ता: १ नवम्बर १८९६

बिहारी लाल चौबे.

अक्षरों के बदलने का कारण॥

भाषा की कविता में प्रायः दीर्घ अक्षर और मात्रा ह्रस्व पढ़े जाते हैं परन्तु उनके लिखने का और छापने का कोई उपाय नियत न था। श्रीमान् डाक्टर ग्रिअरसन् और डा० हार्नली महाशयों की सूचना पर बंगाल एसियाटिक् सोसाइटी की भाषा पुस्तकों में नीचे लिखे (टाइप्) दीर्घ आदि के ह्रस्व लिखने के लिये इस पुस्तक में लिये गये हैं॥

स्वरवर्ण।

इनके स्थान में।	ये लिये गये हैं।	पृष्ठ।	उदाहरण।
आ	ऽऽ	११	—
ओ	ो	११	रामसों
औ	ौ	११	—
ए (उलटा) ए ...	(े) ...	१०	एक
ऐ (उलटा) ऐ ...	(ै) ...	—	—

व्यञ्जन भी जैसे साधारण लोगों के मुख से उच्चारित होते हैं वैसे लिखे गये हैं।

इनके स्थान में।		ये लिखे गये।		पृष्ठ।	उदाहरण।
श ...	...	स ...	...	१	सीरामं
समस्त पद	...	——	...	१	जन-मन——
ण ...	...	न ...	...	२	निरवान
य ...	...	ज...	...	१०	सज्जोगादि
क्ष ...	...	च्छ	...	११	प्रतच्छ
ष-श ...	...	ख-श	...	१३	भूखन
ज्ञा ...	...	ग्य...	...	१५	ग्यान
कृ ...	...	क्रि...	...	२१	क्रिपान
ऋ ...	...	रि	...	८६	रिपुपति
नृ ...	...	न्रि	...	९५	न्रिप
गृ ...	...	ग्रि	...	११८	ग्रिहं
दृ ...	...	द्रि	...	१२२	द्रिग
इत्यादि	...		...		

तुलसी-सतसई का सूचीपत्र।

प्रथम सर्ग।

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
१ से २ तक,	(मङ्गलाचरण) रामबन्दना	१
३	राम को जाननेवाला मोक्षरूप है	२
४	राम कामनाहीन हैं...	२
५	विराट्रूप राम हैं...	३
६	राम पिता और सीता मा हैं...	३
७ से ८ तक,	राम-भक्त को दुःख नहीं होता न वे घर छोड़ कहीं जाते	४
९	सीता-राम अज्ञानी भक्त की रक्षा करते हैं ...	४
१०	सीता बुद्धि और राम विवेक हैं...	४
११	तीनों देवमय राम की दया से ग्रन्थ बनता है ...	५
१२	राम और सूर्य आदि का रूपक...	५
१३	राम सम और कोई गुरु नहीं है	५
*१४ से १९ तक	सब पापों के हारी राम इस नाम का अर्थ ...	६
२०	राम-भजन बिना मुक्ति असम्भव...	८
२१	सतसई (ग्रन्थ) बनाने का सम्वत् और दिन आदि ...	९
२२	सतसई में वर्णित विषय	९
२३	गुरु से पढ़ने पर इस का पूरा ज्ञान होगा ...	९
२४	आठों गणों के नाम आदि	१०
२५ से २६ तक	गुरु लघु पढ़ने आदि का विचार	१०
२७	उदाहरण और राम आदि के गणों का विचार ...	११

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
२८	राम नाम का सहस्रनाम तुल्य होना और चारो प्रकार के नायकों की सूचना... ...	११
२९	शोभ आदि का रूप और ९ रसों की सूचना ...	१२
३०	मुख और कमल का रूपक	१३
३१	काव्य और केश आदि का रूपक	१३
३२	रामयश और स्त्रीमुख आदि का रूपक... ...	१३
३३	रामयश और कवि की उक्ति का रूपक... ...	१४
३४	रामभजन बिन दोनों लोक नष्ट	१४
३५	तुलसी रामभजन न छोड़ेंगे	१४
३६	बिना भजन सब साधन व्यर्थ	१५
३७	राम-भक्ति बिना मुक्ति असम्भव	१५
३८	राम नाम और विद्याओं का रूपक	१५
३९	राम नाम बिना सब मनोरथ झूठा	१६
४०	रामचरित और बाग का रूपक	१६
४१	राम-भजन से दोनों लोक सिद्ध	१६
४२	साधुस्वभाव लक्षण	१७
४३	राममहिमा अपूर्व	१७
४४	राम और काम दोनों विरुद्ध	१७
४५	राम के न रहने से माया प्रबल	१८
४६	राम-भजन में समय बिताओ	१८
४७	रामभक्ति सब से अधिक चतुरता	१८
४८	रामप्रेम बिना चतुरता व्यर्थ	१९
४९	प्रेम और शरीर का रूपक	१९
५०	राम और वृक्ष आदि का रूपक	१९
५१	राममुखचन्द्र और भक्तनेत्रचकोर	२०

दोहे की संख्या।	विषय।	पृष्ठ संख्या।
५२	अमृत और रामपद का रूपक	२०
५३	भक्त दास होना कठिन	२०
५४	रामभक्ति और नीति की भलाई	२१
५५	अपराधों की क्षमा और सन्तोष	२१
५६	सेवा की उत्तमता	२२
५७	सब बाधक हैं	२२
५८	रामकृपा से कामना नाश	२२
५९	राम से प्रेम उचित	२२
६०	प्रेम बिना सब उपाय व्यर्थ	२३
६१	राम बिना सुख व्यर्थ	२३
६२	राम बिना सब स्वार्थी हैं	२३
६३	राम भक्त का आदर करते हैं...	२४
६४	राम बिना मछली सी दशा	२४
६५	राम के भरोसे पाप अनुचित	२४
६६	तुलसी को रामही की आश	२४
६७	सब प्रकार राम से प्रेम उचित...	२५
६८	राम बिना बड़ा हित कोई नहीं	२५
६९	अपनी कुपुत्र से उपमा	२५
७० *से ७२ तक	राम की दया होने से कोई कुछ नहीं कर सकता... राम कृपा से सब भले होते हैं...	२६ २६
७३ से १०७ तक	यहां से चातक और भक्त की और मेघ तथा राम की उपमा दे कर इसके अपूर्व प्रेम का वर्णन है। एक सौ सात के दोहे में राम को स्वातीजल और अपने को चातक बनाया है	२६ एड से ३६ तक

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
१०८	मनहीं में घनश्याम राम हैं चातक के समान दूसरी ठौर खोजना न पड़ेगा	३६
१०९	भक्ति जल और मन मीन का रूपक	३७
११०	कवि की प्रौढ़ोक्ति से रामराग और मृगमन का रूपक	३७

॥०॥ इति प्रथम सर्ग ॥०॥

अथ द्वितीय सर्ग।

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
१ से १२ तक	नाम माहात्म्य और रामप्रेम वर्णन	३८ से ४१ तक
१३ से २३ तक	सन्तोष आदि के विषय में सामयिक उपदेश ...	४१ से ४४ तक
२४ से ३० तक	अङ्क का उदाहरण दिखा कर राम की व्यापकता वर्णन	४४ से ४७ तक
३१	राम परब्रह्म रूप हैं	४७
३२	परमेश्वर पालक है दुःख अपने कर्म्म से मिलता है	४८
३३	साधु और कमल का रूपक...	४८
३४ सें ४१ तक	तीनों गुणों को दिखाकर राम इस नाम में ३ गुण और देवता का होना और इस के अक्षरों का अर्थ	४९
४२ से ४५ तक	राम नाम में राम के भाइयों का रूप... ...	५१
४६	पूर्व कर्म्म के अनुसार जनों का धनादि पाना ...	५२
४७ से ५२ तक	मयूर, कोकिल बिलार का उदाहरण दिखाकर स्वभाव का दृढ़करना	५४
५३	होनहार का स्वभाव ही से होना	५४
५४	आत्मा सुखरूप है	५४
५५ से ५६ तक	स्वाभाविक वार्ता	५५

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
५७	राम का सब धर्म्ममय होना	५६
५८ से ६० तक	राम की व्यापकता	५६
६१	राम, सन्त और परमात्मा एक हैं	५७
६२ से ६५ तक	जीव का लक्षण और काम	५७,५८
६६	तीन प्रकार का देह	५८
६७	राम और साधु का सम्बन्ध	५९
६८	साधुजन सेव्य	५९
६९ से ७० तक	साधु पहिचान	५९
७१	राम कृपा से राम जाने जाते हैं	६०
७२	राम और गुरु का अभेद	६०
७३	दुःख छूटने का उपाय	६०
७४ से ७७ तक	गुरु और राम सीता और बुद्धि आदि का रूपक	६० से ६१ तक
७८	यही भक्ति आदि है	६२
७९	जहां से जो आया वहां ही जायगा	६२
८० से ८२ तक	आत्मा और जल का रूपक...	६२,६३
८३	गुणों के कारण आत्मा का भेद	६४
८४ से ८५ तक	जल और अग्नि के समान आत्मा का विकार और स्वभाव का बदलना	६४
८६	गुरु और दीप का रूपक	६४
८७	सन्त और सत्सङ्ग	६५
८८ से [illegible] तक	जल का मैला होना और नीचे जाना	६५
९०	जो जैसा करता वैसा ही भोगता है	६६
९१	रावन अपने कर्म्म से मरा	६६

दोहों की संख्या।	विषय।	पृष्ठ संख्या।
९२	राम भजन	६६
९३	आत्मा का जड़ हो के दुखपाना	६७
९४	गुरु उपदेश से क्लेशनाश	६७
९५	देह का बनना	६७
९६	इस का अन्तहोना	६७
९७	राम को जानने से परमपद पाना	६८
९८	राम भजन से दुःखनाश	६८
९९	विषय रूपी मद से जीव का मतवाला होकर संसार में फंसना	६८
१००	अद्वैत मत्त	६८
१०१	विषय से तृप्ति नहीं होती	६९
१०२	क्रोधादि पाप मूल	६९
१०३	दयाहीन गन्धहीन फूल के समान है	७०

इति द्वितीय सर्ग।

अथ तृतीय सर्ग।

१से ५३तक,	राम नाम की महिमा और भजन का उपदेश	७१ से ९३ तक
५४	तामस त्याग	९३
५५से ५८तक,	राम नाम स्मरण	९४,९५
५९से ६०तक,	प्रश्नोत्तर	९५,९६
६१	राम को पहचानना	९६
६२से ६४तक,	प्रश्नोत्तर	९६,९७
६५से६८तक,	राम भजन	९८

दोहों की संख्या।	विषय।	पृष्ठ संख्या।
६६ से ७१ तक,	प्रश्नोत्तर	६६
७२	राम नाम...	१००
७३	सामयिक चार अर्थ	१०१
७४	मन को ज्ञान होने बिना दुख	१०२
७५	क्रोधादि त्याग	१०३
७६	असंतोष से नरक	१०३
७७ से ८० तक,	गनसुभाऽसुभविचार	१०४
८१ से ८३ तक,	रामचन्द्र का टहलना	१०६
८४	राम प्रेम	१०७
८५ से ८६ तक,	सामयिक वार्त्ता आदि	१०८
८८ से १०१ तक	काव्य और ग्रन्थ प्रसंशा आदि विषय ...	१०९ से ११५ तक

इति तृतीय सर्ग।

अथ चतुर्थ सर्ग।

१	राम के बिनाँ १४ विद्या जानना व्यर्थ	११६
२	विना ज्ञान के जप तप व्यर्थ	११७
३	भक्ति वा ज्ञान विना पढ़ना व्यर्थ	११८
४	केवल बात से अज्ञान नहीं जाता	११८
५	सब कुछ निकट है अज्ञान के कारण नहीं देख पड़ता	११८
६	भक्ति वा ज्ञान विना अध्ययन व्यर्थ	११६
७	शब्द ब्रह्म को न जानने से सब का भ्रम में पड़ना ...	१२०
८	शब्द ३ प्रकार का विधि, निषेध और मिश्रित। इनमें भ्रम	१२१
९	विना गुरु शब्दज्ञान असम्भव	१२२
१०	भ्रम का कारण, अविचार	१२३

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
११	बिना गुरु ज्ञान असम्भव	१२३
१२	इस भ्रम को साधु जानते हैं	१२४
१३	शब्दज्ञान के बिना सुख दुःख का होना	१२४
१४ से १६ तक	कर्म्म सिद्धान्त। कर्ता हो कर भी ईश्वर दोषी नहीं क्योंकि जीव अज्ञानवश कर्म्म करता और भोगता है	१२५
१७	दो अर्थ। १ शब्द-भ्रम। २ ब्रह्मज्ञान	१२६
१८	शब्द समुद्र साधु सङ्ग से ज्ञातव्य	१२७
१९	बहुतेरे पढ़ते२ मर बिलाये मुक्ति न मिली ...	१२७
२०	श्रवण और नयन का परस्पर बिरोध	१२८
२१	शब्द के तीन भेद	१२९
२२	दृष्टि विरोध आदि	१२९
२३	चर जीवों के पांच भेद	१३०
२४	जीवों का आपस में विरोध	१३०
२५	विराट् (परमेश्वर) में सब का रहना	१३१
२६	वेद के अनुसार सब विराट् रूप	१३१
२७	आत्मा को पहचानने में भ्रम	१३२
२८	कहने सुनने में भ्रम	१३२
२९	मनुष्य मृगतृष्णा में भ्रमते हैं	१३३
३०	इसके भ्रम पर सूगे का दृष्टान्त	१३३
३१	देख कर भी असत्य न समझना	१३४
३२	भ्रम के कारण हिता-ऽहित न बूझना	१३५
३३	अज्ञान के कारण भटकना	१३६
३४	विना राम कामना और विना कामना दुःख नहीं छूटता	१३६
३५	मिथ्या शिक्षित बालक के समान जीव भ्रम में रहते हैं	१३७
३६	लड़के के समान असम्भव काम करते हैं... ...	१३७

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
३७	अहिंसा की प्रशंसा	१३८
३८	अद्वैत मत। मिथ्या वृक्ष और जगत का रूपक। ब्रह्मसे होना	१३८
३९	देवता और सौनकादि ऋषियों का भी इस वृक्ष के अधीन रहना	१३९
४०	जो जन्मा सो जाल में फंस दुःखी हुआ	१४०
४१	कर्म्म के फल अनेक हैं पाते एक भी नहीं ...	१४०
४२	जीव मृगतृष्णा में प्रसन्न रहते हैं	१४१
४३	अन्धपरम्परावत् यह बात चली जाती है... ...	१४१
४४	यह जगत् भेड़ के समान है	१४२
४५	आश्चर्य और असम्भव	१४२
४६	जो न बूझे उसे क्या बुझाना	१४२
४७	वही बात	१४३
४८	ऊपर के कथन का निचोड़ अपने शरीर-ही में राम हैं	१४३
४९	अगोचर का मिलना असम्भव	१४४
५०	मिथ्या उपासकों की निन्दा	१४४
५१	जैसे गुरु वैसे चेला करें नरक में ठेलमठेला ...	१४५
५२	मिथ्या उपासकों की निन्दा	१४५
५३	दो अर्थ। उसी बात का उदाहरण	१४५
५४	सिद्धान्त। ऊपर के कई एक दोहों का निचोड़ ...	१४६
५५	इस ग्रन्थ में आत्मज्ञान कहा है जिस का होना राम के आधीन है	१४६
५६	(तोष की प्रशंसा) राम और तोष एक	१४७
५७	सन्तोष सब धनों से उत्तम	१४८
५८	जीव की मूर्खता	१४८
५९	जगत की असत्यता	१४८

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
६०	उसी का दृष्टान्त	१५०
६१	भक्ति विना तीर्थादि भ्रमण व्यर्थ	१५०
६२	वर्ण और ज्ञान की एकता	१५१
६३	जीव के अपने कर्ता को भूलने पर दृष्टान्त ...	१५२
६४	कर्म्म सिद्धान्त (कर्म्म ही प्रधान)	१५२
६५	गुरु उपदेश के विना भ्रम	१५३
६६	उसी बात का दृष्टान्त	१५३
६७	वही बात। गदहे का दृष्टान्त	१५३
६८	वही बात। कुत्ते का दृष्टान्त	१५४
६९	असम्भव की इच्छा	१५५
७०	व्यर्थ परिश्रम	१५५
७१ से ७५ तक	विषयी पण्डित और वैरागी का वर्णन दृष्टान्त के साथ	१५६ से १५८ तक
७६	अक्षर और शरीर का कारण विन्दु	१५८
७७	अक्षर-ही के योग से जग ऊआ	१५९
७८	ऐन ग़ैन के दृष्टान्त से शरीर और आत्मा का भेद...	१५९
७९	वही विषय...	१६०
८०	केवल पाठ पूजा से क्या लाभ	१६१
८१	गुरु उपदेश से विषय-तृष्णा नाश	१६१
८२	विषय चाह की बुराई बेपरिमाण	१६२
८३	संसार और शरीर का रूपक...	१६३
८४	विषय-वासना छूटने का उपाय	१६३
८५	विषय-रोग दूर होता वा नहीं इसकी परीक्षा ...	१६३
८६	शरीर-कान्ति का घटना बढ़ना...	१६४
८७	सत्सङ्ग और शुक्ल कृष्ण पक्ष की उपमा	१६४

दोहों की सङ्ख्या ।	विषय ।	पृष्ठ सङ्ख्या ।
८८	प्रयाग और सत्सङ्ग का रूपक	१६५
८९	वही विषय...	१६५
९०	सज्जन समाज और राम का रूपक	१६६
९१	क्षमा और काशी का रूपक...	१६६
९२	क्षमा की प्रशंसा	१६६
९३	शुक्ल पक्ष और काशी का रूपक	१६७
९४	समय जाने पर फिर नहीं आता	१६७
९५	वर्तमान काल	१६८
९६	मन और मान-सरोवर का रूपक	१६८
९७	काव्य के गुण आदि विषयों का वर्णन	१६९
९८	सतसई और तालाव का रूपक	१७०
९९	मान-सरोवर और मन आदि का रूपक... ...	१७०
१००	द्वैत मत का नाश	१७१
१०१	कबिता और गङ्गा का रूपक	१७१
१०२	श्रोताओं के ३ प्रकार...	१७२
१०३	सरयू और कविता आदि का रूपक	१७२
१०४	सरयू और कविता के रूपक द्वारा चारो पदार्थों का लाभ	१७३

इति चतुर्थ सर्ग ।

अथ पञ्चम सर्ग ।

१	दो अर्थ । १ अर्थ विष्णु का राम हो कर अवतार होना । २ मनुष्य-शरीर की प्रशंसा	१७५
२	ज्ञान-रूप राम हैं	१७७

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
३	प्रथम अर्थ। जल के समान जीव का संसार मे आना और साधुओं की कृपा से सूर्य-रूप ब्रह्म में मिलना	
	द्वितीयार्थ। मनुष्य-शरीर की प्रशंसा ...	१७८
४	आत्मा का अविनाशी रह कर न घटना न बढ़ना ...	१७६
५	परमेश्वर और भक्तों के विषय में चुम्बक और लोहे का दृष्टान्त...	१७६
६	जगत की उत्पत्ति के विषय में सूर्य्य का दृष्टान्त और गुरु की कृपा से परम पद मिलना	१८०
७	प्रत्यक्ष की सरलता और मुक्ति की कठिनता ...	१८०
८	जल और जीव तथा सूर्य्य और ब्रह्म का दृष्टान्त ...	१८१
६	कर्म स्वभाव ही से जीव के साथ रहता है ...	१८२
१०	पृथ्वी में बीज की नाईं जीव राम में लय होने पर भी आपस में नहीं मिलता	१८२
११	दर्पण के दृष्टान्त से ब्रह्म की निर्दोषता	१८३
१२	कर्म का अनाश	१८३
१३	जल तरङ्ग के समान कर्म की वृद्धि	१८४
१४	शुभाशुभ के नाश से ब्रह्म स्वरूप होना	१८४
१५	भक्ति के द्वारा शुभाशुभ का त्याग	१८५
१६	सीता और चन्द्रमा तथा राम और सूर्य्य का रूपक	१८५
१७	साधुओं की भक्ति में सीता के सदृश राम का प्रेम	१८६
१८	अग्नि-योग से सोने के समान भक्ति-योग से साधुओं का निर्मल होना...	१८७
१६	जीवों का जान बूझ कर कर्म की जाल में पड़ना ...	१८७
२०	कर्म के विषय में मकरी की जाल का दृष्टान्त ...	१८८
२१	सत्सङ्ग के द्वारा जीवों का स्वाभाविक कर्म से मुक्त होना	१८८

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
२२	सूक्ष्म-शरीर का गुण स्थूल-शरीर मे पाया जाना ...	१८८
२३	सूर्य्य मे जल के समान जीवों का ईश्वर से प्रगट होना और उसी में लय होना	१८९
२४	मिलने के समय जल के समान जीवों का अदृश्य होना	१९०
२५	नीतिहीन जीवों का दुःख में पड़ना	१९०
२६	पक्षा और पथिक के समान जीवों का सुख दुःख में अपने से गिरना	१९१
२७	सीताराम की कृपा के विना जीवों का सदा दुःखी बना रहना	१९२
२८	बुद्धि-रूपी सीता और भक्ति के कारण सन्तों का दुःखी न होना	१९२
२९	चन्द्रमा के समान बुद्धि-रूपी सीता को ग्रहण न करने से दुःखी होना	१९३
३० से ३१ तक	चकवा चकई और कमल के समान विषयी जनों का सीता-जी को दुःखदाई जानना	१९४
३२	सर्व सुखदाई जल से जवासा गल जाता है उसी प्रकार विषयी लोग भक्ति को दुःखदाई समझते हैं ...	१९५
३३	सीता-रूपी भक्ति और साधुओं की महिमा चन्द्रमा के तुल्य सुखदायी हैं	१९६
३४ से ३५ तक	श्रीराम-रूप ज्ञान और सीता-रूपी भक्ति की समानता सूर्य्य और चन्द्र से	१९८
३६	सूर्य्य के द्वारा जल का अद्भुत रूप और पृथ्वी के विषय के सिद्धान्त विना गुरु के उपदेश नहीं ज्ञात होते	१९९
३७	ज्ञान को बड़े क्लेश से सिद्ध होने वाला दिखा कर भक्ति की सुगमता और प्रशंसा	२००

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
३८	सत्सङ्गति द्वारा राम का मिलना	२०२
३९	रावण और विभीषण के उदाहरण से सेवक पद सुखदाई और सेव्य पद दुःखदाई... ...	२०२
४०	सूर्य्य और चन्द्रमा गर्म और ठंढे के कारण हैं ...	२०३
४१	रूप रहित होने पर भी शीत और उष्ण का नाम पड़ना	२०३
४२	अमृत का गुण वर्णन	२०४
४३	गन्ध शीत और उष्णता तीनो वस्तुओं का पृथ्वी जल और अग्नि में पाया जाना	२०५
४४	गन्ध शीत और उष्णता में चैतन्यता का ईश्वर से आना	२०६
४५	सद्गुरु की दया से ज्ञान पा कर जन का तीनो काल में समर्थ बना रहना	२०६
४६	कोइल के बच्चे के उदाहरण से जीवों का ईश्वर में मिलना	२०७
४७	सांसारिक पदार्थों के त्याग से मनुष्य में समता और विवेक आना	२०८
४८	विषय सुख को दुःखदाई जानने पर भी मन का हठ कर उसी के पीछे दौड़ना	२०८
४९	स्वारथ के ज्ञान होने का उपाय	२०९
५०	ऊख और रूई के दृष्टान्त से ईश्वर भजन और सत्कर्म्म के विना सुख का न मिलना	२१०
५१	सुख दुःख का कारण मनुष्य आप ही है... ...	२१०
५२	विना कर्ता के कर्म्म का न होना और गुरु के उपदेश के विना दुःख का निवृत्ति न होना	२११
५३	कर्ता कारण और कार्य्य के सिद्ध होने पर भी विषयासक्त हो कर कर्ता ही का लोप करना ...	२१२

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
५४	जल और वायु के उदाहरण से मनुष्य का अपने को शुभाशुभ कर्म का कर्ता मान कर पाप का भागी होना	२१२
५५	श्रीरामचन्द्र-जी की श्रेष्ठता	११३
५६	कर्ता और कारण दो ही मुख्य हैं	२१४
५७	कर्म का आप-ही (स्वभावही से) उत्पन्न होना ...	२१५
५८	सब जीवों को अपने समान समझना, ममता का त्याग	२१६
५६-६०	सब को सुहृद जानना विरोध त्याग	२१६
६१	पाँचो तत्वों से संसार और शरीर का बनना ...	२१७
६२	गुरु की सेवा से ज्ञान होना	२१८
६३	नित्य और अनित्य की समानता	२१६
६४	ज्ञान के विना जीवों का दुःख सहना	२२०
६५	भ्रम से निज कर्म के फेर में पड़ना	२२०
६६	कर्म की घटना समझ कर कर्म करना	२२१
६७	सूर्य और चन्द्रमा के उदाहरण से दुष्ट जनों की संगति से साधुओं का दुःख पाना	२२२
६८	माता पिता से पुत्र के समान ब्रह्म और माया से जीव का उत्पन्न होना	२२३
६६	जीव का सर्व-रूप हो कर भी सब से अलग रहना...	२२४
७०	सोने के उदाहरण से जीवात्मा का सब स्थान में रह कर भी सब से अलग रहने का दृष्टान्त ...	२२४
७१	आत्मा का एक हो कर भी अनेक होना ...	२२५
७२	सोने के उदाहरण से (अर्थात् सोना सब भूषणों की जड़ है) केवल एक परमात्मा का सब पदार्थों का मूल होना	२२६

दोहों की सङ्ख्या ।	विषय ।	पृष्ठ सङ्ख्या ।
७३	भूषणों की नाईं उपाधि के अनुसार आत्मा के गुण रूप आदि का बदलना	२२७
७४	सोने के सदृश आत्मा के रूप का सर्वदा स्थिर और एक रस रहना	२२७
७५	विचार कर अपना इष्टदेव करना	२२८
७६	श्रीरामचन्द्र-जी की भक्ति से मोक्ष पाना ...	२२९
७७	ज्ञान से भक्ति की अधिक सुलभता	२३०
७८	सगुण में चारो गुणों का पाया जाना	२३१
७९से ८०तक	साधुओं का सब जानना और न जानने विना मनुष्यों का दुःख पाना। स्वप्न में सांप से दुख पाने का उदाहरण	२३२ २३३
८१	स्वप्न में जागने से जैसे सांप का भय जाता रहता है वैसे ही गुरु से पाये ज्ञान के द्वारा दुःख से निवृत्त होना	२३३
८२से ८३तक	विषय की आशा से दुःख और निराशा से जीव का सुख पाना	२३४–२३५
८४	कर्ता और कारण की अचलता	२३६
८५	गुरु की कृपा द्वारा कर्ता का अपने रूप को जानना	२३६
८६	जैसे घड़ा विना कोहार के नहीं बन सकता वैसे यह जगत बिना कर्ता (परमेश्वर) के नहीं हो सकता	२३८
८७	कर्ता का ज्ञान होने से ईश्वर का ज्ञान हो सकता है	२३८
८८	गुरु साक्षी और सज्जनोपदेश से मनोरथ सिद्धि ...	२३९
८९	अनेक कारणों का ज्ञान सब के कारण राम-ज्ञान के विना व्यर्थ	२३९

दोहों की संख्या।	विषय।	पृष्ठ संख्या।
९०	सोने के दृष्टान्त से हरि-भक्ति आदि का उपदेश ...	२४०
९१	सोनार और जीव का रूपक	२४१
९२	शरीर के कारण जीवात्मा अनेक योनि के वश होता है	२४२
९३	जीवों के अनेक योनि में जन्म पाने का कारण ...	२४३
९४	शरीर और बरतन के रूपक के द्वारा ईश्वर की पहचान	२४४
९५	इच्छा- वासना-जीव के अनेक शरीर पाने का कारण है जिस के त्याग से मुक्ति लाभ	२४५
९६	प्राण की अमरता और उसका अनेक शरीर पाना...	१४६
९७	वायु और जल शरीर के रहने के कारण हैं ...	२४७
९८	सूक्ष्म और स्थूल दोनों शरीरों में कुछ न कुछ दोष अवश्य ही रह जाता है	२४८ २४९
९९	कर्ता और समय बदला करते हैं परन्तु कारण ज्यों का त्यों रहता है...	२५०

इति पञ्चम सर्ग।

अथ षष्ठ सर्ग।

१	जीवात्मा की अमरता और शरीर का भी रूप बदलना	२५२
२	काम कर के जीवात्मा का बंधना	२५३
३	काम में लीन होने के कारण इस का सुख दुःख भोगना	२५३
४	सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों के कारण नाम पा कर जीवात्मा का संसार में बन्धना	२५३
५	आंख से बिना देखे त्वक आदि इन्द्रियों से गन्ध आदि गुणों का ज्ञान होना	२५४

दोहों की संख्या।	विषय।	पृष्ठ संख्या।
६	बिन्दु और अक्षर के दृष्टान्त से परमात्मा की सर्व-व्यापकता दिखलाना	२५४
७	पूर्वोक्त दोहे का विषय	२५५
८	रेफ़ और बिन्दु के दृष्टान्त से परमात्मा की सर्व-व्यापकता दिखलाना	२५५
९	सूक्ष्म बिन्दु और स्थूल अक्षर के दृष्टान्त से परमात्मा की सूक्ष्मता प्रमाणित करना	२५६
१०	पञ्च तत्त्वों के मेल से शरीर का बनना और उन्हीं के अपने२ आश्रय में चले जाने के कारण शरीर का अन्त होना	२५६
११	परमात्मा के जीव बनने का कारण अपनी इच्छा से पुत्र को बना कर पिता का नाम पाना ...	२५७
१२	नाम के सुनने से वस्तु के गुणों का स्मरण होना ...	२५८
१३	पुत्र पिता के दृष्टान्त से ईश्वर का जगत्पिता कहलाना	२५८
१४	अनुस्वार आदि के दृष्टान्त से पिता पुत्र का अभेद ठहराना...	२५९
१५	सुत शब्द से कर्म का बोध होना और उन्हीं के दृष्टान्त से जीवों का माया में फसना... ...	२६०
१६	सुत के दृष्टान्त से स्थूल जगत् की प्रधानता और पिता के मरने पर जैसे लोग उसे भूल जाते हैं उसी प्रकार ईश्वर को भूल जाना...	२६०
१७	कर्म्म-रूपी पुत्र की प्रधानता और कर्त्ता के आगे दौड़ना	२६०
१८	कर्म्म-रूपी पुत्र के बिना सब व्यवहार का रुक जाना	२६१
१९	संसार के पुत्रादि व्यवहार में फसे हुए लोगों को ज्ञानोपदेश का बुरा लगना...	२६१

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
२०	संसार में फंस कर लोग ईश्वर को भूल जाते हैं और संसार-ही को सत्य कहते हैं	२६२
२१	ऋषियों के कहे हुए परमेश्वर का ध्यान करने से शान्ति होना	२६२
२२	राम को समझने में विडम्बना...	२६३
२३	बिना गुरु के सच्चा मार्ग कोई नहीं दिखला सकता	२ ३
२४	सत्सङ्ग सच्चे मार्ग के ज्ञान होने का दूसरा उपाय है	२६३
२५	भले बुरे दोनों मरते हैं इस कारण सत्सङ्ग और गुरूपदेश की व्यर्थता	२६४
२६	भाग्य की दुर्बलता दिखा कर सत्सङ्गति और गुरूपदेश की आवश्यकता का प्रमाणित करना ...	२६४
२७	जीवात्मा और परमात्मा के ज्ञान न होने के कारण पुत्रादि को सब सुख का कारण समझना ...	२६५
२८	कर्त्ता-ही के करने से कर्म का नाम होता है और वह अपने को उस कर्म का कर्त्ता मान कर मेरा कर्म कह के पुकारता है इसी लिये उस को उस का फल भोगना पड़ता है	२६६
२९	आत्मज्ञानी को किसी कर्म का बन्धन नहीं लगता...	२६६
३०	मृगतृष्णा के समान इस संसार में जीव अज्ञानी हो कर भ्रमता है...	२६६
३१	गुरु और शिष्य दोनों की अज्ञानता	२६८
३२	सद्गुरु के उपदेश की आवश्यकता	२६७
३३	सुबुद्धि और सुज्ञान पूर्वक महात्माओं के उपदेशानुसार कर्म करने से सुख मिलता है... ...	२६८

दोहों की संख्या ।	विषय ।	पृष्ठ संख्या ।
३४	सब वर्णों के कर्तव्य कर्म का वर्णन करने की इच्छा से पहले ब्राह्मण के कर्म का वर्णन	२६८
३५	क्षत्री के कर्म का वर्णन	२६९
३६	वैश्य के कर्म्म का वर्णन...	२६९
३७	शूद्र के कर्म्म का वर्णन...	२६९
३८	छत्रों प्रभुओं के जय पूर्वक सब वर्णों के लिये सार वस्तु के पाने का उपाय	२७०
३९	सन्तोषादि के ग्रहण से सब ठौर सुख का मिलना	२७०
४०	आनन्द स्वरूप जीव के साथ सदा आनन्द का रहना	२७१
४१	मन के शासन करने से दुःख का दुःख न जान पड़ना	२७१
४२	विषय चिन्ता से जीव का विषय में फंसना ...	२७१
४३	केवल कहने सुनने से लाभ का न होना और लाभ-दाई हरि-भक्ति और तत्त्वज्ञान की आवश्यकता ——	२७२
४४	सन्तोष के बिना सुख का न होना	२७२
४५	भक्ति और प्रेम की सब से अधिक आवश्यकता ...	२७३
४६	ज्ञान और भक्ति-रूपी अग्नि से सब कर्म को भस्म कर आनन्द-रूपी मुक्ति का मिलना... ...	२७३
४७	कामना सब बन्धन का कारण है बिना उस के दूर हुए मुक्ति का न मिलना	२७३
४८	निष्काम होने की कठिनता दिखला कर ब्रह्मादि देवताओं का भी सकाम होने के कारण दुःख पाना	२७४
४९	बुद्धि के बड़ी होने का उपाय	२७४
५०	देह और आत्मा के एक समझने के कारण अनेक दुःखों का भोगना...	२७४

दोहों की सङ्ख्या ।	विषय ।	पृष्ठ सङ्ख्या ।
५१	देह प्राण की भिन्नता के भेद-ज्ञान से दया का सदा बना रहना	२७५
५२	झूठों के साथ प्रेम करने के कारण जीव का झूठा बनना और सच्चे के प्रेम से सच्चा बनना ...	२७६
५३	झूठे विषय को सत्य समझ कर उस से अलग होने के लिये उपदेश देनेवालों से झगड़ना ...	२७६
५४	कर्म के अधीन हो कर जीवों का बार २ मरना जीना और समय तथा ज्योतिषी और कर्म वा खरी और मोह वा भूमि और जीव वा अन्न का रूपक ...	२७७
५५	समय की प्रधानता और उसी के अनुसार जगत् की उत्पत्ति पालन और नाश का होना ...	२७७
५६	कर्म्म और वृक्ष का रूपक	२७८
५७	काल सब वस्तुओं का आधार है उसी के अनुसार सब बात होती है...	२७९
५८	समय की प्रधानता	२७९
५९	समय के अनुसार जीवों का अनेक योनि में घूमना	२८०
६०	कर्म के कर्तव्यों का वर्णन कठिन है	२८१
६१	मन की अस्थिरता	२८२
६२	बिना ज्ञान के मुक्ति का न होना	२८३
६३	शब्द और वर्ण का अभेद और उन्हीं के योग से नर का सब गुणों का घर होना...	२८४
६४	नाम जाति और गुण को देख कर अपने ही कर्म में भ्रम का होना	२८४
६५	जीव का कर्म के ऐसा वशीभूत होना कि अज्ञान से निर्भेद हो जाना	२८५

दोहों की सङ्ख्या ।	विषय ।	पृष्ठ सङ्ख्या ।
६६	कर्म के प्रभाव से जीवें का सब अवस्था में सुखी मानना	२८५
६७	बिना गुरु के उपदेश काल की विपरीतता नहीं जानी जा सकती	२८६
६८	बिना गुरूपदेश के ज्ञान नहीं होता	२८७
६९	विचार पूर्वक कर्म करने की रीति	२८७
७०	मन में गुरूपदेश के स्थिर होने से दुःख का नाश ...	२८७
७१	दुष्कर्म कर के भी जीव का सुख की आशा करना	२८८
७२	भव-बन्धन छूटने के उपाय के जानने पर भी जीवें का माया के वश हो कर दुःखी रहना	२८८
७३	कर्म का भोग अवश्य करना पड़ता है	२८९
७४	कर्म की प्रधानता का वर्णन	२८९
७५	नाना प्रकार मत होने का कारण	२९०
७६	जीव दुःख से डर कर भी दुःख ही के काम में रहता है इस पर एक दृष्टान्त	२९०
७७	अपनी दृष्टि के दोष को न कह कर जीवें का बात बनाना—	२९१
७८	अपने को चतुर समझ जीवें का जाल में फंसना ...	२९१
७९	माया में फंसने के विषय में मक्खी का दृष्टान्त ...	२९२
८०	केवल बात से कुछ नहीं हो सकता इस पर बात की गौ से दूध पाने का दृष्टान्त...	२९३
८१	बात की सामर्थ्य	२९३
८२	बात ही भले बुरे का कारण	२९३
८३	बात ही से बात बनती है इस पर शबरी जटायु आदि का दृष्टान्त	२९४
८४	बिना बात समझे करने से कष्ट हो जाता है इस पर दशरथ और विभीषण का दृष्टान्त	२९५

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
८५	बात को सब का बीज ठहराना	२९५
८६	सांसारिक जीवों में नर्क के ३ लक्षण	२९६
८७	सांसारिक जीवों में स्वर्ग के ७ लक्षण	२९६
८८	जो मनुष्य सांसारिक गुण, दोष से पर्ण है वह सदा दुःखी सुखी बना ही रहता है	२९७
८९	काल की प्रबलता और उस के अनुसार भले बुरे काम का होना	२९७
९०	सांसारिक कष्ट से बचने के ३ लक्षण हैं निर्मल, विवेक वो सत् उपदेश और शास्त्रबोध ...	२९८
९१	रामचन्द्र की सेवा से भवबन्धन से छूटना... ...	२९८
९२	पूर्व दोहे का विषय	२९९
९३	सद्गुरु की अत्यन्त आवश्यकता	२९९
९४	सकाम और निष्काम के भेद से कर्म का दो प्रकार का होना	३००
९५	राम नाम का माहात्म्य	३००
९६	पूर्व दोहे का विषय	३०१
९७	राम नाम के माहात्म्य के बिना समझे सब व्यर्थ है	३०१
९८	सब पदार्थों में शुभाशुभ का भेद दिखलाना और उस के अनुसार समय का गुण दोष	३०२
९९	शुभाशुभ के भेद से कर्म दो प्रकार के होते हैं ...	३०३
१००	सब पदार्थों में भेद का होना	३०४
१०१	सब भेदों के समझने के लिये गुरूपदेश की आवश्यकता	३०५

॥०॥ इति षष्ठ सर्ग ॥०॥

अथ सप्तम सर्ग।

श्लोकों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
१	आशा त्याग करना ही सब लिखने पढ़ने का फल है	३०६
२	आशा रहने से योगी भी जाल से मुक्त नहीं हो सकता	३०७
३	दांत के दृष्टान्त से अपने प्रयोजन के अनुसार जीवों का सांसारिक वस्तुओं की शुद्धता और अशुद्धता का मानना	३०८
४	मोती और मूंगे के दृष्टान्त से साधुओं के स्वभाव की स्थिरता दिखलाना	३०९
५	संसार में आत्म-स्वारथी बहुत हैं इस पर दृष्टान्त...	३१०
६	निर्जल स्थान के कूप के दृष्टान्त से मनुष्यों के कपट-शीलता का वर्णन	३११
७	दुष्कर्मियों को छोड़ कर और सभों का अपने मित्र-के निकट रहने से सुख पाना	३१२
८	वृक्ष के दृष्टान्त से मित्र के क्रोधित होने पर भी सुखदाई ही रहना	३१३
९	मेघ और सूर्य के दृष्टान्त से दुर्जनों की सङ्गति का सर्व प्रकार से त्याग करना	३१४
१०	सूर्य के दृष्टान्त से राजा के व्यवहार का गुण दोष वर्णन	३१५
११	माली के दृष्टान्त से कलियुग में नीति चतुर राजा के होने की कठिनता का वर्णन	३१६
१२	विपत्ति में पड़े बड़े मनुष्य को कभी छोटा समझना न चाहिए	३१७
१३	प्रह्लाद के दृष्टान्त से रामचन्द्र की आराधना और परोपकार का सब से उत्तम ठहरना... ...	३१८

दोहों की सङ्ख्या।　　विषय।　　पृष्ठ सङ्ख्या।

१४	परोपकार की बड़ाई और स्थिरता दिखलाना ...	३१८
१५	चन्द्रमा के दृष्टान्त से सत्सङ्गति की बड़ाई ...	३१८
१६	मोती और गुंजा के दृष्टान्त से बड़ों की सङ्गति का उपदेश	३१९
१७	बड़े लोग समय के हेरफेर से कुछ चीण भी होयं तौ भी छोटों से बड़े ही बने रहते हैं इस बात को चन्द्र और तारा के दृष्टान्त से ठहराना ...	३१९
१८	घोड़ा आदि छः वस्तु सदा न देखने से बिगड़ जाते हैं	३२०
१९	जल के दृष्टान्त से अपनी भलाई करनेवालों के साथ दुर्जनों की दुष्टता	३२१
२०	आठ पदार्थों का स्वामी के वियोग से नष्ट होना और संयोग से अच्छा बना रहना	३२२
२१	नीचों को सत्सङ्ग मिले तौ भी निचाई नहीं छोड़ते इस पर चन्दन और सांप का दृष्टान्त... ...	३२३
२२	दर्पण के दृष्टान्त से दुर्जनों के कपटी सुभाव का वर्णन	३२४
२३	कूंएं के दृष्टान्त से अच्छे मित्र का लक्षण ...	३२४
२४	अपने आय के अनुसार व्यय करना सब गुणों का मूल	३२५
२५	शिष्य स्त्री आदि के कहने को मनोयोग पूर्वक सुनने और ग्रहण करने का वर्णन	३२६
२६	स्त्री पुत्रादि चार साथियों के साथ बहुत संभाल के व्यवहार करने का उपदेश	३२७
२७	स्त्री, पुत्र, खानपान, मन्त्री, चाकर, मित्र और घर इन सातों के साथ व्यवहार करने का उपदेश ...	३२७
२८	दीर्घ-रोगी, अत्यन्त-दुःखी, कटुभाषी और कामी इन चारों के तुरन्त त्याग करने का उपदेश ...	३२८
२९	तीन पुरुष अपने मृत्यु को मोल लेते हैं	३२८

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
३०	अज्ञानियों के उपदेश से चलने वाले ज्ञानियों का भी दुःख पाना	३३०
३१	बिना अपने समझ बिचार के मनुष्यों का सदा दुःख पाना	३३१
३२	अज्ञानी लोगों के व्यर्थ यत्न का वर्णन	३३१
३३	दुष्टता करने के कारण अज्ञानी लोगों के नाश होने का निश्चय	३३२
३४	बहुत जाल को फैलाने वालों के सब कामो में सिद्धि होना असम्भव	३३३
३५	सीता और कृष्ण के दृष्टान्त से सब के प्रसन्न रखने के असम्भव होने का प्रमाण	३३४
३६	ज्ञानी और विरक्त साधु के लिये प्रतिष्ठा और नामवरी का दुःखदाई होना	३३५
३७	अन्धपरम्परा वा भेड़ियाधसान के विषय में बन्ध्या और अन्धे की निष्फलता	३३६
३८	पूर्वोक्त दोहे के विषय का उदाहरण	३३७
३९	चारो वर्णों के अपने २ कर्म के करने से उन का परम सुख लाभ	३३७
४०	किसान का उदाहरण दिखला कर मुक्ति पाने-वालों के उत्तम मध्यम और निकृष्ट यत्नों का वर्णन ...	३३८
४१	दुःख पाने से अपने धर्म को न छोड़ना उत्तम जनों का सुभाव है	३३९
४२	अपनी भलाई बुराई के सदृश दूसरों की भलाई बुराई समझना सज्जनों का व्यवहार है	३४०
४३	पारे के दृष्टान्त से सज्जनों का दुर्जनों के संग से भागने का उपदेश	३४१

दोहों की सङ्ख्या ।	विषय ।	पृष्ठ सङ्ख्या ।
४४	मन्थरा के दृष्टान्त से दुष्टों की मीठी बातों पर भी विश्वास करने में बड़ा धोखा	३४१
४५	दान और दया आदि कामों में लगे हुए सन्त जन ही मुख्य वीर हैं	३४२
४६	ज्ञान नम्रता आदि पदार्थ विपत्ति के मुख्य साथी हैं	३४३
४७	पराक्रम सन्तोष और राम भरोस आदि बुरे समय के सहायक मित्र हैं	३४३
४८	ईश्वर-भक्ति और विद्या आदि गुणों में लगे रहने-वालों के लिये कभी विपत्ति का न पड़ना ...	३४४
४९	वामन-रूप परमेश्वर और विष्णु के दृष्टान्त से कपट व्यवहार करने-वाले को अवश्य कलङ्क होना ...	३४४
५०	पूर्वोक्त दोहे के वर्णन द्वारा कपट से अवश्य दुर्यश होना	३४५
५१	बलि तुलसी और विष्णु के दृष्टान्त सें छल करने में सब को लोश दिखला कर इस से दूर रहने का यत्न	३४५
५२	मेढ़का बनिया आदि के दृष्टान्त से दुष्टों के सङ्ग के सब प्रकार त्याग करने का उपदेश	३४६
५३	कृष्ण और दुर्योधन के दृष्टान्त से मूर्खों के सुभाव का कभी न बदलना	३४७
५४	दैव के विपरीत होने से सब वस्तुओं के स्वभाव का बदलना	३४८
५५	कौवा और बन्दर के दृष्टान्त से बिना बिचारे हठ-पूर्वक काम करने से अत्यन्त कष्ट पाना ...	३४९
५६	बड़े प्रभु पर विश्वास कभी न करना चाहिये ...	३५०
५७	अव्यवस्थितचित्त मनुष्य का कुछ विश्वास नहीं ...	३५१
५८	जान बूझ कर अन्याय करने-वालों को उपदेश देना व्यर्थ है	३५१

दोहे की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
५९	विषय में लीन जनों की उपमा अधजली पतिव्रता स्त्री से...	३५२
६०	अन्त में दुःख देने-वाले विषयों में तत्परजनों की उपमा चन्द्रकिरण को जल जान कर चाटने-वाले कुत्तेसे	३५३
६१	पवित्र स्थानों में दोषी लोगों के अधिक पाये जाने का कारण	३५४
६२	कलियुग का वर्णन	३५५
६३	पूर्वोक्त दोहे का विषय अर्थात् कलियुग का वर्णन (६१ दोहे से ६३ दोहे तक)...	३५६
६४	कलियुग और लड़ाई का रूपक	३५७
६५	हृदय-रूपी कमल गुण दोषों का साक्षी है सो अविवेक आदि के पाने से प्रसन्न और विवेक आदि को पाने से अप्रसन्न होता है	३५७
६६	विवेक हीन मनुष्यों की पशुओं से उपमा ...	३५८
६७	हरि-भक्तों को क्लेश देने-वाले विवेक हीन मनुष्यों की कुत्तों से उपमा	३५८
६८	राजा का एक प्रकार का दोष प्रजा में तीन प्रकार से प्रगट होता है इस से और तेहरा घाव करने वाली तलवार से उपमा	३५९
६९	राजा के व्यवहार के अनुसार समय का भला बुरा होना	३६०
७०	राजा के प्रसङ्ग से समय का भला बुरा हो जाना ...	३६१
७१	राजा के भले होने से समय और प्रजा का बदलना	३६१
७२	अच्छे महाराज सामादिक उपायों को विचार कर कुअन्न का भी उपहार लेते हैं	३६२
७३	वृक्ष के फल फूल के दृष्टान्त से उत्तम राजाओं के कर लेने का उपदेश	३६३

दोहों की सङ्ख्या ।	विषय ।	पृष्ठ सङ्ख्या ।
७४	पृथ्वी और गौ का रूपक	३६४
७५	कुनीति रत राजा खजूर की शाखा के सदृश गल जाते हैं	३६५
७६	अङ्गद का पांव और सुनीति और रावण की सभा और पृथ्वी का रूपक	३६५
७७	राम-प्रेम धर्म-तत्पर और अच्छे राजनीति जानने-वाले राजा को राज्य लक्ष्मी नहीं छोड़ती ...	३६६
७८	विजयी, उदार, सत्यभाषी राजा का ऐश्वर्य्य कभी नहीं घटता	३६७
७६	गोली, वाण, स्वर और उत्तम मध्यम नीच राजाओं का रूपक...	३६८
८०	सयाने राजा अपने शत्रु को जल के सदृश शिर पर रखते हैं परन्तु समय पाने पर उसे नाव के सदृश डुबा देते हैं	३६६
८१	जिस राजा के धर्म ही वाड़ हैं और सत्य मन्त्री है उस के निकट आपदा कभी नहीं आती ...	३७०
८२	राजा, मन्त्री और कारोबारी के गुण का वर्णन ...	३७०
८३	अच्छे राजा का लक्षण	३७१
८४	उत्तम स्वामी का गुणानुसार छोटे बड़े दासों का आदर करना	३७२
८५	वृक्ष के मूल और राजा और वृक्ष के फल फूल और प्रजा का रूपक	३७३
८६	राजाओं के बली होने का वर्णन	३७३
८७	चक्रवर्ती महाराजाओं के गुण	३८४
८८	राम-राज्य गुणों के आज कल न पाये जाने को दिखला कर महाभारत के समय के गुणों का—	३७५
	कलि में पाया जाना	३७६

दोहां की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
८६	समयानुसार उत्तम वस्तु के भी त्याग का उपदेश...	३८०
९०	सरोवर में खम्भे के सादृश्य से शरीर में आत्मा की तुलना...	३८०
९१	बड़ों के झगड़ों के बीच में छोटों के न आने का उपदेश	३८१
९२	अवस्था के अनुसार आश्रम में रहने-हारे मनुष्यों के धर्म का उपदेश	३८२
९३	सब कामों के पहले बिचार करने का उपदेश ...	३८३
९४	विषय और सरस ऊख का रूपक दिखला कर नीरस वैराग्य-रूपी वृक्ष की सेवा करने का उपदेश ...	३८४
९५	बड़ों के नाम को न बिगाड़ना चाहिये इस विषय में यमराज का दृष्टान्त	३८४
९६	खलों की बुराई करने से भले को काम नहीं त्याग करना चाहिए इस विषय पर देव-मन्दिर और कौवे का दृष्टान्त	३८५
९७	गंवारो की बातों से दुःख न मानना चाहिए ...	३८६
९८	जिस का संसारी धर्मादि व्यवहार केवल अपनी बड़ाई दिखलाने के लिये है उस की अन्त में भी वही गति होती है	३८७
९९	परलोक में देवताओं से दण्ड पाने के भय की अपेक्षा इस लोक के क्रोधी राजाओं के भय का अधिक होना	३८७
१००	सुनीति से चलने-वालों को सर्वत्र सुख और कुनीति से चलने-वालों को दुःख का होना	३८८
१०१	सुनीति कुनीति से चलने के विषय में राम, सुग्रीव रावण और बालि का उदाहरण	३८९

दोहों की संख्या ।	विषय ।	पृष्ठ संख्या ।
१०२	दुर्जन दान आदि काम करने में बहुत छोटे हों तो भी अपने को महादानी करण और दधिच के समान जानते हैं	३६०
१०३	दूसरे की कीर्त्ति को नष्ट कर के अपनी कीर्त्ति बढ़ाने की निन्दा	३६०
१०४	पतङ्ग के दृष्टान्त से दुर्जनों के स्वभाव का वर्णन ...	३६१
१०५	मछली और मृगादि के दृष्टान्त से दुर्बल जनों का संसार में दुःख पूर्वक निर्वाह होना	३६२
१०६	बड़े २ पापियों का सुख न पा कर परमेश्वर की निन्दा करना...	३६३
१०७	यादव और कामदेव की साक्षी दे कर अपने वर्ग को त्याग करने-वालों की हार	३६४
१०८	आग लगने के दृष्टान्त से कलह का अत्यन्त बुरा होना दिखलाना	३६५
१०९	शान्ति प्रधान लोगों के लिये हार जाना और अपना खोना उत्तम है	३६५
११०	संसार में ३ प्रकार से शत्रु और मित्रों को पहचानने का चिन्ह	३६६
१११	क्षमा की प्रशंसा दिखला कर सज्जनों का दुष्टों की बात का सहना	३६८
११२	कौरवों और पाण्डवों के दृष्टान्त से क्षमा की प्रशंसा	३६८
११३	परशुराम और रामचन्द्र के दृष्टान्त से यह प्रमाणित किया है कि जो मीठी बातों से मरे उस के लिये कड़ी उपाय न करना	३६६
११४	क्रोध के वश हो कर कटु वचन बोलने का अनेक दोष	४००
११५	सुसमय कुसमय वस्तु के गुण अवगुण को घटा देते हैं	४०१

दोहों की सङ्ख्या।	विषय।	पृष्ठ सङ्ख्या।
११६	ऋण आदि पांच वस्तु अत्यन्त कष्ट के हेतु हैं ...	४०२
११७	शिक्षा देने-वाला गुरु चाहे क्रोधित हो कर चाहे प्रसन्न हो कर सब प्रकार अपने उपदेश द्वारा अपने शिष्यों की भलाई करता है	४०३
११८	बवण्डर में पड़े ऊए पतङ्ग और दुष्ट राजा की उपमा से प्रजाओं का दुःख प्रगट करना	४०४
११९	बोलने की बुराई भलाई समझ बिचार पूर्वक बोलना उचित है...	४०४
१२०	कलियुग में कपट व्यवहार के कारण लोग परस्पर ठगहारी करते हैं...	४०५
१२१	कलियुग में सब कर्मों का विपरीत होना ...	४०६
१२२-१२३	(१२० दोहे से ले कर १२३ दोहे तक) कलियुग का वर्णन	४०५ से ले कर ४०८ तक
१२४	रामचन्द्र और कृष्णचन्द्र दोनों की तुल्यता दिखला कर भक्ति करने का उपदेश...	४०९
१२५	कमाच और कमरी के दृष्टान्त से सतसई के भाषा में लिखे जाने का हेतु	४१०
१२६	सतसई के अक्षर और मोती की माला का रूपक	४११
१२७	सतसई के भक्ति-पूर्वक पढ़ने-वालों का स्वर्ग प्राप्त होना	४११
१२८	राजा और विद्वान् के बीच तुलना दिखा कर विद्वान् की श्रेष्ठता का वर्णन	४१२
१२९	सतसई का माहात्म्य और उस के पढ़ने का फल ...	४१३

(इति सप्तम सर्ग सूची समाप्त ॥)

टीका की समाप्ति का संवत् और तिथि आदि का वर्णन और अन्त में शिवाष्टक-रूप मङ्गल ४१४-४१५

(इति शम्)

॥०॥ श्रीपरमेश्वराय नमः ॥०॥

तुलसी-सतसई।

विहारिकृत-संक्षिप्तटीका-समेत।

प्रथम सर्ग।

नमो नमो स्री-राम प्रभु परमा-ऽऽतम पर धाम।
जेहि सुमिरे सिध होत है तुलसी जन-मन-काम ॥१॥

अन्वय। परमातम पर धाम प्रभु स्रीराम नमः नमः।
जेहि सुमिरे तुलसी जन मनकाम सिध होत है ॥१॥

अर्थ। इस जगत के (आत्मा) ईश्वर सब से अधिक तेजस्वी स्वामी सीता-रामजी को वारंवार नमस्कार होवे, जिस को स्मरण करने से तुलसी (से) भक्त जनों की मनोकामना पूरी होति है ॥१॥

राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यान कर तुलसी सुर-तरु तोर ॥ २ ॥

अन्वय। राम वाम दिसि जानकी, दाहिनी ओर लखन।
तुलसी तोर सुरतरु सकल कल्यान कर ध्यान ॥

अर्थ । श्रीरामचन्द्र की बाईं ओर सीताजी (बैठी) हैं, और दाहिनी ओर लक्ष्मण जी (विराजते) हैं ; तुलसीदास (अपने मन से वा किसी भक्त से) कहते हैं, कि यह ध्यान कल्पवृक्षरूप है, और तेरे सब मंगलों को देनेवाला है ॥ २ ॥

परम पुरुष पर धाम चर जा पर अपर न आन ।
तुलसी सो समुझत सुनत राम सोइ निरबान ॥ ३ ॥

अन्वय । तुलसी परम पुरुष पर धाम चर, जा पर अपर आन न, सो राम समुझत सुनत सोइ निर्वान ।

अर्थ । तुलसीदास कहते हैं कि जो सब से बड़े पुरुष (परमेश्वर) बड़े स्थान अर्थात् बैकुण्ठ में रहनेहारे, जिस के ऊपर और कोई दूसरा नहीं है, उस राम को समझता और सुनता है, वही मोक्ष स्वरूप है ॥ ३ ॥

सकल सुखद गुन जासु सो राम कामना हीन ।
सकल-काम-प्रद सरब-हित तुलसी कहहिँ प्रबीन ॥४॥

अन्वय । प्रबीन तुलसी कहहिँ जासु गुन सकल सुखद कामना हीन सो राम सकल काम प्रद सर्वहित ।

अर्थ । कवि तुलसी कहते हैं, कि जिस रामचन्द्र का गुणानुवाद सब लोगों को सुख देनेहारा है, सो रामचन्द्र आप कामना रहित हैं, अर्थात् किसी बात की इच्छा नहीं करते, परन्तु सब लोगों का मनोरथ पूरा करते और सब के हितकारी हैं ॥ ४ ॥

जा के रोम रोम प्रती अमित अमित ब्रह्मण्ड ।
सो देखत तुलसी प्रगट अमल सु-अचल प्रचण्ड ॥५॥

अन्वय । अमित अमित ब्रह्मण्ड जाके रोम रोम प्रति
तुलसी सो अमल सुअचल प्रचण्ड प्रगट देखत ।

अर्थ। जिस के एक २ रोम में असङ्ख्य ब्रह्माण्ड (वा लोक) हैं, तुलसीदास उस निर्मल अचल और परम प्रतापी राम को इस जगत में प्रगट देखते हैं ॥ ५ ॥

जगत जननि स्री-जानकी जनक राम सुभ रूप ।
जासु क्रिपा अति अघ-हरनि करनि बिबेक अनूप ॥६॥

अन्वय । स्रीजानकी जगत जननि सुभरूप राम जनक, जासु
क्रिपा अति अघहरनि अनूप बिबेक करनि ।

अर्थ । श्रीसीताजी (इस) जगत की मा, और कल्याणरूप श्रीराम पिता हैं, जिन की कृपा महा पापों को नाश करनेहारी और सत और असत के अनुपम ज्ञान को देनेहारी है ॥ ६ ॥

तात मातु पर जासु के तासु न लेस कलेस ।
ते तुलसी तजि जात किमि निज घर तर पर-देस ॥७॥

अन्वय । पर जासु के मातु तात तासु कलेस लेस न
तुलसी ते निज घर तजि परदेस तरन किमि जात ।

अर्थ । पर ब्रह्मरूप सीता राम जिस के मा-बाप हैं, उस को थोड़ा भी दुख नहीं होता, तुलसी कहते हैं कि वे अपने घर को छोड़ (अर्थात् अपने इष्टदेव राम की सेवा छोड़) दूसरे देश में तरने

के लिये काहे को जाएँगे, अर्थात् मुक्ति पाने के लिये दूसरे देव की आराधना क्यों करेंगे ॥७॥

पिता बिबेक-निधान बर मातु दया-जुत नेह।
तासु सुअन किमु पाइहैं अनत अटन तजि गेह ॥८॥

अन्वय। बिबेक निधान वर पिता नेह दयाजुत मातु,
तासु सुअन गेह तजि किमु अनत अटन पाइ हैं।

अर्थ। अति ज्ञान की खान श्रेष्ठ जिस के पिता (राम हैं), और अति कृपाशील माता (सीता) हैं, उनके पुत्र (भक्त तुलसी) घर छोड़ (अपने इष्ट की सेवा छोड़) क्यों दूसरी ठौर (दूसरों की सेवा में) भटकने पावेंगे ॥८॥

बुद्धि-बिनय-गति-हीन सिसु सुपथ कुपथ गत-ग्यान।
जननि जनक तेहि किमि तजैं तुलसी सरिस अजान॥
॥ ९ ॥

अन्वय। ते जननि जनक बुद्धि बिनय गति हीन सुपथ कुपथ
ग्यानगत तुलसी सरिस अजान सिसुहि किमि तजैं ॥९॥

अर्थ। वे (सर्वव्यापक सीतारामरूप) माता पिता ज्ञान नम्रता और चलन से हीन और भले बुरे के ज्ञान से रहित तुलसी से अज्ञानी बच्चे को क्यों कर छोड़ैं, अर्थात् सर्वथा अयोग्य मुझ से भक्त पर भी दया अवश्य करेंगे ॥९॥

मात तात सिय-राम-रूप बुद्धि बिबेक प्रमान।
हरत अखिल अघ तरनतर तव तुलसी कछु जान॥१०॥

अन्वय। तरुनतर बुद्धिरूप मात सिय, बिबेक (रूप) तात राम प्रमान
अखिल अघ हरत, तब तुलसी कछु जान ॥१०॥

अर्थ। अत्यन्त जवान वा तीव्र बुद्धि के स्थान में माता श्री सीता जी को, श्रार विवेक वा सत् असत् के विचार स्थान में रामजी को प्रमाणित किया, तो सब अज्ञानरूपी पाप नष्ट हुआ; तब तुलसी ने कुछ जाना ॥१०॥

जिन तें उद्भव बर बिभव ब्रह्मादिक सन्सार।
सुगति तासु तिन की क्रिपा तुलसी बदहिँ बिचार॥११॥

अन्वय। जिन तें ब्रह्मादिक सन्सार उद्भव वर बिभव तासु
सुगति तुलसी तिन की क्रिपा बिचारि वदहिँ ॥ ११ ॥

अर्थ। जिन सीता राम से ब्रह्मा से ले कर (तृण तक) संसार की उत्पत्ति अच्छा ऐश्वर्य्य, अर्थात् पालन, श्रार उस की सुगति होता है, उन की कृपा से विचार कर के तुलसी (ग्रन्थ) कहते हैं। अथवा, उन्ही राम की कृपा से (तासु सुगति) उस संसार की वा संसार के जनों की सुगति मुक्ति होती है ॥११॥

ससि रबि सीता राम नभ तुलसी उरसि प्रमान।
उदित सदा अथवत न सो कुतसित तम कर हान॥१२॥

अन्वय। तुलसी उरसि नभ प्रमान ससि रवि सीता राम
सो सदा उदित अथवत न कुत्सित तम हानि कर ॥१२॥

अर्थ। तुलसीदास का हृदय आकाश सम है (जहाँ) सीता-राम-रूपी सूर्य्य चन्द्र सर्वदा जगे रहते हैं, वेही (अथवत न) अस्त नहीँ होते, श्रार खराब अन्धकार-रूपी अज्ञान का नाश करते हैं। जहाँ

कुवलित पाठ हो वहाँ मालाकार से मन को वेष्टित किये ऐसा अर्थ करना ॥ १२ ॥

तुलसी कहत बिचारि गुरु राम सरिस नहिँ आन।
जासु क्रिपा सुचि होत रुचि बिसद बिवेक अमान॥१३॥

अन्वय। तुलसी बिचारि कहत राम सरिस आन गुरु नहिँ
जासु क्रिपा सुचि रुचि अमान बिसद बिबेक होत ॥

अर्थ। तुलसीदास भली भाँति विचार कर कहते हैँ कि राम के समान और कोई गुरु नहीँ हैँ, जिस की दया से पवित्र रुचि (अर्थात् रामचन्द्र के चरित आदि सत्कर्मोँ मेँ प्रीति) और शुद्ध अहंकारहीन ज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान होता है, अथवा शुद्ध और अहंकाररहित ज्ञान मेँ पवित्र प्रीति होती है ॥ १३ ॥

राम सरूप अनूप अल हरत सकल मल-मूल।
तुलसी मम हिय जो लगहि उपजत सुख अनुकूल॥१४॥

अन्वय। तुलसी राम सरूप अनूप अल, सकल मलमूल हरत,
जो मम हिय लगहि अनुकूल सुख उपजत ॥

अर्थ। तुलसी कहते हैँ कि राम का रूप अनुपम भूषण है, अथवा राम इस नाम के दो अक्षर उपमाहीन वर्ण हैँ, सब पापोँ के जड़ को नाश करते हैँ, जिन के मेरे मन मेँ लगने वा आने से कल्याणकारी सुख उत्पन्न होता है। अथवा रा रस रूप जहाँ पाठ हो, वहाँ रा जल का रूप अनुपम है और अल अर्थात् व्यापक है, और मकार मही पृथ्वी-रूप है, इन दोनोँ के संयोग होने से राम यह नाम बना, जिस के भजने से अनुपम सुख (मुक्ति) मिलती है; ऐसा अर्थ करना चाहिये ॥ १४ ॥

रेफ रमित परमा-ऽऽतमा सह अ-कार सिय रूप।
दीरघ मिलि बिधि जीव इव तुलसी अमल अनूप॥१५॥

रेफ परममेश्वर का रूप है, उस में अकार सीताजी का रूप है, और दीर्घ आ ब्रह्मादिक जीव हैं, इन तीनों के मेल से रा यह उपमा रहित निर्मल अक्षर बना॥ १५॥

अनुस्वार कारन जगत स्री कर करन म-कार।
मिलित अ-कार म-कार भौ तुलसी हर-दातार॥१६॥

अनुस्वार इस जगत के उत्पत्ति का कारण है, मकार श्री का देनेहारा है, इन दोनों के योग से बना म जो तुलसीदास कहते हैं कि हर अर्थात् कल्याण का देनेहारा है॥ १६॥

ग्यान बिराग रु भक्ति सह मूरति तुलसी पेखि।
बरनत गति मति अनुहरत महिमा बिसद बिसेखि॥
॥१७॥

तुलसी—ज्ञान वैराग्य और भक्ति तीनों का स्वरूप रामरूप मूर्त्ति जान कर अपनी मति बुद्धि और गति शक्ति के अनुसार अत्यन्त निर्मल इन के माहात्म्य का वर्णन करते हैं॥ १७॥

नाम मनोहर जानि जिय तुलसी करि परिमान।
बरन बिपरजय भेद तें कहौं सकल सुभ ग्यान॥१८॥

तुलसी—राम इस नाम को अपने जी में अति मनोहर समझ, (और परिमान करि) राम इस को ठीक कर, वरण अक्षरों के

उलट पुलट से सुन्दर शान का वर्णन करते हैं, अर्थात् राम में ब्रह्मा विष्णु और शिव तीनों स्वरूप एक हो कर स्थित हैं। र को विसर्ग किया फिर ओकार कर के ओम्। ओम्-कार और सब मन्त्रों के बीज इसी नाम से निकलते हैं। श्रीं ह्रीं क्रीं आदि सब बीज रकार और अनुस्वार के योग से बने हैं इस से राम में सब मन्त्रों के बीज हैं। फिर र के आगे स और म के आगे ह का आगत कर और र को ओकार कर सोऽहम् इस से बना॥ १८॥

तुलसी सुभ-कारन समुझि गहत राम रस नाम।
असुभ-हरन सुचि-सुभ-करन भगति-ग्यान-गुन-धाम ॥१९॥

तुलसी—शुभ देने का कारण समझ कर, राम इस रसरूपी मधुर नाम को धारण करते हैं, यह अमंगल के नाश का और सुन्दर मंगल का करनेहारा और भक्ति ज्ञान और गुण का घर है॥१९॥

तुलसी राम समान बर सपन हुँ अपर न आन।
तासु भजन रति-हीन अति चाहसि गति परमान॥ ॥२०॥

तुलसी—कहते हैं कि राम के सदृश श्रेष्ठ और कोई दूसरा सपने में भी नहीं है,-उन के भजन की प्रीति से रहित हो कर पर श्रेष्ठ मान आदर और गति मुक्ति को, अथवा शास्त्र में जिस का प्रमाण है उस गति अर्थात् (सायुज्य) मुक्ति को चाहता है? यह असम्भव है॥ २०॥

अहि-रसना थन धेनु रस गन-पति-द्विज गुरु-बार ।
माधव सित सिय-जनम-तिथि सतसैया अवतार॥२१॥

अहि-रसना (२) धेनु-थन (४) रस (६) गन-पति-द्विज (१) गुरु-बार माधव सित-सिय-जनम तिथि सतसैया अवतार (भौं)

सम्वत् १६४२ वैसाख मास शुक्लपक्ष की नवमी को इस सतसई नाम ग्रन्थ का जन्म हुआ अर्थात् सतसई बनाई गई ॥ २१ ॥

भरन हरन अति अमित विधि तत्त्व-अरथ कवि-रीति।
सङ्केतिक सिद्धान्त-मत तुलसी बदत विनीति ॥ २२ ॥

अ० । कवि रीति न हरन, अति अमित विधि तत्त्वार्थ भरन विनीत तुलसी सङ्केतिक सिद्धान्त मत वदत ।

अनेक प्रकार के तत्त्वों के अर्थ को पुष्ट करनेहारी हो कर भी कवियों की रीत, अर्थात् रस अलङ्कार आदि को, हरन करनेहारी नहीं है जो सतसई, उस में नम्र हो कर तुलसीदास सङ्केत के द्वारा सब सिद्धान्तों के मत को कहते हैं ॥ २२ ॥

विमल बोध कारन सुमति सतसैया सुख-धाम ।
गुरु-मुख पढ़ि गति पाइहैं विमल भक्ति अभिराम॥२३॥

(विमल बोध सुमति कारन) निर्मल ज्ञान और अच्छी बुद्धि को करनेहारी और सुख की खान इस सतसई को लोग गुरु के मुख से पढ़ कर सुन्दर गति मुक्ति और भक्ति पावेंगे। अथवा गुरु के मुख से पढ़ेंगे, तो इस में गति अर्थात् अर्थबोधभक्ति होगी ॥ २३ ॥

म-न-भ-य-ज-र-स-त-लाग-जुत प्रगट छन्द जत होय।
सो घटना सुख-दा सदा कहत सु-कबि सब कोय ॥२४॥

(म) मगण ऽऽऽ, (न) नगण ।।।, (भ) भगण ऽ।।, (य) यगण ।ऽऽ, (ज) जगण ।ऽ।, (र) रगण ऽ।ऽ, (स) सगण ।।ऽ, और (त) तगण ऽऽ।, ये तीन तीन मात्राओं के आठ गण हैं। (लाग-जुत) लघु और गुरु के योग से जिस में जितने छन्द प्रगट होते हैं, उस रचना को सब अच्छे कवि लोग सुखदाई कहते हैं। गुरु और लघु मिल कर तीन २ मात्राओं से एक २ गण होते हैं। लघु का चिह्न सीधी (।) और गुरु का (ऽ) टेढ़ी पाई रक्खी गई है ॥ २४ ॥

जत समान ततवान लघु अपर बेद गुरु मान।
सञ्जोगा-ऽऽदि बिकल्प पुनि पद अनन्त करि जान॥२५॥

(जत समान ततवान लघु) जितने समान हैं, अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ये पाँच लघु हैं (अपर बेद गुरु मान) और चार ए ऐ ओ औ को गुरु वा दीर्घ माना है। फिर संयुक्त के आदि और पाद के अन्त अक्षर को विकल्प से गुरु कर के अनेक प्रकार के पद जाने जाते हैं अर्थात् पदों का अन्त नहीं है ॥ २५ ॥

दीरघ लघु करि तँहँ पढ़ब जँहँ सुख लह बिस्राम।
प्राकित प्रगट प्रभाव यह जनित बुधा-ऽबुध बाम॥२६॥

(जँहं सुख बिस्राम लह तंहं दीरघ लघु करि पढ़ब) जहाँ विश्राम हो, वहाँ दीर्घ अक्षर को भी लघु करके पढ़ना चाहिये (प्राकित यह बुधा-ऽबुध बाम जनित प्रभाव प्रगट) पण्डित मूर्ख और स्त्री सब के

लिये भाषा में यह प्रभाव प्रगट है) हिन्दी कविता में अपने सुबिधे के अनुसार, लघु दीर्घ का पढ़ना प्रसिद्ध है, कहीं गुरु को लघु और कहीं लघु को गुरु कर के पढ़ते हैं ॥ २६ ॥

दुइ गुरु सीता सार-गन राम सो गुरु लघु होइ।
लघु गुरु रमा प्रत्यच्छ-गन जुग लहु हर गन सोइ ॥२७॥

अब गुरु लघु के उदाहरण को दिखाते हैं; सीता (यह) दोनों गुरु, राम पहला गुरु और दूसरा लघु; रमा पहला लघु और दूसरा गुरु, और हर शब्द दोनों लघु अक्षर हैं। चिह्न दे कर यों जानना

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ।
सीता राम रमा हर

"सीता" चार मात्रा का है इस से (चार गण) श्रेष्ठ 'डगण'; और "राम, रमा" तीन तीन मात्रा होने से साक्षात् 'ठगण' हुये; और हर दो लघु मात्रा के कारण 'णगण' हुआ ॥ २७ ॥

सहस नाम मुनि-भनित सुनि तुलसी बल्लभ नाम।
सकुचति हिय हसि निरखि सिय धरम धुरन्धर राम ॥
॥ २८ ॥

(तुलसी बल्लभ नाम सहस नाम सम सुनि) तुलसीदास के प्यारे राम नाम को सहस्र नाम के तुल्य मुनियों के मुख से सुन-कर जानकी जी धर्म के भार को धारण करनेहारे राम की ओर देख कर मन में मुसका कर लजा जाती हैं ॥ मुसकाने का यह भाव है कि सीताजी सोचती हैं कि मेरा नाम दोनो दीर्घ है, सो एक नाम तुल्य है, और राम का एक लघु और एक गुरु हो कर भी सहस्र

नाम के तुल्य हुआ, यह आश्चर्य है। फिर यह सोच कर कि राम मेरे पति हैं, इन का नाम ऐसा होना ही चाहिये, यह समझ कर लजा जाती हैं॥ द्वितीयार्थ। राम के नामों में तुलसी बल्लभ इस नाम को सुन कर सीता सोचती हैं कि राम चन्द्र जो अनुकुल नायक हैं सदा जानकी बल्लभ कहाते, सो तुलसी बल्लभ क्यों हुये; तो इन को अब दक्षिण नायक कहना चाहिये; ऐसा सोच कर लजाती हैं, फिर रामकी ओर देख कर सोचतीं कि ये सदा प्यारी २ बातें कहते ओर तुलसी बल्लभ कहाते इस से शठ नायक हैं; फिर अपने मन में यह सोच कर कि जानकी बल्लभ कहने को मुनियों से नहीं कहते ओर हमारे प्यारे कहा कर भी तुलसी बल्लभ कहाते इस से लजाते भी नहीं, इस कारण धृष्ट नायक हैं। ये ४ नायक राम कविगूढ़ोक्ति से हुये॥ २८॥

दम्पति रस रसना दसन परिजन बदन सुगेह।
तुलसी हर-हित बरन सिसु दम्पति सहज सनेह॥२९॥

मुखरूपी घर में (रस रसना) जल ओर जीभ स्त्रीपुरुषरूप हैं, दांत नौकर-चाकर हैं, ओर महादेव जी के कल्याण को करनेहारे (राम) ये दोनों वर्ण लड़के हैं, जिन में स्त्रीपुरुष की प्रीति स्वाभाविक है। जीभ को राम के स्मरण में स्वभाव ही से प्रीति रखनी चाहिये॥ अथवा। इस दोहे में स्त्रीपुरुष का नाम प्रथम कह के फिर रस शब्द कहा; इस से सब रसों में प्रधान शृङ्गार-रस का नाम ले कर अपने काव्य में नव रसों का वर्णन सूचित किया॥ २९॥

हिय निरगुन नयनन सगुन रसना राम सुनाम ।
मनहुँ पुरट सम्पुट लसत तुलसी ललित ललाम॥३०॥

मन से समझे कि राम निर्गुण हैं, और नेत्र से श्यामवर्ण राम को देखे, और जीभ से राम इस सुन्दर नाम को जपे, तो ऐसी शोभा होती है मानो (पुरट) सुवर्ण के सम्पुटित मुख कमल में (ललित ललाम) सुन्दर हीरा जड़ा हुआ अति सोभ रहा है। मानों पद से यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ३० ॥

प्रभु-गुन-गन भूखन बसन बचन बिसेख सुदेस ।
राम-सुकीरति कामिनी तुलसी करतब केस ॥ ३१ ॥

श्रीरामचन्द्र की कीर्त्ति ही एक सुन्दर स्त्री है, और राम के गुणों का समूह उस स्त्री के गहने कपड़े हैं, तुलसी दास का करतब (काव्य) केश हैं, जो कामिनी के बचनरूपी सुन्दर (देस) अङ्गों में सोभते हैं। अर्थात् बचन में यदि रामचन्द्र के गुणगणों का वर्णन हो, तो वह सफल है, नहीं तो व्यर्थ है ॥ ३१ ॥

रघुबर-कीरति तिय-बदन इव कह तुलसी-दासु ।
सरद प्रकास अकास छबि चारु चिबुक तिल जासु॥३२॥

रामचन्द्र की कीर्त्ति, शरद ऋतु में आकाश के बीच शोभित होने-वाला स्त्री का मुख है, जिस के सुन्दर ठुड्डी में तिल है। चन्द्र में जो दाग है, वही मानो रामचन्द्र कीर्त्तिरूपी स्त्री के मुख चन्द का तिल है। अथवा तुलसी काव्य तिल है अर्थात् जिस प्रकार बाल

और तिल दोनों स्त्री के शरीर से सोभते वैसे ही मेरी कविता राम यश से सोभती ॥ ३२ ॥

तुलसी सोभत नखत-गन सरद सुधा-ऽऽकर साथ।
मुक्ता झालर झलक जनु राम सु-जस सिसु हाथ ॥३३॥

तुलसीदास कहते हैं कि शरद्काल के चन्द्रमा के साथ सब नक्षत्र सोभित हैं, सो कैसा देख पड़ता है मानो रामचन्द्र के यशरूपी लड़के के हाथ में मोतियों की झालर झलक रही है। यहाँ वर्ण-माला के और सब अक्षरों को तारा, और राम इन दो अक्षरों को चन्द्र बनाया है॥ अथवा राम यश को चन्द्र, और अपनी वाणी को तारा सम बनाया॥ रूपक अलङ्कार स्पष्ट है॥ ३३॥

आतम बोध बिबेक बिनु राम भजत अलसात।
लोक सहित पर-लोक की अवस बिनासी बात ॥३४॥

आत्मा के ज्ञान और विवेक के न रहने से रामचन्द्र के भजन में लोग आलस करते हैं, इसी से इस लोक के सहित परलोक की बात को अवश्य कर नष्ट कर देते हैं; यदि राम भजें, तो लोगों के दोनों लोक बनें॥ ३४॥

बरु मराल मानस तजै चन्द्र सीत रबि घाम।
मोर मदादिक कै तजै तुलसी तजै न राम ॥ ३५॥

चाहे राजहंस मान सरोवर को छोड़ दे, चन्द्रमा शीतलता को छोड़े, और सूर्य्य घाम को त्याग करें, और मयूर अपने वर्षा ऋतु में

मदमत्त होने को छोड़ दे, परन्तु तुलसीदास राम भक्ति न छोड़ेंगे। जहाँ महासिल पाठ है, वहाँ एक प्रकार का पत्थर, जिस से मोर निकलता है, ऐसा अर्थ करना॥ ३५॥

आसन द्रिढ़ आहार द्रिढ़ सु-मति ग्यान द्रिढ़ होय।
तुलसी बिना उपासना बिनु दुलहे की जोय॥ ३६॥

योगशास्त्र में कहे हुये योगियों के समान चाहे आसन खूब दृढ़ हों और भोजन, बुद्धि और ज्ञान सब दृढ़ ही दृढ़ रहे, तो भी रामचन्द्र की उपासना के बिना ये सब मानो रॉड़ स्त्री हैं॥ ३६॥

राम-चरन-अवलम्ब बिनु परमा-ऽरथ की आस।
चाहत बारिद बुन्द गहि तुलसी चढ़न अकास॥ ३७॥

श्रीरामचन्द्र के चरण के सहारे के बिना मुक्ति पाने की आशा ऐसी है, जैसे कि मेघ के बुन्द को पकड़ कर कोई आकाश पर चढ़ना चाहे॥ ३७॥

राम-नाम तरु-मूल रस अष्ट पत्र फल एक।
जुगल सन्त जुग चारि जग बरनत निगम अनेक॥ ३८॥

राम नाम रूपी वृक्ष मूल है, और उस के (रस अष्ट) छ आठ चौदहो विद्या पत्ते हैं, और ज्ञानरूप एक फल है, अनेक निगम वेद और साधु लोग उसे (युगल) अर्थात् ज्ञान और भक्ति मय, और संसार में चारो युग में चार अर्थात् अर्थ, धर्म्म, काम और मोक्ष रूप के वर्णन करते हैं॥ ३८॥

राम-काम-तरु परिहरत सेवत कलि-तरु ठूठ।
स्वा-ऽरथ परमा-ऽरथ चहत सकल मनोरथ झूठ ॥३९॥

मनुष्यलोग रामरूपी कल्पवृक्ष को छोड़ कर ठूठे अर्थात् पत्ताफल-हीन कलिकाल के वृक्ष बहेड़े की सेवा करते हैं, और इस लोक और परलोक दोनों को चाहते हैं, (इस हेतु) उनके सब मनोरथ झूठे हैं। ऊपर के दोनों दोहाओं में रूपक अलङ्कार है। किसी २ पुस्तक में कम-तरु पाठ भी मिलता है। वहां राम यश कल्प वृक्ष का नाम है ऐसा अर्थ करना ॥ ३९ ॥

तुलसी केवल कामना राम चरित आराम।
निसि-चर कलि-करनि हत तरु माँहि कहत बिधि
बाम ॥ ४० ॥

तुलसी दास जी कहते हैं कि केवल (कैवल्य) मुक्ति की कामना है, और राम का चरित ही आराम अर्थात् बागीचा है, और कलिकाल-रूपी राक्षस जो हाथी है, सो वृक्ष को नाश करता है, पर मोह में पड़ कर लोग कहते हैं कि भाग्य उलटा है॥ अथवा कलि-करनी अर्थात् कलिकाल का काम ही राक्षस है जो भाग्य तरु को नष्ट कर देता है॥ ४० ॥

स्वा-ऽरथ परमा-ऽरथ सकल सु-लभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर॥ ४१॥

(स्वा-ऽरथ) इस लोक का सुख (परमा-ऽरथ) मोक्ष एक ही रामचन्द्र की सेवा से (सु-लभ) सहज में मिल सकता है। तुलसीदास (अपने

मन वा दूसरे भक्त से) कहते हैं कि दूसरे की सेवा तेरे लिये उचित नहीं है ॥ ४१ ॥

हित सन हित रति राम सन रिपु सन बैर बिहाय।
उदासीन सन्सार सन तुलसी सहज सुभाय ॥ ४२ ॥

जो अपने मित्र हैं उन से मित्रता, और रामचन्द्र में भक्ति करना चाहिये। शत्रुओं के साथ बैर न कर संसार से उदासीन रहना उचित है। यही (साधुओं की) स्वाभाविक प्रकृति है अथवा तुलसी अपने मन से कहते हैं कि ऐसे स्वभाव को तुम ग्रहण करो ॥ ४२ ॥

तिल पर राखे सकल जग बिदित बिलोकत लोग।
तुलसी महिमा राम की को जग जानन जोग ॥ ४३ ॥

(तिल पर सकल जग राखे) आँख में एक तिल दिया जिस के द्वारा लोग सब संसार को देखते हैं, ऐसे रामचन्द्र के माहात्म्य को कौन जान सकता है। ईश्वर ने आँख के तिल को ऐसा छोटा बनाया, तो भी उस में ऐसी शक्ति दी कि सब कुछ देख पड़ता है ॥ ४३ ॥

जहाँ राम तहँ काम नहिँ जहाँ काम नहिँ राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिँ रबि रजनी एक ठाँम ॥ ४४ ॥

जहाँ रामचन्द्र हैं, वहाँ कामना वा कामदेव नहीं रहते, अर्थात् यज्ञ-आदि कर के अपनी कामना सिद्ध करे, तो स्वर्गादि का सुख मिलता है, परन्तु परमेश्वर नहीं मिलते, और जब कामना वा भोग मिला, तो राम नहीं मिल सकते। यदि निष्काम आराधना करे, तो ईश्वर मिलता है। अथवा जिस पर राम की दया हो, उसे

काम वाधा नहीँ करता, क्योँकि रात और दिन दोनोँ एक ही समय एक स्थान मेँ कभी नहीँ हो सकते। दृष्टान्त अलङ्कार स्पष्ट है॥४४॥

राम दूरि माया प्रबल घटत जानि मन माँह।
बढ़त भूरि रबि दूरि लखि सिर पर पग तर छाँह॥४५॥

(राम दूरि प्रबल माया भरि बढ़त) जब रामचन्द्र दूर हैँ, तो बलवती माया (कर्म की फाँस) बहुत बढ़ती है, पर यदि रामरूपी सूर्य्य मन मेँ रहेँ, तो उन्हे देख कर माया घट जाती है, जैसे जब सूर्य्य दूर रहते हैँ, तो परछाँही बढ़ती है, और जब दोपहर को सूर्य्य सिर पर आ जाते हैँ, तो परछाँही घट कर पाँव तले आ जाती है॥४५॥

सम्पति सकल जगत की स्वासा सम नहिँ होइ।
सो स्वासा तजु राम-पद तुलसी अलग न खोइ॥४६॥

तुलसी कहते हैँ कि सब संसार का ऐश्वर्य्य एक साँस के समान नहीँ होता अर्थात् मरते समय संसार का राज भी दे दो, तो भी एक स्वास नहीँ मिलता, उस स्वास को रामचन्द्र का चरण छोड़ कर और किसी स्थान मेँ न खोओ। राम भजन मेँ समय बिताओ ॥ ४६ ॥

तुलसी सो अतिचतुरता राम-चरन लवलीन।
पर-मन पर-धन हरन को गनिका परम प्रबीन॥४७॥

तुलसी कहते हैँ कि वही चतुरता बड़ी है जो राम के चरण मेँ लगी रहे, नहीँ तो दूसरे का मन और धन हरने के लिये तो वेश्या बड़ी चतुर होती हैँ। उस की चतुराई से जगत की बुराई

ही होती है, वैसे ही संसार की माया में फंस कर धन-आदि कमाने की चतुरता से मनुष्य को बन्धन ही होता है ॥ ४७ ॥

चतुराई चूल्हे परे जम गहि ग्यानहिँ खाय।
तुलसी प्रेम न राम-पद सब जर मूल नसाय ॥ ४८ ॥

वैसी चतुराई चूल्हे में जल जाय और वैसा ज्ञान जमराज का आहार हो जिन से रामचन्द्र के चरण में प्रीति न उत्पन्न हो, क्योंकि ऐसे ज्ञान से सब कुछ जड़मूल से नष्ट होता है, जीव और अधिक बन्धन में पड़ता है ॥ ४८ ॥

प्रेम सरीर प्रपञ्च रुज उपजी बड़ी उपाधि।
तुलसी भलि सो बैदई बेगि बन्धाइ ब्याधि ॥ ४९ ॥

(सरीर प्रपञ्च रुज) शरीर ही प्रपञ्चरूप रोग है और इस में प्रीति उत्पन्न हुई है, तुलसी कहते हैं कि इस शरीर के कामक्रोधादि बड़ी२ उपाधि और व्याधि को बाँधनेहारी बैदई अर्थात् ज्ञान भला है जिस के होने से इस में से व्याधि घट जाती है ॥ ४९ ॥

राम बिटप तरु बिरुद बर महिमा अगम अपार।
जा कहँ जहँ लगि पहुँच है ता कहँ तहँ लगि डार ॥५०॥

रामचन्द्ररूपी श्रेष्ठ वृक्ष बहुत बड़ा है और उन का महात्म्य अगम्य और अज्ञेय है, परन्तु जिस को जहाँ तक उस महिमा का ज्ञान है उस का वही डार पकड़ के बचना हो सकता है। राम के चरित अपार हैं इन में से थोड़ा भी जपे तो मुक्ति मिल सकती है॥५०॥

तुलसी कोसल-राज भजु जनि चितवै कहुँ ओर ।
पूरन राम मयङ्क मुख कर निज नयन चकोर ॥ ५१ ॥

तुलसी दास कहते हैं कि अयोध्या के राजा राम को भजो और किसी की ओर न देखो अर्थात् किसी की भी उपासना न करो। रामचन्द्र पूर्णचन्द्ररूपी मुख के लिये अपने नेत्रों को चकोर पक्षी बना डालो। अर्थात् जैसे चकोर चन्द्रमा के किरणों को पीता है वैसे ही तेरे नेत्र राम मुख देखैं॥ ५१॥

ऊँचे नीचे कहुँ मिलै हरि-पद परम पियूख ।
तुलसी काम-मधूख तें लागै कवनि हुँ रूख ॥ ५२ ॥

रामचन्द्र के चरण में प्रेमरूपी अमृत, चाहे जहाँ ऊंची वा नीची जात वा नीच के पास मिले, विना लिये न छोड़ो, इस में दृष्टान्त देते हैं कि कामरूपी मधु के छाते से चाहे जिस ओर से लो मधुरूपी अमृत अवश्य मिलेगा। जहाँ "मयूख" पाठ हो वहाँ चाहे (कवनि हुँ रूख तें लागै) किसी वृक्ष से लगे पर चकोर को चन्द्रकिरण (मयूख) से सुख होता है वैसे ही भक्त को भी होना चाहिये, ऐसा अर्थ करना॥५२॥

स्वामी होनौं सहज है दुरलभ होनौं दास ।
गाडर लाये ऊँन कों लाग्यो चरन कपास ॥ ५३ ॥

स्वामी होना बहुत सहज है, परन्तु सेवक होना बहुत कठिन है। दृष्टान्त देते हैं कि जैसे (गाडर) भेड़ी लाया कि उस से ऊन मिलेगा, सो वह उस के खेत की रूई (मनबे) का वृक्ष ही चरने लगी। मनुष्य

देह इस लिये पाया कि पुन्य कर मुक्ति पावेंगे ; सो उसी शरीर से और भी पाप होने लगा ॥ ५३ ॥

चलब नीति-मग राम-पद-प्रेम निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारत फीक ॥५४॥

नीति की राह से चलना और रामचन्द्र के चरण में प्रीति रखना बहुत अच्छा है, इस में तुलसी दृष्टान्त देते हैं कि ऐसा वस्त्र पहनना चाहिये जो धुलाने से फीका न हो जाय। इस संसार का सुखभोग नश्वर होने के कारण फीका है, परन्तु ईश्वर प्रीति नश्वर नहीं है ॥ ५४॥

तुलसी राम क्रिपालु तें कहि सुनाउ गुन दोस।
होउ दूबरी दीनता परम पीन सन्तोस ॥ ५५ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि परम दयालु रामचन्द्र से अपना गुन अवगुन कह सुनाओ अर्थात् क्षमा के लिये प्रार्थना करो तो तुम्हारी दीनता छोटी हो जायगी और सन्तोष बढ़ेगा ॥ ५५ ॥

सुमिरन सेवन राम-पद राम-चरन पहचानि।
ऐसे हु लाभ न ललक मन तो तुलसी हित हानि॥५६॥

राम के चरण को पहचान के उस की सेवा और स्मरण करो, जो ऐसे उत्तम लाभ में भी तुम्हारा मन न ललके, तो तुम्हारे कल्याण की बड़ी हानि होगी ॥ ५६ ॥

सब सङ्गी बाधक भये साधक भये न कोय।
तुलसी राम क्रिपालु तें भलो होय सो होय ॥ ५७ ॥

जितने मित्र मिले सब बाधा ही डालनेहारे हुये, कोई सहायता

नहीं करता, परन्तु अब श्रीराम दयानिधाम से जो भलाई हो वही ठीक। तात्पर्य्य यह कि जितनी आँख कान नाक आदि इन्द्रियाँ वा लड़के वाले हैं, सब संसार में पुरुष को अपने विषय में लगा कर बाँधते हैं, परमार्थ के उपयोगी कोई नहीं, इस कारण ईश्वर की आराधना परम उपकारी है ॥ ५७ ॥

तुलसी मिटइ न कलपना गये कलप-तरु छाँह।
जौ लगि द्रवइ न करि क्रिपा जनक-सुता को नाँह ॥ ५८ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि कल्पवृक्ष की छाया में जाने से भी भोग पाने की कल्पना नहीं रुकती, परन्तु यदि रामचन्द्र दया करें और भक्तिज्ञान दे कर चित्त को स्थिर करें, तो भोग की इच्छा कम हो सकती है, क्योंकि मनुस्मृति में लिखा है कि (न जातु कामः कामाना-मुपभोगेन शाम्यति) उपभोग करने से कामशमन नहीं होता ॥ ५८ ॥

बिमल बिलग सुख निकट दुख जीव न समइ सुरीत।
रहित राखिये राम को तजे ते उचित अनीत ॥ ५९ ॥

(जीव बिमल) प्राण निर्मल शुद्धस्वरूप परमात्मा का अंश है, (सुख बिलग) परन्तु नाना उपाधियों के वशीभूत हो कर सुखरूप परमात्मा से अलग हुआ है, (दुख निकट) और संसारी दुख में लिप्त हुआ है। (राम को रहित राखिये उचित न) सो रामरूप परमात्मा से इस जीव को अलग रखना उचित नहीं है, (अनीत) वरन अलग रखना बड़ी अनीति का काम है। (समइ राखिये) इस लिये ऐसा

करना कि यह राम से समय अर्थात् मेल रक्खे। संसार के सब पदार्थ नश्वर हैं राम अनश्वर हैं, इस से उन से प्रेम रखना अवश्य चाहिये॥ ५९॥

जाय कहब करतूति बिनु जाय जोग बिनु छेम।
तुलसी जाय उपाय सब बिना राम-पद-प्रेम॥ ६०॥

बिना करनी के कहना व्यर्थ है, बिना कल्याण के योग व्यर्थ और रामचन्द्र के चरण में भक्ति के बिना संसारी सब उपाय व्यर्थ हैं॥ ६०॥

तुलसी रामहिँ परिहरेँ निपट हानि सुनु मोद।
जिमि सुरसरि गत सलिल बर सुरा सरिस गङ्गोद॥६१॥

तुलसीदास कहते हैं कि हे मन (सुनु) सुनो (रामहिं परिहरें मोद निपट हानि) रामचन्द्र के बिना सुख भी बड़ी हानि के समान है, जैसे गङ्गाजल जब गङ्गाजी में है तो उत्तम है, परन्तु वही मदिरा में मिलने से अपवित्र मद्य हो जाता है॥ ६१॥

हरे चरैँ तापहिँ बरे फरे पसारहिँ हाथ।
तुलसी स्वा-ऽरथ मीत जग परमा-ऽरथ रघुनाथ॥६२॥

जब तक वृक्षरूपी मनुष्य हराभरा है तब तक लोग उसे चरते हैं, उस का धन जहाँ तक बने खाते पीते हैं, जब सूखता है तो तापते उसकी लकड़ी जलाते और मनुष्य पक्ष में सुख पाते हैं और जब फरता है तो हाथ पसार के उस का फल तोड़ते मनुष्य पक्ष में उस के साथ सुख भोगते हैं, इस प्रकार संसारी लोग स्वारथ अर्थात् अपने

काम के सङ्गी हैं, परन्तु परलोक सुख देनेहारे केवल रामजी हैं ॥६२॥

तुलसी खोटे दास के रघुपति राखत मान ।
ज्यों मूरख उपरोहितहिँ देत दान जजमान ॥ ६३ ॥

खराब सेवक का भी रामचन्द्र आदर करते हैं जैसे उपरोहित मूर्ख हो तो भी जजमान उसे दान देता है ॥ ६३॥

ज्यौं जग बैरी मीन के आपु सहित परिवार ।
त्यौं तुलसी रघुनाथ बिन आपन दसा बिचार ॥६४॥

जैसे सब संसार अपने परिवार सहित मछली के शत्रु हैं, अर्थात् बड़े मच्छ छोटे को खाते हैं; उसी प्रकार रामचन्द्र बिना अपनी दशा समझनी चाहिये ॥ ६४ ॥

तुलसी राम भरोस सिर लिये पाप धरि मोट ।
ज्यौं व्यभिचारिनि नारि के बड़ी खसम की ओट॥६५॥

तुलसी कहते हैं की राम भरोसे पर सिर पर पाप की मोटरी धर लिया जैसे खराब स्त्री के लिये अपने पति का आड़ बड़ा रहता है। अभिप्राय यह है कि राम भरोसे पाप करना अनुचित है ॥ ६५॥

स्वामी सीतानाथ-जी तुम लगि मेरी दैार ।
तुलसी काग जहाज कँहँ सूझत और न ठैार॥ ६६ ॥

हे प्रभु राम ! आप ही की मुझे आशा है, मैं जहाजी कौवे के समान समुद्र के मध्य में हूँ, किसी ओर नहीं सूझती ॥ ६६ ॥

तुलसी सब छल छाड़ि के कीजे राम सनेह।
अन्तर पति सों है कहा जिन देखी सब देह ॥६७॥

तुलसी (भक्त से वा अपने मन से) कहते हैं कि सब प्रकार का छल छोड़ कर रामपद में प्रीति करो। जिस पति ने सब देह देखा उस से किस वस्तु का अन्तर है॥ ६७॥

सब ही को परखे लखे बहुत कहे का होइ।
तुलसी तेरो राम तजि हित जग और न कोइ॥६८॥

बहुत क्या वर्णन करें सब को देखा और परीक्षा लिया अपना हित राम को छोड़ इस संसार में और कोई नहीं है ॥ ६८॥

तुलसी हम सों राम को भलो मिलो है सूत।
छोड़े बनइ न सुरझे ज्यों घर माहँ कपूत॥६९॥

तुलसी कहते हैं कि राम को मुझ सा अच्छा कुपुत्र भक्त वा अरुझा हुआ सूत मिला है; जैसे किसी गृहस्थ के घर में कुपुत्र वा अरुझा सूत रहता है, तो न वह उसे रख सके न छोड़ सके ॥६९॥

कोटि बिघ्न सङ्कट बिकट कोटि सत्रु जौ साथ।
तुलसी बल नहिँ करि सकैँ जौ सुदिष्ट रघुनाथ॥७०॥

चाहे करोरों बिघ्न और बड़ा भारी सङ्कट और करोरों शत्रु भी हों, तो भी जो राम प्रसन्न रहैं तो वे कुछ नहीं कर सकते न उन का बल लगे॥ ७०॥

लगन मुहूरत जोग बल तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने सबै दाहिने ताहि॥ ७१॥

तुलसी,—लग्न साइत श्रोर योग के बल को कुछ नहीं गनते। क्योंकि राम जब जिस पर अनुकूल होते हैं उस के लिये सब सुखदाई हो जाते हैं॥७१॥

प्रभु प्रभुता जा को दई बोल सहित गहि बाँह।
तुलसी ते जागत फिरहिँ राम छच की छाँह॥ ७२॥

श्री राम ने बाँह पकड़ कर श्रोर बात कह कर जिन्हें सामर्थ्य दिया वे राम की रच्छा में रह कर सावधानता से विचरते फिरते हैं॥७२॥

साधन सासत सब सहत सुभ न सुखद फल-लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझ बूझ बुध काहु॥ ७३॥

कोई कोई पण्डित चातक श्रोर मेघ की रीझ अर्थात् प्रीति समझते हैं। वह सब दुख सहता है श्रोर (न सुखद न सुभ न फल लाभ अर्थात्) उस को न सुख होता न कल्याण श्रोर न किसी फल का लाभ होता श्रोर न जल पाने का कोई साधन वा उपाय है। जहाँ सुमन सुखद पाठ हो वहाँ—बहुतेरे जन फूल के समान सुख देनेहारे संसारी कर्म फल को पाने के लिये अथवा फलरूप ज्ञान के हेतु सब प्रकार के साधन उपायों को करते हैं श्रोर दुख सहते हैं श्रोर चातक तथा मेघ की प्रीति को कम लोग समझते हैं—ऐसा अर्थ करना चाहिये॥७३॥

चातक जीवन जलद कहँ जानत समय सुरीति।
लखत लखत लखि परत है तुलसी प्रेम प्रतीति ॥७४॥

चातक अपने प्राणरूप मेघ का वा जल और मेघ दोनों का सुसमय और सुरीति जानता है। औरों को उस का प्रेम और विश्वास देखते देखते कठिनता से लख पड़ता है। अथवा जैसे चातक के बच्चे देखते २ मेघ जल की रीत जान लेते वैसे ही प्रेमी प्रीति और विश्वास को समझ लेते हैं ॥ ७४ ॥

जीव चराचर जहँ लगे है सब को प्रिय मेह।
तुलसी चातक मन बसेउ घन सों सहज सनेह ॥७५॥

चर मनुष्यादि अचर वृक्षादि जितने जीव संसार में हैं सब को जल प्यारा है परन्तु चातक के मन में मेघ की सच्ची प्रीति रहती है॥ ७५॥

डोलत विपुल बिहङ्ग बन पियत पोखरिन बारि।
सुजस धवल चातक नवल तोर भुवन दस-चारि ॥७६॥

बन में बहुतेरे पक्षी विचरा करते हैं और पोखरियों का जल पीते हैं परन्तु हे चातक चौदहों लोक में तेरा निर्मल और नया यश छा रहा है कि केवल स्वाती के मेघ का जल पीता है और नहीं॥७६॥

मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।
सुजस ललित चातक बलित रहेउ भुवन भरि तोर॥७७॥

कोकिल मोर और चकोर की बोली मीठी है और मन कपट-भरा है। क्योंकि वे सब कीड़े मकोड़े सर्प और आग आदि के खाने-

हारे हैं। परन्तु हे चातक लोक में तेरा सुन्दर नाम विराज रहा है॥ इन कई एक दोहों में अन्योक्ति अलङ्कार मान कर कोकिल आदि से दूसरे२ कपटी जनों और चातक से तुलसी आदि प्रेमी भक्त जनों का अर्थ भी ध्वनित होता है॥७७॥

माँगत डोलत है नहीं तजि घर अनत न जात।
तुलसी चातक भक्त की उपमा देत लजात॥७८॥

चातक स्वाती का जल माँगता है पर भक्त माँगता नहीं, और घर छोड़ कहीं नहीं जाता। इस से तुलसीदास चातक की उपमा भक्त से देने में लजाते हैं॥ उन दोहों में चातक के मिस से भक्त की महिमा दिखा कर इस में प्रतीप अलङ्कार द्वारा चातक से भी अधिक भक्त की बड़ाई दिखाई। यदि ऐसा अर्थ करें कि भक्त माँगते हैं और चातक नहीं माँगता, तो चमत्कारी नहीं आती और बड़े२ कवियों ने लिखा है (चातकोऽपि तृषिताम्बु याचते—घट कर्पर:) कि प्यासा हो कर चातक जल माँगता है इस से विरोध होगा॥७८॥

तुलसी तीनों लोक मों चातक ही के माथ।
सुनियत जासु न दीनता किये दूसरो नाथ॥७९॥

तीनों लोक में चातक ही के शिर (सुयश का मुकुट) है, अथवा उसी के शिर को सच्चा शिर कह सकते हैं, जिस की दीनता न सुनने में आई अर्थात् जिस ने स्वाती जलद को छोड़ और किसी को अपना स्वामी न बनाया॥ ७९॥

प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत अधीन इन किये कनौड़ो दानि॥ ८०॥

पपीहे और मेघ के प्रेम में एक नई बात देखी जाती है कि जगत में अधीन जाचक आप लजाता है, परन्तु पपीहे ने अपने दानी को लज्जित किया॥ ८०॥

ऊँची जाति पपीहरा पियत न नीचो नीर।
कै जाचे घन स्याम सों कै दुख सहै सरीर॥ ८१॥

पपीहा ऊँची जात का हो कर नीचे का जल नहीं पीता, या तो काले मेघों से माँगता, नहीं तो प्यासों का दुःख सहता है॥ ऊँची जात के भक्त भी घन के सम श्यामवर्ण राम ही की सेवा करते हैं॥ ८१॥

कै बरखे घन समय सिर कै भरि जन्म निरास।
तुलसी जाचक चातकहिँ तऊ तिहारी आस॥ ८२॥

या तो समय पर स्वाती लगने पर मेघ सिर पर बरसता है (तो पीते), नहीं तो जन्म भर आशाहीन होते, तो भी चातकरूपी जाचक भक्त को केवल घनश्याम की आशा है॥ ८२॥

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद को दोख।
या तेँ प्रेम पयोधि बर तुलसी जोग न रोख॥ ८३॥

चातक भक्त के मन में स्वामी मेघ का दोष कभी नहीं आता इसी से उस का प्रेमभक्तिरूपी समुद्र क्रोध के योग्य नहीं है॥ ८३॥

तुलसी चातक माँगनो एक एक घन दानि।
देत सो भू-भाजन भरत लेत घूँट भरि पानि॥८४॥

चातक माँगनेहारा है और एक एक मेघ देनेहारे ऐसे हैं कि भूमिरूपी पात्र भर जाता है परन्तु वह अपने लिये केवल घोँट भर जल लेता है। अथवा चातक का माँगना और मेघ का देना दोनों एक २ प्रकार मे अद्भुत हैं, क्योँकि वह माँगता थोड़ा और मेघ देता बहुत है जिस मे लोगों का उपकार होता है॥ ८४॥

होइ अधीन जाचै नहीँ सीस नाइ नहिँ लेइ।
ऐसे मानी माँगनहिँ को बारिद बिनु देइ॥८५॥

अधीन हो कर नहीँ माँगते न शिर नीचा कर के लेवेँ ऐसे मानी माँगनेहारे को घनश्याम छोड़ और कौन देता है॥ ८५॥

पवि पाहन दामिनि गरज अति झकोर खर खीझ।
दोस न प्रीतम रोस लखि तुलसी रागहिँ रीझ॥८६॥

वज्र पाषाण बिजुली गरजना बहुत झटास और अधिक क्रोध आदि अपने प्रभु का रोष देख कर भी उन का दोष नहीँ गनता परन्तु भक्तिरूप अनुराग मे डूबा रहता है॥ (चातक वा भक्तजन)॥ ८६॥

को न जिआये जगत मँहँ जीवन दायक पानि।
भयो कनौड़ा चातकहिँ पयद प्रेम पहिचानि॥८७॥

जीव वा प्राण के देनेहारे मेघ ने इस संसार में किस को नहीँ जिलाया अर्थात् सभी को जिलाया परन्तु चातक के प्रेम को देख कर उसे लज्जित होना पड़ा॥ ८७॥

मान राखिबो माँगिबो पिय सोँ सहज सनेहु।
तुलसी तीनोँ तब फबै जब चातक मत लेहु॥८८॥

मान रखना माँगना और स्वामी से स्वाभाविक प्रेम ये तीनोँ तभी सजते हैँ जब चातक से उपदेश लिया जाय॥८८॥

तुलसी चातकहीँ फबै मान राखिबो प्रेम।
बक्र बूँद लखि स्वाति को निदरि निबाहै नेम॥८९॥

तुलसी कहते हैँ कि मान और प्रेम रखना चातक ही को शोभित होता है क्योँकि स्वाती का बूँद टेढ़ा देखे तो वह उस का निरादर कर अपना नियम निबाहता है अर्थात् सीधे ही बूंद को लेता है॥८९॥

उपल बरखि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक जलद तजि कबहुँ आन की ओर॥९०॥

पत्थल बरस कर गरजता तड़पता है और बड़े कठिन वज्र को गिराता है (तो भी) क्या चातक मेघ को छोड़ दूसरे की ओर कभी देखता है॥ काकु है अर्थात् नहीँ देखता और कितना भी दुख पावे तो भी भक्ति मेँ स्थिर रहता है॥९०॥

बरखि परुख पाहन जलद पच्छ करै टुक टूंक।
तुलसी तदपि न चाहिये चतुर चातकहिँ चूक॥९१॥

मेघ कठोर कठोर पत्थलोँ को बरस कर पङ्ख को तोड़ कर,

टुकड़े टुकड़े कर देता है। तुलसी कहते हैं तो भी चतुर चातक को (सेवा से) चूकना न चाहिये ॥ ८१ ॥

रटत रटत रसना लटी त्रिखा सूखि गए अङ्ग ।
तुलसी चातक के हिये नित नूतनहि तरङ्ग ॥ ८२ ॥

(पानी के लिये) रटते रटते जीभ लट गई तृषा से अङ्ग सूख गये (तो भी) चातक के हृदय में नये (प्रेमरूपी) तरङ्ग प्रति दिन उठा करते हैं ॥ ८२ ॥

गङ्गा जमुना सुरसती सात सिन्धु भरि पूरि ।
तुलसी चातक के मते विन स्वाती सम धूरि ॥ ८३ ॥

गङ्गा यमुना सरस्वती (आदि नदियाँ) और सातों समुद्र में जल भरा है, तो भी तुलसी कहते हैं कि चातक स्वाती के जल विना इन सबों को धूलि के समान समझता है ॥ ८३ ॥

तुलसी चातक के मते स्वाति उ पियत न पानि ।
प्रेम-त्रिखा बढ़ती भली घटे घटैगी कानि ॥ ८४ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि (तुलसी के मते चातक स्वाति उ पानि न पियत) मेरे मत से चातक स्वाती के जल को भी इच्छा भर नहीं पीता, क्योंकि प्रेम की प्यास का बढ़ना भला है (घटे कानि घटैगी) और यदि जल पी लेंगे तो इच्छापूर्ति के कारण प्रेम घटेगा तो लज्जा जाती रहेगी ॥ ८४ ॥

सर सरिता चातक तजेउ स्वाति उ सुधि नहिँ लेइ ।
तुलसी सेवक बस कहा जो साहिब नहिँ देइ ॥ ८५ ॥

चातक ने तलाव नदी सब त्याग किया और स्वाती ने भी खबर न ली। तुलसीदास कहते हैं कि जो स्वामी न दे तो इस में सेवक का क्या वश चलेगा ॥ ८५ ॥

आस पपीहा पयद की सुनुहो तुलसी दास ।
जो अँचवे जल स्वाति को परिहरि बारह मास ॥८६॥

पपीहे का मेघ की आशा करना सुन कर (आश्चर्य होता है) जो बारहों महीने प्यासों मरे तो मरे पर स्वाति ही का जल पीता है ॥ ८६ ॥

चातक घन तजि दूसरो जिअत न नाई नारि ।
मरत न माँगे अरध-जल सुरसरि हूँ को बारि ॥ ८७ ॥

चातक ने जीते जी मेघ को छोड़ और किसी के जल के लिये नटई वा गला न रोपा और आधे जल में, बीच धरा में, मरते मरते भी गङ्गा जी के जल को भी न माँगा ॥ ८७ ॥

ब्याधा बधेउ पपीहरा परेउ गङ्ग-जल जाइ ।
चोंच मूँदि पीवै नहीँ धिग पीनोँ पन जाइ ॥ ८८ ॥

व्याधे ने पपीहे को मारा और वह गङ्गा के जल में जा गिरा, (परन्तु) चोंच मूँद लिया और जल न पीया, क्योंकि प्रेम के नष्ट होने के भय से पीने को धिक्कार समझा ॥ ८८ ॥

बधिक बधे पर पुन्य जल उपर उठाई चोँच ।
तुलसी चातक प्रेम-पट मरत न लायो खोँच ॥ ८९ ॥

व्याधे ने पपीहे को मारा और वह जा कर पवित्र जल में गिरा, तो भी अपना चोंच ऊपर उठा लिया। तुलसीदास कहते हैं कि

(देखना चाहिये) पपीहे ने मरते समय भी अपने प्रेमरूपी वस्त्र में खोंच नहीं लगने दिया ॥ ९९ ॥

चातक सुतहिँ सिखाव नित आन नीर जनि लेहु।
यह हमरे कुल को धरम एक स्वाति सों नेहु ॥१००॥

चातक अपने बच्चे को अथवा भक्त अपने मन वा शिष्यों को प्रतिदिन सिखाते हैं कि दूसरा जल मत लेना क्योंकि मेरे कुल का यही धर्म है कि एक स्वाती को छोड़ और किसी से प्रेम नहीं करते ॥ १०० ॥

दरस परस नहिँ आन जल बिनु स्वाती सुनु तात।
सुनत चेचुआ चित चुभेउ समुझि नीति बर बात॥१०१॥

हे प्यारे विना स्वाती के दूसरे जल का स्पर्श वा दर्शन न (करना) यह नीति की अच्छी बात सुनते ही बच्चे वा भक्त के मन में चुभ गई ॥१०१॥

तुलसी सुत सों कहत यह चातक बारहिँ बार।
तात न तरपन कीजियो बिना बारि-धर बार॥१०२॥

चातक वारवार अपने पुत्र से कहता है कि हे प्यारे विना स्वाती के मेघ के जल तर्पण मत करना ॥ १०२ ॥

बाज चङ्गुगत चातकहिँ भई प्रेम की पीर।
तुलसी पर-बस हाड़ मम परिहे पुहुमी-नीर॥१०३॥

बाज चङ्गुल में पड़े चातक को प्रेम का दुख हुआ, उस ने विचार कि मेरा हाड़ परवश हो कर भूमि के जल में पड़ेगा। अथवा चातक को यह डर हुआ कि ऐसा न हो कि मेरे हाड़ को कोई दूसरे जल में गिरा दे ॥ १०३ ॥

अण्ड फोरि किय चेंचुआ तुख पर नीर निहारि ।
गहि चङ्गुल चातक चतुर डारेउ बाहर बारि ॥१०४॥

अण्डा फोर कर बच्चा निकाला पर उस के फुकले को जल में पड़ा देख कर चतुर चातक ने चङ्गुल से उसे पकड़ कर जल के बाहर निकाल दिया ॥ १०४ ॥

होत न चातक पातकी जीवन-दानि न मूढ़ ।
तुलसी गति प्रह्लाद की समुझि प्रेम-पद गूढ़ ॥१०५॥

चातक भी पापी नहीं होता और उस का जल देनेहारा भी मूर्ख नहीं होता । क्योंकि वह प्रेम के गूढ़तत्व और प्रह्लाद की गति को समझता है । अभिप्राय यह कि अति प्यासा हो कर भी और नदियों तथा गङ्गा आदि के जल को न पी कर आत्म पीड़ा का पाप चातक को नहीं लगता और स्वाती में न बरसानेहारा मेघ भी हठी नहीं कहाता । चातक समझता है कि प्रह्लाद जी ने अपने पिता की आज्ञा न मानी तो भी प्रेम के कारण पाप भागी न हुये ॥ १०५ ॥

तुलसी के मत चातकहिँ केवल प्रेम-पियास ।
पियत स्वाति जल जान जग जाचत बारह मास ॥१०६॥

तुलसी के मत से चातक को केवल प्रेम की प्यास है और संसार जानता है कि बारहों मास में चातक माँगा करता है परन्तु स्वाती ही का जल पीता है । जहाँ तावत पाठ हो वहाँ १२ मास जला करता है ऐसा अर्थ लगाना चाहिये ॥ १०६ ॥

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास ।
स्वाति-सलिल रघुनाथ बर चातक तुलसीदास ॥१०७॥

इस दोहे में आ कर ऊपर का सब आशय खोल दिया । ऊपर स्वातिजलरूप श्रीरामचन्द्र को अथवा राम इस नाम के दोनों वर्णों को स्वाती का जल समझना चाहिये, और एक उसी की आशा भरोसा और बल विश्वास रखनेहारे चातकरूप तुलसीदास जी (वा तु-तुरङ्ग-वाहन (राम) ल (लक्ष्मण) और सी (सीता) इन के दास जो अच्छे अच्छे भक्त हैं) उन को समझना चाहिये । जो भक्त अपनी भक्ति में चातक के समान दृढ़ रहते हैं उन को परमेश्वर अवश्य मिलते हैं । पहले अनेक दोहों में चातक की भक्ति की उत्कटता दिखला कर भक्तों को चेताया है और मेघ के समान श्रीराम को जीवन-दाता दिखलाया है ॥ १०७ ॥

आलबाल मुक्ताहलनि हिय सनेह-तरु-मूल ।
हेरि हेरु चित चातकहिँ स्वाति-सलिल अनुकूल॥१०८॥

हृदयरूपी भूमि पर रामचन्द्र के गुणगणरूपी मोती की माला की थाला है उस में से स्नेहरूपी (पञ्चाङ्ग) वृक्ष का मूल निकलता है । हे मन जब तू चातक की वृत्ति को (हेरि) स्वीकार कर (हेरु) उसे खोजे तब स्वाती जलरूपी श्रीरामचन्द्र अनुकूल होवेंगे अर्थात् मिलेंगे । अभिप्राय यह कि स्वातिसलिलरूपी राम को खोजने के लिये इधर उधर घूमना न चाहिये, वे सब के हृदय में वर्त्तमान हैं, भक्तिपूर्वक अपने मन ही में खोज लो ॥ १०८ ॥

राम प्रेम बिनु दूबरो राम प्रेम सइ पीन।
बिसद सलिल सरबर बरन जन तुलसी मन-मीन ॥ १०९॥

(बरन बिसद सरबर) राम इस नाम के दो अक्षर निर्मल सरोवर हैं, (प्रेम बिसद सलिल) उस में प्रेमरूप निर्मल जल है जिस में (तुलसी जन मनमीन) राम लक्ष्मण जानकी जी के भक्तों के मनरूपी मछली रहती है। प्रेमभक्ति के विना राम अनुकूल नहीं होते और उसी प्रेम के रहने से अनुकूल वा प्रसन्न होते हैं॥ अथवा (राम प्रेम बिनु दूबरो) अर्थात् वह भक्त चित्तरूपी मछली रामचन्द्र जी के प्रेमरूपी जल के विना दुबली हो मरती है और उसी प्रेम-रूपी जल को पा कर (पीन) मुटाती है॥ १०९॥

आप बधिक बर बेस धरि करेउ कुरङ्गम राग।
तुलसी जौं मृग-मन मुरे परै प्रेम पट दाग ॥ ११०॥

इति श्रीगोस्वामितुलसीदासविरचितसप्तशतिकायां भक्तिनिर्देशो नाम प्रथमः सर्गः॥

व्याध ने आप उत्तम भेष धारण कर के (कुरङ्गम राग) उस राग को बजाया जिस को सुन मृग मोहित हो जाते हैं, ऐसे राग को सुन कर भी जो मृगरूपी मन मुर जाय तो प्रेमरूपी वस्त्र में दागी पड़ जायगी अर्थात् पक्का प्रेम नहीं होगा॥ ११०॥

॥ इति विहारिकृतसंक्षिप्तटीकायां प्रथमः सर्गः॥

अथ द्वितीय सर्ग।

—∞⁘∞—
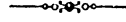
खेलत बालक व्याल सँग पावक मेलत हाथ।
तुलसी सिसु पितु-मातु इव राखत सिय-रघुनाथ॥१॥

पहले सर्ग में भक्ति की दृढ़ता दिखा कर दूसरे में उपासना दिखलावेंगे। लड़के सर्प के साथ खेलते और आग में हाथ डालते परन्तु मावाप के समान सीताराम जी (लड़कों वा भक्तों की) रक्षा करते हैं। पूर्णोपमालङ्कार है और भक्त को बालक की तथा सीताराम को मातापिता की उपमा दी गई है॥ १॥

तुलसी केवल राम-पद लागे सरल सनेह।
तौ घर घट बन बाट महँ कतहुँ रहे किन देह॥२॥

तुलसीदास कहते हैं यदि राम के चरण में स्वाभाविक प्रेम रहे तो मनुष्य का देह घर घाट वन राह चाहे जहाँ रहे अच्छा ही होता है। अभिप्राय यह कि भक्तिहीन चाहे वन में तप करे चाहे गङ्गा के तीर बैठा रहे पर विशेष फल नहीं, परन्तु भक्तिसहित गृहस्थ को आश्रम में रहने से भी मुक्ति मिल सकती है॥२॥

कै ममता करु राम-पद कै ममता परिहेलु।
तुलसी दो महँ एक अब खेल छाड़ि छल खेलु॥३॥

तुलसीदास कहते हैं कि या तो तूँ रामचन्द्र के चरण में ममता

कर, नहीं तो ममता को छोड़ दे। वैराग ले (छल छाड़ि अब दो मँह एक खेल खेलु) कपट छोड़ कर इन दोनों में से एक खेल को अवश्य खेलो ॥ ३ ॥

कै तोहि लागहिँ राम प्रिय कै तु राम प्रिय होहु।
दुइ मँह उचित सुगम समुझि तुलसी करतब तोहु॥४॥

या तो राम तुझे प्रिय लगें नहीं तो भजन आदि कर के तू हीं राम का प्यारा भक्त हो जा। तुलसी कहते हैं कि इन दोनों बातों में जो तुझे सहज और उचित जान पड़े वही तेरा कर्तव्य है ॥ ४ ॥

रावना-ऽरि के दास सँग कायर चलहिँ कुचाल।
खर दूखन मारीच सम मूढ़ भये बस काल ॥ ५ ॥

कादर दुष्ट जन (वा मेरा मन) (रावनारि दास) रावण के शत्रु राम उस के दास भक्त लोगों (वा तुलसी) के सङ्ग कुचाल चलते हैं (भजन में विघ्न डालते हैं)। ये मूर्ख खर दूषण और मारीच नाम राक्षसों के समान काल के वश हुये हैं ॥ ५॥

तुलसी-पति दरबार मेँ कमी वस्तु कछु नाहिँ।
करम-हीन कलपत फिरत चूक चाकरी माहिँ॥ ६॥

(तुलसी-पति) राम के दरबार में किसी वस्तु की कमती नहीं है परन्तु जो कर्महीन उद्योगरहित भजनादि नहीं करते वा नहीं किये हैं और (चाकरी) रामसेवा में चूके हैं वे ही रोते फिरते हैं॥ ६॥

राम गरीब-नेवाज ह राज देत जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिँ घुरबिनियाँ की बानि॥७॥

रामजी गरीबों के बड़े मङ्गलदाता हैं और भक्त को पहचान कर राज भी देते हैं (जैसे विभीषण उग्रसेन आदि को दिया), परन्तु भक्तों का मन (घुरबिनियाँ) घूर पर जा कर एक एक दाना बिनना (इधर उधर दूसरों की सेवा में भटकना जैसे मुर्गी करती हैं) इधर उधर भटकने का अभ्यास नहीं छोड़ता॥७॥

घर कीन्हे घर होत है घर छोड़े घर जाय।
तुलसी घर बन बीचहीँ रहो प्रेम-पुर छाय॥८॥

घर बनाने से घर ही का होना पड़ता है और घर को छोड़ देने से घर नष्ट हो जाता है, इस लिये घर और वन दोनों के बीच (प्रेम-पुर) राम की भक्तिरूपी नगरी में रहना चाहिये। (अर्थात् गृहस्थाश्रम और वन में जा तप करना दोनों छोड़ कर केवल भक्ति करना अति उत्तम है इस से घर वन दोनों बनते हैं)॥८॥

राम राम रटिबो भलो तुलसी खता न खाय।
लरिकाई को पैरिबो धोखे उ बूड़ि न जाय॥९॥

राम राम जपना बहुत अच्छा है क्योंकि इस में भक्त धोखा नहीं खाता। इस में दृष्टान्त देते हैं कि लड़कई में जिन्हे तैरना आता है वे धोखे से भी पानी में जा पड़ें तो भी नहीं डूबते। यहाँ संसार समुद्र में डूबना लेना चाहिये॥९॥

तुलसी बिलम न कीजिये भजि लीजे रघुबीर।
तन तरकस से जात हैं स्वास सरीखे तीर॥ १०॥

तुलसीदास कहते हैं कि राम भजने में कुछ भी विलम्ब न कीजिये क्योंकि शरीररूपी तरकस से तीर के समान स्वास निकली जाती है। अर्थात् आयुष्य बहुत शीघ्र बीत रहा है। रूपक अलङ्कार स्पष्ट है॥१०॥

राम नाम सुमिरत सुजस भाजन भयेउ कुजाति।
कुतरु कुसरु पुर राज बन लहत भुवन बिख्याति॥११॥

कुजाति (सेवरी, गीध, अजामिल आदि) रामनाम के स्मरण से अच्छे यश के भागी हुये, उसी प्रकार (दण्डक बन के) खराब वृक्ष (कुश आदि) कुसरु (खराब सरोवर) बन (दण्डक आदि) पुर नगर राज आदि सबों ने संसार में प्रसिद्धि पाई॥११॥

नाम-महातम साखि सुनु नर को केतिक बात।
सरबर पर गिरिबर तरे ज्यों तरुबर के पात॥ १२॥

राम नाम के माहात्म्य के साक्षियों को सुनिये (सरबर पर गिरिबर तरे) समुद्र में बड़े बड़े पहाड़ और पत्थल उतराये (ज्यों तरुबर के पात) जैसे सुवृक्ष के वा पीपल के बड़े बड़े पत्ते तैरें और मनुष्य नाम माहात्म्य से बर श्रेष्ठ हो जाय, इस को तो कुछ बात ही न कहनी चाहिये॥ १२॥

ग्यान गरीबी गुरु-धरम नरम बचन निरमोस।
तुलसी कबहुँ न छाड़िये सील सत्य सन्तोस॥ १३॥

(ग्यान) विद्या, (गरीबी) अहङ्कार रहित, (गुरु-धरम) गुरु का दिया उपदेश, कोमल वचन, (निरमोख) मायाहीनता, शील सचाई और सन्तोष को कभी न छोड़ना चाहिये ॥ १३ ॥

असन बसन सुत नारि सुख पापि हुँ के घर होय ।
सन्त-समागम राम-धन तुलसी दुरलभ दोय ॥ १४ ॥

भोजन वस्त्र स्त्री लड़के इन का सुख तो पापी के घर भी होता है, परन्तु तुलसी दो को बड़ा दुर्लभ समझते हैं अर्थात् सज्जनों की सङ्गति और राम को अर्पित वा सत्कर्म में लगता धन अथवा राम भक्ति । जहाँ ये दोनों पाए जायँ वहीं सब सुख जानना ॥ १४ ॥

तुलसी तीरहिँ के बसे अवसि पाइये थाह ।
बेगहिँ जाय न पाइये सर सरिता अवगाह ॥ १५ ॥

तुलसी कहते हैं कि तीर पर रहने से अवश्य थाह मिलता है, परन्तु (धारा के) वेग में जाने से पोखरे और नदी का थाह नहीं मिलता। तीर यहाँ संसार समुद्र का समझना चाहिये । अभिप्राय यह कि संसार में न डूब कर मन अलग किये रहोगे तो पार जा सकोगे ॥ १५ ॥

पग अन्तर मग अगम जल जल-निधि जल सञ्चार ।
तुलसी करिया करम-बस बूड़त तरत न बार ॥ १६ ॥

एक पाँव के अनन्तर जो मार्ग है उस में (अगम) अर्थात् अथाह जल है अर्थात् संसाररूपी (जल निधि) समुद्र के जल का (सञ्चार) बड़ा तरङ्ग है । तुलसीदास कहते हैं कि (कर्म-वश करिया) अपने कर्म के वशीभूत हो कर इस में डूबते और तरते कुछ देर नहीं लगती । दुष्कर्म से डूबता और सुकर्म से तरता है । अथवा (करिया कर्म-वश बूड़त) पाप कर्म से डूबता और राम की दया से तरता है ॥ १६ ॥

तुलसी हरि-अपमान तेँ होत अकाज समाज।
राज करत रज मिलि गये सदल सकुल कुरु-राज॥१७॥

तुलसीदास कहते हैं कि विष्णु भगवान के अपमान से बड़ी हानि होती है। इस में दृष्टान्त देते हैं कि (कुरु-राज) दुर्य्योधन अपनी सेना और परिवार सहित राज करते २ (श्रीकृष्ण) के अपमान से धूर में मिल गया। (महाभारत के उद्योग पर्ब्ब के एक सौ पचीसवें १२५ अध्याय में) श्रीकृष्ण का कहना न मान उन का अपमान किया इस से सकुल नष्ट हुआ॥ १७॥

तुलसी मीठे बचन तेँ सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मन्त्र है परिहरु बचन कठोर॥ १८॥

तुलसीदास कहते हैं कि मीठा बचन बोलने से सब को आनन्द होता है। यह (मीठा बोलना) वशीकरण मन्त्र है (इस कारण) कड़ी बोली को छोड़ देना उचित है॥ १८॥

राम क्रिपा तेँ होत सुख राम क्रिपा बिनु जात।
जानत रघुबर भजन तेँ तुलसी सठ अलसात॥ १९॥

श्रीराम की दया से सुख होता है उसी के न रहने से सुख चला जाता है। यह बात जान कर भी मूर्खजन राम के भजन करने में अलसाते हैं॥१९॥

सनमुख ह्वै रघुनाथ के देहु सकल जग पीठि।
तजै केँचुरी उरग कहँ होत अधिक अति दीठि॥२०॥

श्रीराम के सन्मुख हो (उन की सेवा में लगो) और संसार को

छोड़ो। इस में दृष्टान्त यह है कि जब साँप केँचुरी छोड़ता है तो उस की दृष्टि श्रीर श्रधिक हो जाती है। उसी प्रकार केँचुरीरूपी शरीर का मोह छोड़ कर आत्मा के ध्यान में लवलीन हो तो परमकल्याण (मोच्च) मिलेगा ॥ २० ॥

मरयादा दूरहिँ रहे तुलसी किये बिचारि।
निकट निरादर होत है जिमि सुरसरि बर बारि॥२१॥

तुलसी विचार कर कहते हैं कि संसार से दूर ही रहने में मर्य्यादा (उचित कर्म) है, संसार में लिप्त रहने से अनादर (दुःख) होता है। अथवा तुलसी ने बिचार किया है कि दूर ही रहने से प्रतिष्ठा होती है श्रीर समीप रहने से अनादर होता है जैसे गङ्गा-तट के रहनेहारे गङ्गाजल का अनादर करते हैं ॥ २१ ॥

राम क्रिपा-निधि स्वामि मम सब बिधि पूरन काम।
परमा-ऽरथ पर धाम पर सन्त-सुखद बर-धाम ॥२२॥

दयानिधान राम मेरे प्रभु हैं श्रीर सब प्रकार (मेरा) मनोरथ पूरा करते हैं। जो आप मोच्चरूप बड़े तेजस्विओं से भी अधिक-तेजस्वी श्रीर अपने उत्तम स्थान में सन्तों को सुख देनेहारे हैं ॥२२॥

रामहिँ जानहि राम रटु भजु रामहिँ तजु काम।
तुलसी राम-अजान नर किमि पावहि पर-धाम॥२३॥

रामचन्द्र को जानो, रटो, भजो श्रीर संसारी मनोरथ छोड़ो, क्योंकि राम को नहीं जाननेहारे मनुष्य किस प्रकार (पर-धाम) वैकुंठ वा मुक्ति को पा सकते हैं ?॥ २३ ॥

तुलसी-पति रति अङ्क सम सकल साधना सून।
अङ्क-रहित कछु हाथ नहिँ अङ्क-सहित दस-गून॥२४॥

तुलसीदास कहते हैं कि स्वामी का प्रेम अङ्क के समान है और सब साधना (अर्थात् तीर्थ व्रत आदि) शून्य के समान हैं। अङ्क कर के हीन शून्य रहने से कुछ हाथ नहीं लगता परन्तु अङ्क के साथ शून्य दशगुण अधिक हो जाता है। उसी प्रकार रामभक्तिशून्य सब निष्फल है और रामभक्तिसहित सब दशगुना फल देनेवाला है। इस दोहे में रूपक अलङ्कार है॥२४॥

तुलसी अपने राम कँहँ भजन करहु निस्सङ्क।
आदि अन्त निरबाहिबो जैसे नव को अङ्क॥२५॥

सब शङ्का छोड़ कर अपने राम का भजन करो। जिस प्रकार नव का अङ्क आदि और अन्त दोनों का निबाह करता है, वैसे ही तेरा निबाह होगा और आदि अन्त दोनों बनेंगे॥ जहाँ "भजन करो इक अङ्क" पाठ हो वहाँ शुद्ध हो कर भक्ति सहित राम का भजन करो, अवश्य कल्याण होगा, जैसे नव प्रकार की भक्ति से आदि अन्त दोनों बनते हैं ऐसा अर्थ करना चाहिये॥२५॥

दुगुने तिगुने चौगुने पञ्च सष्ठ औ सात।
आठ हुँ तेँ पुनि नव-गुने नव के नव रहि जात॥२६॥

दुगुना तिगुना चौगुना पांचगुना छगुना सातगुना आठगुना और नवगुना करने से अन्त में नव का नव बना रहता है। चाहे जितना हिसाब हो पर सब में नव तक अङ्क व्याप्त है, जिस हिसाब में देखो एक से नव तक के ही अङ्क देख पड़ते हैं॥२६॥

नव के नव रहि जात हैं तुलसी किये बिचार।
रमेउ राम इमि जगत में नही दैत बिस्तार॥२७॥

तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार (सब गणित में बिचार करने से) एक से नव तक के अङ्क व्याप्त हैं, उसी प्रकार राम इस संसार में (रमेउ) व्याप्त हैं और राम को छोड़ और दूसरा पदार्थ नहीं है। इस दोहे में वेदान्त के अद्वैत मत का दृष्टान्त दिखाया है। यह संसार जैसे सुतुही में रूपा जान पड़े वैसा ही आनन्द स्वरूप आत्मा में आरोपित किया गया है और सत्य नहीं है। जैसे ठीक ज्ञान होने से सुतुही और सीप में से चान्दी का भ्रम जाता रहता है, उसी प्रकार यथार्थरूप से आत्मा को जान लेने से सब वस्तुओं का भ्रम दूर हो जाता है। इसी को अद्वैतवाद कहते हैं॥२७॥

तुलसी राम सनेह करु त्यागु सकल उपचार।
जैसे घटत न अङ्क नव नव के लिखत पहार॥२८॥

तुलसीदास कहते हैं कि सब उपचार तीर्थ ब्रतादिक छोड़ कर रामचन्द्र की भक्ति करो। जैसे नव के पहाड़े में नव का अङ्क नहीं घटता, बढ़ता ही जाता है

९	९	९
१८	१+८	९
२७	२+७	९
३६	३+६	९
४५	४+५	९
५४	५+४	९
६३	६+३	९
७२	७+२	९
८१	८+१	९
९०	९+०	९

नव के पहाड़े के अङ्कों को जोड़ने से ९ बचता है।

नव को एक के पहाड़े से गुणन करने और एक के पहाड़े को जोड़ने से भी ९ बचेगा। जैसे ९×२=१८ और १ उन्नीस की ९। ९×३=२७ और २ उन्तीस की ९। ९×४=३६ और ३ उन्तालिस की ९। ९+५=४५ और ४ उन्चास की ९ इत्यादि॥२८॥

अङ्क अगुन आखर सगुन समुझत उभय प्रकार।
खोये राखे आपु भल तुलसी चारु बिचार॥२९॥

नव का अङ्क (९) अगुन (ब्रह्मवत्) ओङ्कार के समान है, और अक्षर (नव) सगुन राम के समान है। ये दोनों भेद देखने के हैं। वस्तुतः दोनों वस्तु एकही हैं। भली भाँत विचार कर देखो, तो जिस प्रकार दूध में से पानी निकाल लेने से केवल दूध बच रहता है वैसे ही विषय जल को छोड़ देने से आत्मरूप रह जाता है, वही भला है। अगुन ज्ञान मार्ग और सगुन उपासना पथ है। सुन्दर बिचार से विषय को छोड़ आप को रख लेना यही भला है॥२९॥

एहि बिधि तेँ सब राम-मय समुझहु सुमति निधान।
या तेँ सकल बिरोध तजु भजु सब समुझ न आन॥३०॥

इस प्रकार सब राममय समझ कर, हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! सब विरोध छोड़ो और राम भजो, और सब को राम से दूसरा मत जानो॥३०॥

राम कामना-हीन पुनि सकल काम करतार।
याही तेँ परमातमा अव्यय अमल उदार॥३१॥

रामचन्द्र सकल मनोरथ रहित हैं परन्तु सब कामों के कर्त्ता हैं, इसी हेतु उन्हें (परमात्मा) परब्रह्म और निर्दोष सब विकार से रहित तथा उदार कहते हैं॥ जिस प्रकार लोहा स्वयं शक्तिहीन है परन्तु चुम्बक के लगने से उस में आकर्षण शक्ति होती है, वैसे ही माया के योग से कामनाहीन राम को सृष्टि आदि कामों के रचने की शक्ति होती है॥३१॥

जो कछु चाहत सो करत हरत भरत गत भेद।
काहु सुखद काहू दुखद जानत है बुध बेद॥३२॥

जो कुछ चाहते हैं सो करते हैं, और यद्यपि भेदहीन हैं अर्थात् एक ही रूप हैं, तो भी (विष्णुरूप होकर) भरत अर्थात् संसार का पालन करते हैं और (रुद्ररूप हो कर) हरत संहार करते हैं। (लोगों की समझ में) किसी को दुख और किसी को सुख देते हैं परन्तु पण्डित और वेद जानते हैं कि जीव कर्मवश दुखसुख पाते हैं परन्तु परमात्मा किसी को दुःख सुख कुछ नहीं देता॥ ३२॥

सन्त-कमल मधु-मास कर तुलसी बरन बिचार।
जग-सरवर तर भरन-कर जानहु जल-दातार॥३३॥

(जग-सरवर) संसाररूपी सरोवर में (सन्त-कमल) साधुजन कमलपुष्प के सदृश हैं, जब ये (मधु-मास कर) चैते के सूर्य किरणों से सुखने लगते हैं तो (बरन) रा-म ये दोनों अक्षर हस्त नक्षत्ररूप हो जलवर्षा कर उन्हें पोषते हैं। कमल को (भरन-कर तर) अत्यन्त पोषण करनेहारे (राम दोनों वर्णको) (जल-दातार) मेघरूप जानना चाहिये॥ अथवा, जगतरूपी तालाव में के (कमल भरण कर कर) कमलों के पोषण करनेहारे किरणवाले सूर्यरूप राम (रा-म) इन वर्णों को जानना। अर्थात् सूर्यरूप हो साधुरूप कमलों को खिलाते हैं॥ ३३॥

एक सिष्टि मौं आहि बिधि प्रगट तीन कर भेद।
सात्विक-राजस-तामसहिँ जानत है बुध बेद॥३४॥

जिस प्रकार इस एक संसार में (सात्त्विक, राजस, और तामस) तीनों का भेद प्रगट है (साधारण लोग इन्हें भली भाँत नहीं समझते परन्तु) ज्ञानी पण्डित और वेद जानते हैं, उसी प्रकार राम नाम में भी है जो आगे दोहे में कहते हैं ॥ ३४ ॥

ता बिधि रघुबर नाम मँह बरतमान गुन तीन।
चन्द्र भानु अपि अनल बिधि हरि हर कहहिँ प्रबीन ॥ ३५ ॥

वैसे ही रामचन्द्र के (राम) नाम में (सत्त्व रज और तम) तीनों गुन वर्त्तमान हैं, और सूर्य, चन्द्र और अग्नि, तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवता वर्त्तमान हैं, ऐसा बुद्धिमान जन कहते हैं ॥३५॥

अनल र-कार अ-कार रबि जानु म-कार मयङ्क।
हरी अ-कार र-कार बिधि मः महेस निस्सङ्क ॥ ३६ ॥

अग्नि का बीज र, सूर्य का अ, और चन्द्र का म है। तथा अ विष्णु-रूप, र ब्रह्मारूप, और म महादेवरूप है। इस प्रकार ये छओं राम नाम में वर्त्तमान हैं। रामायण में (हेतु कृशानु भानु हिमकर के) कहा है ॥ ३६ ॥

बन अग्यान कँह दहन कर अनल प्रचण्ड र-कार।
हरि अ-कार हर मोह-तम तुलसी कहहिँ बिचार ॥ ३७ ॥

तुलसी विचार कर कहते हैं कि अत्यन्त प्रतापी अग्निस्वरूप र-कार वनरूपी अज्ञान को जला देता है, और हरि अर्थात् सूर्यरूप अ-कार मोह-मयारूपी अन्धकार को नष्ट कर देता है॥ हरि शब्द में

अर्थ (यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहांशुवाजिषु, शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्नाकपिले त्रिषु) यमराज, वायु, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, विष्णु, सिंह, किरण, घोड़ा, शुक, सर्प, वानर, मेंढ़क और कपिलवर्ण ये (१४) अमरकोष में लिखे हैं ॥ ३७ ॥

त्रि-बिधि ताप हर ससि सतर जानहु मरम म-कार ।
बिधि हरि हर गुन तीनि को तुलसी नाम अधार॥३८॥

आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के दुःखों को चन्द्रबीज मकार शीघ्र हरण करता है यही मकार का (मर्म्म) तात्पर्य्य जानना। रजोगुण ब्रह्मा, सत्त्वगुण विष्णु और तमोगुण महादेव इन तीनों गुणों का एक आधार राम नाम है ॥ ३८ ॥

भानु क्रिसानु मयङ्क को कारन रघुबर नाम ।
बिधि हरि सम्भु सिरोमनि प्रनत सदा सुख-धाम॥३९॥

राम यह नाम सूर्य चन्द्र और अग्नि इन तीनों का (कारण) बीज है और ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों देवों का शिरोमणि है और अपने शरणागतों वा भक्तों को सदा सुख देनेहारा है ॥ ३९ ॥

अगुन अनूपम सगुन निधि तुलसी जानत राम ।
करता सकल जगत को भरता सब मन-काम ॥ ४० ॥

तुलसीदास राम इस नाम को अनुपम अगुण तीनों गुणों से परे और सगुण दिव्यगुणयुक्त मानते जानते हैं। सगुण हो कर सब संसार को बनानेहारा और सब के मनोरथ को पूर्ण करनेहारा है ॥ ४० ॥

छत्र मुकुट सब बिधि अचल तुलसी जुगल हलन्त।
सकल बरन सिर पर रहत महिमा अमल अनन्त॥४१॥

हलन्त रेफ छत्र है और म का अनुस्वार मुकुट है ये दोनों सब प्रकार से अचल हैं इन की निर्मल और अनन्त महिमा सब अक्षरों के शिर के ऊपर है। जहाँ "बिद्धि मल" पाठ हो, वहाँ अक्षरों को जानना ऐसा अर्थ कहना चाहिये॥ ४१॥

रामा-ऽनुज सद्गुन बिमल स्याम राम-अनुहार।
भरता भरत सो जगत को तुलसी लसत अ-कार॥४२॥

राम नाम में का अकार राम अनुहार विष्णु के समान निर्मल गुणयुक्त जग के स्वामी रामचन्द्र के छोटे भाई श्यामवर्ण भरत का स्वरूप सोभता है॥४२॥

राजत राजस ता-अनुज बरद धरनि-धर धीर।
बिधि बिहरंतु अति आसु-कर तुलसी जन-गन पीर॥४३

(ता-अनुज) अर्थात् भरत के छोटे भाई (धरणि-धर) शेष के अवतार लक्ष्मणजी वरदाता धीर (बिधि राजसा) रजोगुण ब्रह्मा के रूप सोभित हैं, और (अति आसु-कर) बहुत शीघ्र (जन-गन पीर) भक्त जनों के समूह का दुःख (बिहरतु) विशेष कर हरण करते हैं॥४३॥

हरन करन सङ्कट सतर समर-धीर बल-धाम।
मः महेस अरि-दमन बर लखन-अनुज अरि काम॥४४॥

(सतर संकट हरन करन) शीघ्र दुख को हरण करनेवाले बल के पुञ्ज और रण में धीर मकार महेशरूप लक्ष्मणजी के छोटे भाई

(काम अरि) काम के शत्रु महादेव के अवतार (अरि-दमन) शत्रुघ्नजी हैं॥ ४४॥

राम सदा सम-सील-धर सुख-सागर पर-धाम।
अज-कारन अद्वैत नित समतर पद अभिराम॥४५॥

सदा सुन्दर शील के धारण करनेवाले आनन्दमय ब्रह्मस्वरूप (अज-कारन) ब्रह्मा के भी कारण अर्थात् उत्पन्न करने वाले (अद्वैत) केवल सदा मनोहर (समतर पद) मम दो अक्षर के पदवाले वा शत्रु मित्र दोनों के लिये समभाव रखनेहारे अथवा शुभदाई चरणधारी राम हैं॥ ४५॥

होनहार सह जान सब बिभव बीच नहिँ होत।
गगन गिरह करिवो कवै तुलसी पढ़त कपोत॥ ४६॥

भवितव्य सब साथ ही साथ उत्पन्न होता है ऐश्वर्य बीच में नहीं होता है। तुलसीदास कहते हैं कि कबूतर को आकाश में गिरह करना कौन सिखाता है। अभिप्राय यह कि जिस प्रकार कबूतर आकाश में स्वभाव ही से गिरह करते हैं, उसी रीत पूर्व भाग्य के अनुसार ऐश्वर्यादि के भागी जन होते हैं॥ ४६॥

तुलसी होत सिखे नही तन गुन-दूखन-धाम।
भखन सिखिनि कौने कहेउ प्रगट बिलोकहु काम॥४७॥

तुलसीदास कहते हैं कि सीखने से शरीर में गुन और अवगुन नहीं होता। इस काम को प्रगट देखते हो कि मयूरी को सर्पभक्षण करना कोई नहीं सिखाता है। अथवा (काम-भखन) काम अर्थात् वीर्य्य को खा लेना मयूरी को कौन सिखाता है। लोग कहते हैं

कि नाचते मदमत्त मयूर के मुख से काम गिरता है, जिस को खा कर मयूरी को गर्भ रह जाता है ॥ ४७ ॥

गिरत अण्ड-सम्पुट अरुन जलज पच्छ अनयास।
अलल सुअन उपदेस केहि जात सु उलटि अकास॥४८॥

अलल एक प्रकार का पक्षी होता है उस का अण्ड गिरते ही बच्चा हो कर उड़ता है। (गिरत आदि) अण्डे के औंधे गिरते ही (अरुण जलज पच्छ) अण्डे के भीतर के लाल जल से उत्पन्न पक्ष अथवा लाल कमल के सदृश सुन्दर पङ्ख बच्चे को सहज ही में हो आता है। तब अललपक्षी का बच्चा उलट कर आकाश में उड़ जाता है, तो इसे (उड़ने के लिये) कौन उपदेश देता है ॥ ४८ ॥

बिबिध चित्र जल-पात्र बिच अधिक नून सम सूर।
कब कवने तुलसी रचेउ केहि बिधि पच्छ मयूर॥४९॥

जलपात्र (तलाव आदि) में (सूर बिबिध चित्र) सूर्य के प्रतिबिम्ब की अनेक प्रकार चित्रकारी कोई बड़ी कोई छोटी कोई समान किस ने बनायी। और मयूर का ऐसा सुन्दर पक्ष और उस की रेखाओं को किस ने किस समय किस रीत बनाया ॥ ४९ ॥

काक-सुता ग्रिह ना करै यह अचरज बड़ बाय।
तुलसी केहि उपदेस सुनि जननि पिता घर जाय॥५०॥

कोइल घर नहीं बनाती यह बड़े अचरज की बात है। परन्तु उस का बच्चा उड़ने की सामर्थ्य होते ही अपने मा बाप के घर चला जाता है, उसे (जाने के लिये) कौन उपदेश देता है। प्रसिद्ध है कि कोइल

अपना अण्डा कौवे के खोते में रख आती है, वही पालता है, पर बड़े होने पर वह कोइल में मिल जाता है और कौवे को छोड़ देता है ॥ ५० ॥

सुपथ कुपथ लीन्हे जनित स्व-सुभाव अनुसार।
तुलसी सिखवत नाहिँ सिसु मूखक हनन मजार॥५१॥

(जनित) संसार में जन्मे जीव अपने२ सुभाव के अनुसार कुमार्ग और सुमार्ग में प्रवृत्त होते हैं। तुलसी कहते हैं कि बिलार अपने बच्चे को मूसा मारना नहीँ सिखाता ॥ ५१ ॥

तुलसी जानतु है सकल चेतन मिलत अचेतु।
कीट जात उड़ि तिय निकट बिनहिँ पढ़े रति देत॥५२॥

तुलसी कहते हैं कि सब लोग जानते हैं चेतन और अचेतन दोनोँ अपने२ प्यारोँ से मिलते हैं, कीड़ा उड़ कर अपनी स्त्री के पास जाता है और वह विना (कामशास्त्र) पढ़े उस से भोग करानी है ॥ ५२ ॥

होनहार सब आप तेँ ब्रिथा सोच करि जौन।
कञ्ज सिङ्ग तुलसी म्रिगन कहो उमेठत कौन ॥५३॥

जो होनेवाला है सो स्वभाव ही से होता है। इस में सोच करना व्यर्थ है। (इस में दृष्टान्त देते हैं कि) (कञ्ज) मस्तक में उत्पन्न मृगोँ की सींग को कहो कौन एँठता है अर्थात् कोई नहीँ, स्वभाव ही से वे टेढ़ी होती हैं ॥ अथवा (कञ्ज) कोईँ के फूल को रात को विकसित होना कौन सिखाता है ॥ ५३ ॥

सुख चाहत सुख में बसत है सुख-रूप बिसाल।
सन्तत जा बिधि मान-सर कबहुँ न तजत मराल॥५४॥

१। जिस प्रकार (मराल) राजहंस सदा मानसरोवर में रहता है, और उसे कभी नहीं छोड़ता, उसी प्रकार जो जीव सुख चाहते, वे सुख (अर्थात् सुखदाई ईश्वरध्यान परोपकार आदि अवस्थाओं) में रहना चाहते हैं। सुख का रूप ठीक२ उस का पाना (विशाल) बड़ा भारी है, अर्थात् सब जानते हैं कि किस काम से सुख होता है।

२ द्वितीयार्थ। आप सदा परमानन्दस्वरूप हो कर भी सुख पाने की इच्छा करता है और (सुख) मनुष्य शरीर में (बसत) रहता है। जैसे हंस मान-सरोवर को कभी नहीं छोड़ता। अर्थात् जीव परमात्मा का स्वरूप हो कर भी देहाभिमानी हो देह के सुख से अपना सुख समझता है, (मान-सर) यदि (मान) देहाभिमान (सर करै) त्याग कर दे तो परमानन्द पावे॥ ५४॥

नीति प्रीति जस अजस गति सब कँह सुभ पहिचानि।
बस्ती हस्ती हस्तिनी देति न पति रति दानि॥ ५५॥

नीति प्रेम और यश अयश की गति इन का अच्छा पहिचान सब को होता है। (इस में दृष्टान्त) हस्तिनी अपने पति हस्ती को बस्ती के बीच भोग नहीं करने देती॥ ५५॥

तुलसी अपने दुखद तेँ को कहु रहत अजान।
कीस कुन्त-अङ्कुर बनहिँ उपजत करत निदान॥ ५६॥

तुलसी कहते हैं कि अपने दुख देनेहारे को कौन नहीं जानता। बन में बन्दर गुग्गुल वा भाले के समान चोखे कटीले वृक्षों के अङ्कुर को उपजते ही उखाड़ डालता है (क्योंकि उन से बन्दर को दुख

पाने का भय रहता है)। कुन्त शब्द, यही कुन्ति का अपभ्रंश जान पड़ता है, जिस का अर्थ गुग्गुल है ॥ ५६ ॥

जथा धरनि सब बीज-मय नखत अकास निवास ।
तथा राम सब धरम-मय जानत तुलसीदास ॥५७॥

जैसे पृथ्वी में सब बीज हैं और सब नक्षत्र आकाश में हैं, उसी प्रकार राम सब धर्मों में हैं वा सब धर्मों के रूप हैं। ऐसा तुलसीदास जानते हैं ॥ ५७ ॥

पुहुमी पानी पावकहुँ पौनहुँ माँह समाइ ।
ता कहँ जानत राम अपि बिनु गुरु किमि लखि जाइ ॥ ५८ ॥

जो पृथ्वी जल अग्नि और वायु में भी (समाय) व्याप्त है उस को राम जानना चाहिये। परन्तु वह विना गुरु के (उपदेश) नहीं जान पड़ता है। यदि कोई सद्गुरु मिले और सची दृष्टि से लखावे तो जाना जावे ॥ ५८ ॥

अगुन ब्रहम तुलसी सोइ सगुन बिलोकत सोइ ।
दुख सुख नाना भाँति को तेहि बिरोध तेँ होइ ॥५९॥

अगुन ब्रह्म वही राम है और सगुण भी वही है, उसी के विरोध से नाना प्रकार के सुखदुख होते हैं ॥ ५९ ॥

सूर जथा रन जीति के पलटि आव चलि गेह ।
तिमि गति जानहु राम की तुलसी सन्त सनेह ॥ ६० ॥

जैसे वीरलोग रण जीत के वहाँ से चल कर घर फिर आते हैं, उसी प्रकार सन्तलोग (सनेह) मायारूपी समर जीत के राम की राह को जानते हैं। अथवा वैसी ही साधु भक्तों के स्नेह से राम की गति है अर्थात् अनेक अवतार ले कर भक्तों के दुख को दूर कर फिर अपने परम धाम को चले जाते हैं॥ ६०॥

परमा-ऽऽतम-पद राम पुनि तीजे सन्त सुजान।
जे जग महँ बिचरहिँ धरे देह बिगत अभिमान॥६१॥

१ परमात्मा परब्रह्म, २ रामचन्द्र, और ३ ज्ञानी सन्त लोग, ये तीनों एक हैं, जो सन्त लोग देहाभिमान छोड़ कर (मनुष्य देह मात्रधारण कर के) संसार में विचरते फिरते हैं॥ ६१॥

चौथी सञ्ज्ञा जीव की सदा रहत रत काम।
ब्रह्म न सन्त न राम रत निसि बासर बसि बाम॥६२॥

पहले तीन सञ्ज्ञा ब्रह्म की वर्णन किया, अब जीव का लक्षण कहते हैं। जो (रत काम) सर्वदा अपने मनोरथ और कामना में लगे रहते हैं वे जीव सञ्ज्ञक हैं। वे न ब्रह्म न साधु और न राम में प्रीति करते परन्तु रात दिन इन्द्रिय सुख और स्त्री के वश में रहते हैं॥ जहाँ "ब्राह्मण से तन राम पद" पाठ हो, वहाँ ब्राह्मण का शरीर पा कर रामपद छोड़ ऐसा अर्थ करना चाहिये॥ ६२॥

सुख पाये हरखत हँसत खीझत लहइ बिखाद।
प्रगटत दुरत निरय परत केवल रत बिख-स्वाद॥६३॥

सुख पाने से प्रसन्न होते और हँसते तथा दुख पाने से दुखी हो बिलखाते हैं (प्रगटत) जनमते हैं (दुरत) मरते हैं और केवल

(बिख-स्वाद) विषय स्वाद में तत्पर हो कर (निरय परत) नरक में गिरते हैं (वेही जीव हैं)। स्यान्नारकस्तु नरको निरयः। इत्यमरः॥६३॥

नाना विध की कल्पना नाना विध को सोग।
सूछम औ असथूल तन कब हुँ तजत नहिँ रोग॥६४॥

अनेक प्रकार की कल्पना और दुःखशोक में पड़े रहते हैं (स्थूल-तन) स्थूल शरीर अर्थात् जब जीते रहते हैं और (सूक्ष्मदेह) जब मरने पर सूक्ष्म शरीर में रहते हैं तो भी कभी उन को (संसार-रूपी) रोग नहीं छोड़ता, वे ही जीव हैं ॥ ६४ ॥

जैसे कुष्टी की दसा गलित रहत दोउ देह।
बिन्द हुँ की गति तैसई अन्तर ह्व गति एह ॥ ६५ ॥

जैसे कुष्ट रोग युक्त मनुष्य की देह सदा गलती रहती है वही दशा बिन्द अर्थात् उस के वीर्य्य बिन्दु से उत्पन्न उस के पुत्र आदि सन्तानों की अथवा कामी संसारी मनुष्य की होती है कि उस की सूक्ष्म स्थूल दोनों देह गलती रहती हैं और अन्तर अर्थात् उस शरीर के दूर होने से दूसरे जन्म के शरीर की भी वही गति होती है। आगे के दोहे में तीनों प्रकार का शरीर गिनाया है ॥ ६५ ॥

त्रिधा देह गति एक बिध कब हूँ ना गति आन।
बिबिध कष्ट पावहिँ सदा निरखहिँ सन्त सुजान॥६६॥

सूक्ष्म स्थूल और कारण इन तीनों में से देह की एक गति होती है अर्थात् दुख बना ही रहता है कभी भी दूसरी गति नहीं होती। देही बिचारे अनेक प्रकार का क्लेश भोगते हैं और इन के कारण को ज्ञानी सन्त लोग देखते हैं अर्थात् जानते हैं ॥ ६६ ॥

रामहिँ जाने सन्त बर सन्तहिँ राम प्रमान।
सन्तहिँ केवल राम प्रभु रामहिँ सन्त न आन ॥ ६७॥

श्रेष्ठ साधुजन राम को जानते हैं और राम भी अपने भक्त को जानते हैं साधुओं को केवल एक स्वामी राम हैं और राम के भी (मुख्यदास) सन्त छोड़ और कोई नहीं है ॥ ६७ ॥

ता तें सन्त दयाल बर देत राम धन रीति।
तुलसी यह जिय जानि कै करिय बिहठि अति प्रीति॥ ६८ ॥

इसी हेतु परम दयालु साधु जन रामचन्द्र के (राम धन रीति) प्रेमरूपी भजन प्रकार आदि का वर देते हैं यह अपने मन में निश्चय कर के हठ कर के (राम वा सन्त पद में) पूरा प्रेम करना चाहिये ॥ ६८ ॥

तुलसी सन्त सु-अम्ब-तरु फूलि फरहिँ पर-हेतु।
ये इत तें पाहन हनैं वे उत तें फल देतु ॥ ६९ ॥

तुलसी कहते हैं कि साधु जन आम के सुन्दर वृक्ष हैं जो दूसरों के लिये फूलते फलते हैं अथवा पहले फूल कर साधु पक्ष में आनन्द मगन हो कर और जो लोग नीचे से पत्थल मारते हैं वे उन्हें फल देते हैं। रूपक अलङ्कार है॥ ६९ ॥

दुख सुख दोनों एक सम सन्तन के मन माहिँ।
मेरु उदधि गत मुकुर जिमि भार भीजिबो नाहिँ॥७०॥

साधुओं के लिये दुख सुख दोनों एक समान हैं जैसे दर्पण में समुद्र और सुमेरु पर्व्वत दोनों देख पड़ते हैं परन्तु वह न जल से

भीजे और न भार से दब जाय। अथवा दर्पण में दोनों प्रतिबिम्बित हैं परन्तु दोनों से दर्पण अलग है वैसे ही सन्त दुःख सुख मय संसार में रह कर भी दुख से न्यारे हैं॥७०॥

तुलसी राम सुजान को राम जनावैं सोइ।
रामहिँ जाने राम-जन आन कबहुँ नहिँ होइ॥७१॥

तुलसी दास कहते हैं कि जो सच्चिदानन्द राम को जानता है और दूसरों को जनाता है वही रामभक्त है और दूसरा नहीं। अथवा राम जी अपने को जिस को जनाते हैं वही उन्हें जान सकता है और दूसरा नहीं जान सकता॥७१॥

सो गुरु राम सुजान सम नहीं बिखमता-लेस।
ता की क्रिपा कटाछ तेँ रहे न कठिन कलेस॥७२॥

(राम को जनानेहारा) वह गुरु श्रीआनन्दरूप राम के समान है इस में किसी प्रकार की थोड़ी भी विषमता नहीं है उन की दयादृष्टि से बड़ा भारी दुख वा जन्म मरण आदि क्लेश भी नहीं रह सकता॥७२॥

गुरु कहतब समुझै सुनै निज करतब कर भोग।
कहतब गुरु करतब करै मिटै सकल भव-सोग॥७३॥

(गुरु कहतब) गुरु का कहना वा उपदेश सुने और बूझे और अपनी करनी को भोग डाले (गुरु कहतब करतब करै) गुरु के कहने के अनुसार काम करै तो संसार का सब दुख मिट जाय॥७३॥

सरना-ऽऽगत तेहि राम के जिन्ह दिय धी सिय-रूप।
जा पदनि घर उदय भये नासे भ्रम-तम-कूप॥७४॥

गुरु स्वरूप उस राम चन्द्र की शरण में जाना जिन्हों ने सीतारूपी बुद्धि दी है जिस के चरणों के हृदयरूपी घर में सूर्य्य के उगने से अज्ञानरूपी कूप के अन्धकार का नाश होता है। जहाँ "जा पदी घर उदय भय" पाठ हो वहाँ जिस राम की स्त्रीरूपी भक्ति के मनरूपी घर में उदित होने से सब भ्रम छूट जाता है ऐसा अर्थ करना ॥७४॥

जा पद पाये पाइये आनन्द-पद-उपदेस।
सन्सय रोग नसाय सब पावै पुनि न कलेस ॥७५॥

जिस चरण को पाने से सच्चिदानन्दरूपी वस्तु मुक्ति का उपदेश मिलता है, सन्देहरूपी सब रोग नष्ट हो जाता है और फिर क्लेश नहीं होता ॥७५॥

मेधा सीता सम समुझि गुरु बिबेक सम राम।
तुलसी सिय सम सो सदा भयेउ बिगत मग बाम ॥७६॥

(मेधा) बुद्धिरूपी सीता जी को समझ और विवेक के समान राम को अपना गुरु मान कर सन्तलोग सीतारूपी बुद्धि से (बाम मग) संसार के विषय कुमार्ग से छूट जाते हैं ॥७६॥

आदि मध्य अवसान गत तुलसी एक समान।
तेई सन्त स्वरूप सुभ जे अनित्य गति मान ॥७७॥

आदि बीच और अन्त तीनों (आत्मिक) अवस्थाओं में जो एक प्रकार समभाव से रहते हैं (न दुख में दुखी न सुख में सुखी और न इन दोनों के बीच में उदास) वेही मङ्गलदाईरूप साधु हैं और

जो (अनित्य गति) सर्वदा बदलने हारे नश्वर संसार में लीन हैं वे दूसरे (सन्त से) भिन्न हैं। अर्थात्

"बालस्तावत् क्रीड़ासक्तः तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
वृद्धस्तावत् चिन्तामग्नः परमे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः" ॥

अवस्था के विकारों से रहित सदा एक रस साधुजन रहते हैं। जहाँ अनीतगत पाठ हो वहाँ असन्मार्ग से रहित ऐसा अर्थ करना ॥ ७७ ॥

एई सुद्ध उपासना परा भक्ति की रीति ।
तुलसी यहि मग पगु धरे रहै राम-पद प्रीति ॥ ७८ ॥

यही शुद्ध सेवा है और उत्तम भक्ति की रीति है और इस मार्ग से चलने से श्रीरामचन्द्र के चरण में प्रीति रहती है ॥ ७८ ॥

जँहँ तेँ जो आयेउ सु है जाई जहाँ है सोइ ।
तुलसी बिनु गुरु देव के किमि जानै कहु कोइ ॥ ७९ ॥

जो जहाँ से आता है वह वहीं जायगा परन्तु बिना गुरु देव (के जनाये) कहो कोई किस प्रकार जान सकता है। साङ्ख्यशास्त्र के मत से केवल वस्तुओं की अवस्था भर बदलती है कोई पदार्थ नष्ट नहीं होता, वही बात इस दोहे में कही है कि अनेक अवस्था में बदलते २ फिर यह जहाँ से आया है वहाँ पहुँच जाता है ॥ ७९ ॥

अप-गति खे सोई अवनि सो पुनि प्रगट पताल ।
कहाँ जनम कँहँ मरन अपि समुझहिँ सुमति रसाल ॥ ८० ॥

(अप) जल (खें गत) आकाश में प्राप्त है और वही भूमि और

पाताल में प्रगट है। सो इस का कहाँ जन्म और कहाँ मरण है अर्थात् नहीं है और इस बात को बुद्धिमानों में जो श्रेष्ठ हैं वे ही समझते हैं जल के दृष्टान्त से आत्मा की नित्यता दिखलाई है जैसे जल अपने आधार के कारण नीला काला आदि दिखलाता है परन्तु है एक ही, वैसे ही आत्मा तमोगुण आदि के सङ्ग से विकृत होता तो भी निर्विकार है ॥ ८० ॥

सङ्ग दोख तेँ भेद अस मधु मदिरा मकरन्द ।
गुरु-गम तेँ देखहिँ प्रगट पूरन परमानन्द ॥ ८१ ॥

(वही आकाश भूमि पाताल में रहनेहारा) जल सङ्ग के दोष से कहीं शहत कहीं मदिरा और कहीं पुष्परस होता है परन्तु जल वही है ऐसी ही गति आत्मा की है (गुरु-गम) गुरुदत्त ज्ञान वा उपदेश से जाना जाता अर्थात् जिन्हें गुरु जनाते हैं वे पूर्ण परमानन्दरूप आत्मा को देखते हैं। इसी प्रकार जीव भी जैसी योनि में पड़ता है वैसा हो जाता और उस नाम से पुकारा जाता है। इस को समझाने के लिये जल का दृष्टान्त दिया है ॥ ८१ ॥

डाबर-सागर-कूप-गत भेद देखाई देत ।
है एकै दूजो नहीं द्वैत आन के हेत ॥ ८२ ॥

जल (वैसा ही जीव) एक ही है दूसरा नहीं है परन्तु गड़हा समुद्र और कूआँ जैसे स्थान में रहा वैसा ही दिखाई दिया सो यह जो (द्वैत) दो होना है सो (आन के हेत) दूसरे (अपने आधार) के कारण से है। ऐसा ही जीव को भी समझना चाहिये ॥ ८२ ॥

गुन-गत नाना भाँति तेहि प्रगटत कालहिँ पाइ।
जानि जाइ गुरु ग्यान तेँ बिन जाने भरमाइ॥ ८३॥

(गुन-गत) अनेक गुणोँ से आत्मा पक्ष मेँ सत्त्व रज तम तीनोँ से युक्त वह जलरूप आत्मा समय पा कर प्रगट होता है और गुरुदत्त ज्ञान से जाना जाता है और बिन जाने लोग भटकते फिरते हैँ॥ ८३॥

तुलसी तरु फूलत फरत जेहि बिधि कालहिँ पाव।
तैसे होँ गुन-दोख-गत प्रगटत समय स्वभाव॥ ८४॥

जैसे समय पा कर वृक्ष फूलता फलता है वैसे ही गुनदोष मेँ लीन स्वभाव समय पा कर प्रगट होता है, अथवा गुण से दोष और दोष से गुण भी समय के स्वभाव अनुसार निकलता है॥ ८४॥

दोख हुँ गुन की रीति यह जानु अनल गति देखि।
तुलसी जानत सो सदा जेहि बिबेक सुबिसेखि॥ ८५॥

जैसे अग्नि की गति दिखाती है (अर्थात् चौँटी से ले कर अपर जितने बड़े छोटे जीव हैँ सब मेँ परिमाण के अनुसार अग्नि रह कर अन्न पचाती और प्राण बचाती है परन्तु लग जाने से नगर का नगर राख बना डालती है) वैसी ही गुण और दोष की भी रीत है कि अवस्थानुसार इन से भलाई बुराई होती है। यह जिस को विशेष विवेक है वही सर्वदा जानता है॥ ८५॥

गुरु तेँ आवत ग्यान उर नासत सकल बिकार।
जथा निलय गत दीप तेँ मिटत सकल अँधियार॥ ८६॥

गुरु के उपदेश से मन में ज्ञान आता और सब प्रकार का विकार नष्ट हो जाता है जैसे घर में के दीपक से वहाँ का सब अन्धकार दूर हट जाता है ॥ ८६ ॥

जद्यपि अर्वनि अनेक सुख तोय ताम-रस ताल।
सन्तत तुलसी मानसर तदपि न तजत मराल॥ ८७॥

यद्यपि ताल (झील आदि) में जल और कमल का अनेक सुख रहता है तो भी हंस मानसरोवर को कभी नहीं छोड़ते वैसे ही सन्त जन सत्सङ्ग और रामपद को कभी नहीं त्याग करते ॥ ८७॥

तुलसी तोड़त तीर-तरु मानस हन्स बिडार।
बिगत नलिन अति मलिन जल सुरसरि हूँ बढ़ियार॥ ॥ ८८॥

बाढ़ आने से (सुरसरि हूँ जल) गङ्गाजल भी तीर के वृक्षों को तोड़ता, कमल को नष्ट करता और अति मलीन हो कर मानस हंस को उद्वेग देता है उसी प्रकार अनेक उपद्रव भी भजन और सत्सङ्ग में हों तोभी न छोड़ना चाहिये। अथवा, गङ्गाजलसम पवित्र सब शास्त्रों का मत तर्क वितर्क युक्त समझ कर (मानस हंस बिडार) मानसरोवर राम भक्ति में रमण करने हारे सन्तों को बिड़ारता है इस से वे वेद का सारांस अवलम्बन कर उसी में रमते हैं॥ ८८॥

जो जल जीवन जगत को परसत पावन जौन।
तुलसी सो नीचे ढरत ताहि निवारत कौन॥ ८९॥

जो जल संसार को जिलानेहारा है और स्पर्श करने में पवित्र है वह नीचे की ओर (गिरता वा) ढरता है उसे कौन रोके। इस कहे

एक दोहों में अन्योक्ति अलङ्कार है। जलरूप परमात्मा जानना सो विकारी जीवात्मा हो कर प्रकृति और गुणों के सङ्ग आदि दोषों से इस संसार में बन्ध गया है उस को छुड़ाना कठिन है॥ ८९॥

जो करता है करम को सो भोगत नहिँ आन।
बवनहार लुनिहैँ सोइ देनी लहइ निदान॥९०॥

जो जिस काम का करनेहारा है वही उस के फल को भोगता है दूसरा नहीं जिस ने जो बोया है वह सोई लवेगा और अन्त में अपना दिया पावेगा॥९०॥

रावन रावन को हनेउ दोख राम को नाहिँ।
निज हित अनहित देखु किन तुलसी आपुहि माहिँ॥
॥९१॥

रावण के कर्म ने रावण को मारा इस में राम का कुछ भी दोष नहीं है अपना हित अनहित अपने ही में अपने ही से होता है विचार के देख लो॥९१॥

सुमिरु राम भजु राम-पद देखु राम सुनु राम।
तुलसी समुझहु राम कहँ अह-निसि यह तव काम॥९२॥

राम चन्द्र का स्मरण करो उन्हे भजो उन का दर्शन करो और गुणानुवाद सुनो दिन रात राम के विषय में चिन्ता करना यही तेरा काम हो॥९२॥

रज अप अनल अनिल नभ जड़ जानत सब कोइ।
यह चैतन्य सदा समुझु कारज रत दुख होइ॥९३॥

(रज) भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पाचों को लोग जड़ जानते हैं और यह आत्मा चैतन्य है ऐसा ही समझना चाहिये केवल कार्य में फसने के कारण यह भी जड़ हो कर दुखी होता है ॥ ८३ ॥

निज क्रित बिलसत सो सदा बिनु पाये उपदेस ।
गुरु-पद पाइ सुमग धरै तुलसी हरइ कलेस ॥ ८४ ॥

बिना उपदेश पाये वह अपने किये को भोगता है परन्तु जब उसे गुरु मिलता है तो (उस के उपदेश से) वह उत्तम मार्ग पर चलता है तो सब क्लेश उस का छूट जाता है ॥ ८४ ॥

सलिल सुकर सोनित समुझु मल अरु अस्थि समेत ।
बाल कुमार जुबा जरा है सु समुझु करु चेत ॥ ८५ ॥

जल से अन्न उत्पन्न होता है जिस के भोजन से नर में शुक्र और नारी में शोणित होते तब इन दोनों के योग से गर्भ पिण्ड होता है, फिर लोहू मल और हाड़मय हो कर वह (जल) बालक के रूप से संसार में जन्म लेता है फिर कुमार तब युवा फिर अन्त में वृद्ध हो जाता है । ध्यान दे कर समझ लो और चेत करो ॥ ॥ ८५ ॥

ऐसहि गति अवसान की तुलसी जानत हेतु ।
ता तें यह गति जानि जिय अविरल हरि चित चेतु ॥ ८६ ॥

इसी प्रकार अन्त की गति का कारण जान कर अर्थात् मरण के अनन्तर अपने कर्म्म के अनुसार फिर जन्म पा कर दुःखादि के भोगने की गति को जी में बैठा कर सदा अपने मन में ईश्वर का स्मरण करो ॥ ८६ ॥

जानै राम-स्वरूप जब तब पावै पद सन्त ।
जनम-मरन-पद तें रहित सुखमा अमल अनन्त ॥९७॥

जब यह जीव राम के स्वरूप को जानता है तब जन्म मरण से रहित निर्मल और अनन्त परमशोभा और साधु की पदवी को पहुँचता है ॥९७॥

दुख-दायक जाने भले सुख-दायक भजु राम ।
अब हम को सन्सार को सब बिधि पूरन काम ॥९८॥

दुःख देनेहारे विषयाभिलाष (शरीर) को भली भांत जान चुका है हे मन ! (तो अब इसे छोड़) सुख देनेहारे श्रीराम को भज । रामचन्द्र हमारी और संसार भर की कामना के पूर्ण करनेहारे हैं । उन की दया से अहंता और संसार के जाल से छूटेगा ॥९८॥

आपुहिं मद को पान करि आपुहिं होत अचेत ।
तुलसी बिबिध प्रकार को दुख उतपति एहि हेत ॥९९॥

अपनी मदिरा पी कर आप ही अचेत होता है इसी से इस जीव को अनेक प्रकार का दुःख सहना पड़ता है । मद संसार का भ्रमजाल है जिस में लोग आप से फसते हैं ॥ अथवा जिस प्रकार कोई मनुष्य मद पी कर आप बावला बनता है वही दशा इस जीव की है कि मोहरूपी मदिरा पी कर संसारी विषय के सुख में भूला है जिस कारण अनेक दुःख की उत्पत्ति होती है ॥९९॥

जा सों करसि बिरोध हठि कहु तुलसी को आन ।
सो तैं सब नहिं आन तब नाहक होसि मलान ॥१००॥

जिस से तू हठ के साथ बैर करता है वह दूसरा कौन है बता? (सच पूछ ते) (से सब तब) वे सब तेरे ही हैं (तें आन नहीं) तूभी दूसरा नहीं है ते व्यर्थ दुःखी होता है। इस दोहे में भी अद्वैत मत का वर्णन है। सब स्थान में ईश्वर है और जगत केवल भ्रम-रूप है इस प्रकार जब दो पदार्थ ही नहीं है ते अपना और पराया कौन होगा?॥ सच पूछिये ते किसी से भी विरोध करना उचित नहीं है॥१००॥

चाहसि सुख जेहि मारि कै से ते मारि न जाय।
कौन लाभ बिख तेँ बदलि तैँ तुलसी बिख खाय॥१०१॥

जिस के मारने से सुख होता है वह तुझ से नहीं मारा जाता ते किस लाभ के लिये एक विष से बदल कर दूसरा विष खाता है। विषयसुख की इच्छा और क्रोध लोभ आदि के मारने से सुख होता है से ते मनुष्य से रोका ही नहीं जाता परन्तु विष समान विषयसुख के भोग से तृप्ति चाहते हैं जे असम्भव है॥१०१॥

कोह द्रोह अघ-मूल है जानत के कहु नाहिँ।
दया धरम-कारन समुझि के सुख पावत नाहिँ॥१०२॥

क्रोध, द्वेष पाप के मूल हैं यह कौन नहीं जानता और दया धर्म का मूल कारण है ऐसा समझ कर कौन नहीं सुख पाता है अर्थात् क्रोधादिक से सब लोग दुःख और दयादिक से सुख पाते हैं। जहाँ "के दुःख पावत नाहि" पाठ हो वहाँ (नाहि) उस से दूसरे

पर दया करने से कौन दुःख पाता है? अर्थात् कोई नहीं पाता ऐसा अर्थ करना॥ १०२ ॥

बनो बनायो है सदा समुझ रहित हो सूल।
अरुन बरन केहि काम को बिना बास को फूल॥१०३॥

इति श्रीगोस्वामितुलसीदासविरचितायां उपासनापराभक्ति-
निर्देशो नाम द्वितीयः सर्गः॥

यह बना बनाया बहुत अच्छा है परन्तु तत्त्वज्ञान हीन होने के कारण दुःखदाई होता है। लाल रङ्ग किस काम का जो उस फूल में कुछ गन्ध ही न हो। यह मनुष्यतन सुन्दर हो कर भी दया धर्म रहित हो तो सुगन्ध हीन लाल फूल के समान प्रयोजन रहित है॥१०३॥

॥ इति विहारिलालसंक्षिप्तटीकायां द्वितीयः सर्गः॥

अथ तृतीय सर्ग ।

जनक-सुता दस-जान-सुत उरग-ईस अ-म-जोर ।
तुलसि-दास दस पद परसि भव-सागर गौ पोर ॥ १ ॥

जानकी (दस-जान-सुत) दशरथ पुत्र राम (उरग-ईश) सर्पों के स्वामी शेषावतार लक्ष्मण (अ-म-जोर) *अकार भरत और मकार शत्रुघ्न जी को जोड़ कर (पाँच हुये अर्थात्) राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न और सीता जी इन पाचों के दो २ पैर मिल कर दश पद हुये। इन दशों पदों को स्पर्श करने से संसार रूपी समुद्र के दुःख से छूटते हैं। भक्त लोग भव संसार रूपी समुद्र को तैर जाते हैं। अथवा इन दश में किसी एक पद के पाने से भी दुःख छूटता है। मकार का अर्थ शिव सो शत्रुघ्न शिव के अवतार हैं। जहाँ "दस पद परखि" पाठ हो वहाँ इन दशों के पावों को देख कर अर्थात् ध्यान से मन में स्मरण कर ऐसा अर्थ करना ॥ १ ॥

तुलसी तेरो राग-धर तात मातु गुरु देव ।
ता तजि तोहि न उचित अब रुचित आन पद-सेव ॥ २ ॥

तुलसी अपने मन से वा और भक्त जनों से कहते हैं कि हे चित्त! तेरे माता पिता, गुरु और देवता (राग-धर अनेक राग हैं उन

---

* अकार का अर्थ भरत द्वितीय सर्ग के ४२ वें दोहे में और मकार का अर्थ शत्रुघ्न ४४ वें दोहे में पहले ही कह चुके हैं ।

में सारङ्ग एक है) सारङ्ग धनुष धारी राम जी हैं उन को छोड़ कर (तोहि आन पदसेव रुचित न) तुझे और के पद की सेवा में रुचि करना उचित नहीं है ॥२॥

तरक-बिसेख-निखेध-पति-उर-मानस सुपुनीत ।
बसत मराल ल-रहित करि तेहि भजु पलटि बिनीत ॥३॥

(तरक बिसेख) उ-यह अचर संस्कृत में विशेष तर्क करने में आता है और (निखेध) मा-यह निषेध करने में आता है दोनों मिल कर उमा हुआ (उन के) पति शिव जी के मनरूपी पवित्र मानसरोवर में (मराल) हंस बसता है। (तेहि ल-रहित करि) उस को लकार रहित कर (अर्थात् केवल मरा बना) (बिनीत पलटि भजु) उसे उलटने से राम हुआ उन को तूं नम्र हो कर भज ॥३॥

सुकला-ऽऽदिहिँ कल देहु एक अन्त-सहित सुख-धाम*।
दै कमला कल मध्य को अन्त सकल सुख-धाम ॥ ४ ॥

(शुक्ल अन्त सहित आदिहिं एक कल देऊ) शुक्ल शब्दवाचक सित-शब्द के आदि और अन्त में एक २ मात्रा दो तो सीता सुख धाम हुई। फिर कमला लक्ष्मी अर्थात् रमा शब्द हुआ उस के (मध्य में कल दै) अन्त मा की मात्रा मध्य में दिया तो राम हुआ। इस प्रकार सीता राम सब सुखों का घर बना। प्रथम सीता जी को सब सुखों का मूल कह कर सीतारूपी भक्ति करने का उपदेश दिया फिर राम सब सुख के धाम का ग्रहण करने का यह अभिप्राय हुआ

* पाठान्तर—"अभिराम" इति.—Ed. ॥

कि पहले सीतारूपी भक्ति करोगे तो सब सुख की खानि राम अवश्य मिलेंगे ॥ ४ ॥

बीज धनञ्जय रबि सहित तुलसी तथा* मयङ्क।
प्रगट तहाँ नहिँ तम तमी सम चित रहत असङ्क॥ ५॥

(धनञ्जय) अग्नि का बीज (कारण) र। (रबि) सूर्य्य का बीज अ। उसी प्रकार (मयङ्क) चन्द्रमा का बीज म। इन तीनों के योग से राम यह नाम बना। जिस के मन में राम नाम प्रकट हो वहाँ (तम तमी) अज्ञानरूपी अन्धकार वा तम और तमी अज्ञान और मोहरूपी रात नहीं होती। वह सदा शान्त चित्त और निडर रहता है उस को किसी प्रकार का भय नहीं होता। अभिप्राय यह कि अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा ये तीनों प्रत्यक्ष देव हैं और इन के प्रताप को सब कोई जानते हैं सो इन के बीज राम में हैं इस कारण ऐसे प्रतापी राम के भजनेहारे के पास क्योंकर दुःख आ सकता है? ॥ ५॥

रञ्जन कानन कोक-नद बन्स बिमल अबतन्स।
गञ्जन पुरहित-अरि सदल जग-हित मानस-हन्स॥ ६॥

(कोकनद कानन रञ्जन बन्स अबतन्स) कमल बन के आनन्द देनेहारे निर्मल सूर्य्य वंश के भूषण, (सदल पुरहित-अरि गञ्जन) सेना के सहित इन्द्र के शत्रु रावण को मारनेवाले और संसार के हित कारक

* किसी २ पुस्तकों में सहित मयङ्क पाठ है उस का भी अर्थ यही है।

साधु जन वा शिव जी के (मानस) मनरूपी मानसरोवर के हंस (अर्थात् वास करनेहारे) [श्रीराम को भजना चाहिये] ॥६॥

जग तेँ रहु छत्तीस ह्वै राम-चरन छव तीन ।
तुलसी देखु बिचारि हिय है यह मतो प्रबीन ॥७॥

(जग) संसार से छत्तीस हो कर रहो अर्थात् जैसे ३६ छत्तीस के अङ्क में छ और तीन दोनों की पीठ एक ओर है वैसे ही तुम जग की ओर पीठ दे कर विरक्त रहो और राम चरण में (छ तीन) ६३ तिरसठ के समान अर्थात् चरण सेवा में लीन रहो। तुलसी दास कहते हैं कि यदि मन में विचार कर देखो तो यह मत अत्यन्त उत्तम है वा (प्रबीन) साधुओं का यह मत है ॥७॥

कं-दिग दून नछत्र हनि गुनी अनुज तेहि कीन ।
जेहि हरि कर मनि मान हनि तुलसी तेहि पद लीन ॥ ८ ॥

(कं) मस्तक (दिग) दिशा १०। दश मस्तक वा दशानन और दून अर्थात् दश का दुगुना बीस। नक्षत्र शब्द से यहाँ (हस्त नक्षत्र अर्थात्) हाथ लेना (बीस हाथ रावण को मार कर) उस के अनुज छोटे भाई विभीषण को गुणी राजा (कीन) बनाया। और जिन्हों ने हरि कर वानरों के हाथ से (मणि मान हनि) मणि का आदर कम किया। लङ्का काण्ड में "मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं" यह चौपाई प्रमाण है। तुलसी दास अपने मन से कहते हैं कि ऐसे रामचन्द्र के पद में (लीन) लगा रह ॥८॥

सिला साप मोचन चरन हरन सकल जञ्जाल ।
भरन करन सुख सिद्धि-तर तुलसी परम क्रिपाल ॥९॥

गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्या पति शाप से पत्थल हुई थी सो उस बड़े शाप के छुड़ाने हारे सब प्रकार के जाल के दूर करने वाले। (सिद्धितर भरन) अथवा ऐश्वर्य के बढ़ाने हारे सुखदायी और अत्यन्त दयालु राम को भजो ॥ ९ ॥

मरन बिपति-हर धुर धरम-धरा-धरन बल-धाम ।
सरन तासु तुलसी चहत बरन सकल* अभिराम॥१०॥

(मर न) जो नहीं मरते अर्थात् देवता उन की विपत्ति शत्रु रावण को मारने हारे अथवा बार२ मरने और संसार में जन्म लेने के दुख को (मुक्ति दे कर) दूर करने वाले धर्म के भार तथा पृथ्वी के भार को धारण करने हारे और बल की खान तथा जिस के सब (वर्ण) अक्षर (अभिराम) सुन्दर हैं ऐसे राम नाम की शरण तुलसीदास चाहते हैं। सकल वरण अर्थात् सचराचर जगत सब के रमण कराने हारे भी कोई २ अर्थ करते हैं ॥१०॥

बिहँग बीच रैयत तृतिय पति पति तुलसी तोर ।
तासु बिमुख सुख अति बिखम सपने हु होसि न भोर
॥११॥

(बिहँग अर्थात् पक्षि वाचक शब्द) शकुनि तिस के बीच का अक्षर-

*किसी २ पुस्तकों में चरित पाठ है अर्थ दोनों का एक ही है ।

कु- और (रैयत अर्थात्) परजा शब्द के तृतीय अक्षर-जा-को लेकर कुजा बनाना । कुजा अर्थात् पृथ्वी से उत्पन्न जानकी के पति राम तेरे पति हैं। जिस से विमुख अभक्त होने से सुख का मिलना बड़ा (विषम) कठिन है । इस लिये सपने में भी इस से भोर (अर्थात् गाफिल) असावधान न होना चाहिये ॥ ११ ॥

दुतिय कोल राजिव प्रथम बाहन निश्चय माहि ।
आदि एक कल दै भजहु बेद बिदित गुन जाहि ॥१२॥

कोल अर्थात् वाराह शब्द के दूसरे अक्षर-रा, और राजिव कमल वाचक शब्द महोत्पल का प्रथम अक्षर-म, दोनों के मिलाने से राम हुआ और वाहन वाचक-जान-शब्द का अर्थ जानना हुआ अर्थात् राम को निश्चय कर के जानो । (वाहन माहि एक कल दै) जान शब्द के प्रथम में एक मात्रा-ऊ-दे कर, रामजू-बना, उन्ही को भजो जिस का गुण वेद में प्रसिद्ध है ॥ अथवा कल शब्द के क में-ई-लगा-कर की बना जो जान-के अन्त में जोड़ने से जानकी हुआ । जानकी और राम को भजो ऐसा भी अर्थ कोई २ लोग करते हैं ॥ १२ ॥

बसत जहाँ राघव जल-ज तेहि मिति गो जेहि सङ्ग ।
भज तुलसी तेहि अरि-सु-पद करि उर प्रेम अभङ्ग॥१३॥

राघव (जल-ज) मछली जहाँ बसता है अर्थात् समुद्र की मिति मर्यादा-जिस के सङ्ग से नष्ट हुई उस रावण के अरि शत्रु राम के सुपद सुन्दर चरण को। (करि उर प्रेम अभङ्ग) अपने मन में अखण्डित प्रेम-

कर के भजो (ऐसा तुलसी अपने मन से अथवा लोगों से कहते हैं) सेतु बाँधने से समुद्र की मर्य्यादा का जाना इस दोहे में स्पष्ट है-करि कुसङ्ग चाहत कुसल तुलसी मन अपसोस महिमा घटी समुद्र की रावन बसे परोस ॥१३॥

भजहु तरनि-अरि-आदि कहँ तुलसी आत्म-ज-अन्त।
पञ्चा-ऽऽनन लहि पदुम मथि गहे बिमल मन सन्त॥१४॥

(तरनि-अरि-आदि) सूर्य के शत्रु राहु के आदि वर्ण-रा, और (आत्मज) काम के अन्त अक्षर-म-को ले कर, राम हुआ। जिस को (पदुम मथि) कमल रूपी वेद को मथन कर के (पञ्चानन) शिव जी ने (लहि) पाया। उसी राम नाम रूपी मत को (सन्त) साधुजनों ने अथवा निर्मल बुद्धि साधुओं ने ग्रहण किया है ॥१४॥

बनिता सैल-सुता-ऽऽस की तासु जनम को ठाम।
तेहि भजु तुलसी दास हित प्रनत सकल-सुख-धाम॥१५॥

सैल सुत हिमालय पुत्र मैनाक (तासु आस) उस का स्थान समुद्र (तासु की बनिता) उस की स्त्री गङ्गाजी के जन्म को (ठाम) स्थान वामन रूप विष्णु का पद। उस को हे तुलसी दास के मन वा और भक्त जन भजो, क्योंकि सब भक्तों के सुख का वह पद घर है॥१५॥

भजु पतङ्ग-सुत-आदि कहँ मृत्युञ्जय-अरि-अन्त।
तुलसी पुस्कर-जग्य-कर चरन-पान्सु मिच्छन्त ॥ १६ ॥

(पतङ्ग सुत) सूर्य के पुत्र कर्ण राधेय उस के आदि का अक्षर—

रा—और मृत्युञ्जय शिव के शत्रु काम के अन्त का अक्षर-म-मिल कर राम हुआ। राम के जिस पद के धूलि की इच्छा पुस्कर क्षेत्र में यज्ञ करने हारे ब्रह्मा जी करते हैं उस को भजो ॥ १६ ॥

उलटे तासी तासु पति सौ हजार मन सत्य ।
एक-सून्य-रथ-तनय कहँ भजसि न मन समरत्थ॥१७॥

तासी शब्द को उलटा करने से सीता हुआ उस के पति राम। सौ हज़ार, लक्ष, उस में मन शब्द के जोड़ने से शेष के अवतार लक्ष्मण। और एक पर शून्य देने से दश हुआ उस में रथ लगाने से दशरथ बना। तिस के पुत्र भरत शत्रुघ्न। इन चारों सर्वशक्तिमान पुत्रों को हे मन! क्यों नहीं भजता? ॥१७॥

दुतिय त्रितिय हर का सनहिँ तेहि भजु तुलसी दास ।
का कासन आसन किये सास न लहे उपास ॥ १८ ॥

प्रथमार्थ। (हर त्रितिय दुतिय) महादेव के शितिकण्ठ और गजारि नामों से तीसरा और दूसरा अक्षर लेना दोनों मिला कर कञ्जा हुआ अर्थात् जल-समुद्र से उत्पन्न लक्ष्मी रूप जानकी जी, (हर का सनहि) महादेव जी का आसन चर्म का म और (कञ्जा) लक्ष्मी वाचक इन्दिरा शब्द का तीसरा अक्षर-रा-मिलाने से मरा जिसे उलटने से राम हुआ। तुलसी दास कहते हैं कि सीता राम को भजो। (का कासन आसन करि सास न लह) कुश की चटाई का आसन कर के (बिना राम नाम लिये) साँस मत लो वरन (उपास) कर ॥

द्वितीयार्थ। (हर का मन द्वितिय हिं) महादेव का स्थान वाराणसी शब्द के दूसरे अक्षर-रा-और हरासन चरम शब्द के (तृतिय) तीसरे अक्षर-म-को मिलाने से राम बना। हे मन, जो राम को भजो तो (का सासन आसन किये, उपास सासन लहे का) कुश के आसन पर बैठ कर जपपूजा करने और उपवासरूप व्रतादि कर देह का सासन करने से क्या लाभ है अर्थात् इन का कुछ प्रयोजन नहीं* ॥ १८॥

आदि दुतिय अवतार कहँ भजु तुलसी न्रिप-अन्त।
कमल प्रथम अरु मध्य सह वेद बिदित मत सन्त॥ १९॥

दुतिय कुर्म अवतार का आदि-कु और (न्रिप) राजा शब्द के अन्त अक्षर जा को ले कर—कुजा—जानकी हुई। और (कमल नाम) राजीव शब्द का प्रथम रा और कमल के बीच का अक्षर म इन दोनों के योग से राम हुआ। यह सीता राम पद वेद में प्रसिद्ध है और साधुओं का (मत) इष्टदेव रूप है। इस को अवश्य भजना चाहिये। अथवा जो जन सीता राम को भजते हैं वे ही मेरे मत से वेद के प्रसिद्ध साधु जन हैं॥ १९॥

जेहि न गनेउ कछु मानस हु सुर-पति-अरि-भव-चास†।
जेहि पद सुचिता-अवधि-भव तेहि भजु तुलसी दास ॥ २० ॥

* तृतीयार्थ। हर (=हरि=विष्णु) का आसन=लक्ष्मी=श्रीरा। श्रीरा का द्वितीय =रा। हर (=महादेव) का आसन चरम (अर्थात् चर्म)। चरम का तृतीय=म। रा+म=राम॥ G. A. G.

† जहाँ 'चौपास' पाठ हो वहाँ उलटा अर्थ करना चाहिये।

(सुरपति अरि भव त्रास जेहि मानस हु न गनेउ। इन्द्र के शत्रु रावण से उत्पन्न भय को जिस रामचन्द्र ने अपने मन में भी न सोचा अर्थात् सकुल रावण का नाश कर डाला (शुचिता अवधि जेहि पद भव) पवित्रता की सीमा गंगा जी जिस (विष्णु) के चरण से उत्पन्न हुई हैं तुलसी दास अपने मन वा भक्त जनों से कहते हैं कि उस राम को भजो ॥ २० ॥

नैन करन-गुन-धरन बर ता बर धरन बिचार ।
चरन सतर तुलसी चहसि उबरन सरन अधार ॥२१॥

नेत्र के द्वारा जो कान के गुण को धारण करता है अर्थात् चक्षुःश्रवा सर्प उन में (बर) श्रेष्ठ जो शेष जी के अवतार लक्ष्मण उन से भी बर श्रेष्ठ (विचार धरन) विचार को धारण करनेहारे श्रीराम के चरण के शरण का आधार अवलम्ब शीघ्र ही करो। (उबरन चहसि) यदि (इस संसार से) बचना वा मुक्ति पाना चाहो ॥ २१ ॥

भजु हरि आदिहिँ बाटिका भरि ता राजिव-अन्त ।
कर ता पद बिस्वास भव-सरिता तरसि तुरन्त ॥ २२ ॥

(बाटिका आदिहिँ हरि) वाटिका शब्द के वाचक आराम शब्द के आदि अक्षर को हरण करके राम रहा उन्हे भजो, फिर (राजिव) नाम सभी उसके अन्त में (ता भरि) ता अक्षर को भर दिया तब सीता बना। (ता पद विश्वास कर) उन के चरण में विश्वास करो (भव-सरिता तुरन्त तरसि) तो संसार रूपी नदी शीघ्र तरोगे अर्थात् भव सागर से छूटोगे ॥ २२ ॥

जड़-मोहन-बरना-ऽऽदि कहँ सह चञ्चल चित चेत ।
भजु तुलसी सन्सार-अहि नहिँ गहि करत अचेत॥२३॥

जड़ मृग को मोहित करने हारे (राग) के आदि वर्ण को और चञ्चल चित अर्थात् मन के भी आदि वर्ण को मिलाओ तो राम हुआ। अथवा चञ्चल है चित्त जिस का स्त्री वामा के अन्त अक्षर म को लो तो भी राम होगा। राम को चेत कर के भजो (नहिँ संसार अहि गहि अचेत करत) नहीँ तो संसार रूपी सर्प तुम्हें पकड़ कर बेचेत करेगा ॥ २३ ॥

अमर-अधिप-बारन-बरन दूसर अन्त अगार ।
तुलसी इखु-सह-राग-धर तारन तरन अधार ॥ २४ ॥

अमर अधिप देवपति इन्द्र (बारन दूसर बरन) के हाथी ऐरावत का दूसरा अक्षर रा (अगार अन्त बरण) गृह वाचक धाम शब्द का दूसरा अक्षर म। तुलसी कहते हैँ कि (इखु) बाण के (सह) सहित (राग धर) सारँग धनुषबाण (धर) धारी राम तेरे तारणतरण मुक्ति दाता के भी मुक्ति दाता और (अधार) अवलम्ब हैँ ॥ २४॥

जौ उर-बिज चाहसि झटिति तौ करि घटित उपाय ।
सुमनस-अरि-अरि-बर-चरन-सेवन सरल सुभाय॥२५॥

यदि (उर्बिज भूमि के पुत्र) मङ्गल को चाहो (तो झटिति उपाय घटित कर) तो शीघ्र ही उपाय करो। सुमनस देवताओं के अरि रावण तिस के अरि राम के (वर) श्रेष्ठ चरण को (सहज स्वभाव से) निष्कपट हो कर सेवन करो ॥ २५ ॥

दुतिय पयो-धर परम-धन बाग-अन्त-जुत सोय।
भजु तुलसी सन्सार-हित या तें अधिक न कोय॥२६॥

पयोधर मेघ अर्थात् धाराधर उस का द्वितीय अक्षर अर्थात् रा और बाग का वाचक आराम शब्द का अन्त अक्षर म ले कर राम हुआ सोई संसार में परम धन है संसार का कल्यान करनेहारा इस से अधिक और कोई नहीं है इस से इसी राम नाम को भजना चाहिये। बाबा राधे राम महंथ जी जो अपनी बनाई तृतीय सर्ग की टीका में पर्वत का अर्थ "धरा" लिखते हैं सो ठीक नहीं है। अमर कोश में लिखा है "धाराधरो जलधरः" धाराधर मेघ को कहते हैं॥ २६॥

पति पयो-धि पावन पवन तुलसी करहु बिचार।
आदि-दुतिय-अरु-अन्त-जुत ता मत तव निस्तार॥२७॥

पति नाम भर्ता शब्द का पहला भ पयोधि सागर शब्द का अन्त अर्थात् तीसरा र अथवा सरोवर बाचक सर-शब्द का दूसरा अक्षर-र और पवन मरुत का तीसरा अक्षर त तीनों युक्त कर विचार करो तो भरत हुआ। तुलसी कहते हैं कि उन के मत (राम भक्ति) से तुम्हारा निस्तार अर्थात् मुक्ति है॥ २७॥

हन्स कपट रस-सहित गुन अन्त आदि प्रथम ऽन्त।
भजु तुलसी तजि बाम गति जेहि पद-रत भगवन्त॥
२८॥

हंस—मराल का ल कपट छल का छ और रस शब्द से फूल का

रस मकरन्द का आदि म उसी प्रकार गुण का अन्त ण से कर सहित वा युक्त करने से (लछमण) लक्ष्मण हुआ। (लक्ष्मण भगवन्त जेहि पद-रत बाम गति तजि तेहि भजु) श्रीलक्ष्मण भगवान जिस राम के चरण में प्रीति करते हैं छल और पाप छोड़ कर उसे भजो ॥ २८ ॥

कना समुझि क बरन हरहु अन्त-आदि-जुत सार।
स्त्री-कर तम-हर बरन बर तुलसी सरन-उबार॥२८॥

कना नाम मकरा को समुझ कर उस में से क वर्ण को हर लो फिर मरा बचा उसे उलट कर युक्त करने से सब नामों में सार श्रेष्ठ नाम राम हुआ। (स्री-कर) शोभा के देने हारे (तम-हर) अज्ञान को दूर करने हारे ये दोनों (बरन-बर) उत्तम अक्षर (सरन-उबार) अपनी शरण में आये हुये जनों को उबारने हारे हैं ॥ २९ ॥

अङ्क दसा रस-आदि-जुत पाण्डु-सून सह अन्त।
जानि सुअन सेवक सतर करिहैं क्रिपा तुरन्त॥३०॥

(अङ्क दसा) दश का अङ्क (१०) दश (रस-आदि) रस शब्द का आदि अक्षर र और पाण्डु सून पार्थ शब्द के अन्त्य वर्ण थ के साथ सबों को युक्त करने से दशरथ हुआ। दन के पुत्र को शीघ्र जान कर जो सेवा करेगा उस पर वे अवश्य शीघ्र कृपा करेंगे ॥३१॥

झटिति सखाहि बिचारि हिय आदि बरन हरि एक।
अन्त-प्रथम स्वर दे भजहु जा उर तत्त्व-बिबेक॥३१॥

झटिति (शीघ्र वाचक आसु शब्द का आदि वर्ण प्रथम अक्षर हरि निकाल कर (सखा) मित्र मिलाने से सुमित्र हुआ। उस के अन्त में एक स्वर (आ) देकर सुमित्रा हुई जिस को विचार कर भजना चाहिये क्योंकि उन के हृदय में तत्त्वों का ज्ञान है अथवा जिस के मन में तत्त्वज्ञान है उन्हें भजना चाहिये॥ ३१॥

आदि चन्द्र चञ्चल-सहित भजु तुलसी तजु काम।
अघ-गञ्जन रञ्जन सुजन भव-भञ्जन सुख-धाम॥३२॥

चन्द्रमा सहित रात का नाम राका है उस का आदि रा अथवा द्विजराज शब्द का रा लेना और उस में चञ्चल मन वा स्त्री अर्थात् वामा का म वा मन का म मिलाना तो राम हुआ तुलसी कहते हैं कि काम सुख भोग की इच्छा को छोड़ कर पाप के नाशक साधु जनों के आनन्ददायक संसार के दुख को छुड़ाने हारे सुख की खान ऐसे राम को भजो॥ ३२॥

बिगत-देह-तनुजा-सुपति-पद रति-सहित सनेम।
आदि अति मति चाहसि सु-गति तद तुलसी करु प्रेम॥३३॥

(विगत देह) जनक की तनुजा सुता के सुपति स्वामी राम के हितकारी पद में नियम पूर्वक प्रीति करो यदि बड़ी सुन्दर गति और मति चाहो॥ ३३॥

करता सुचि-सुर-सर-सुता ससि सारँग महि-जान।
आदि अन्त सह प्रथम-जुत तुलसी समुझु न आन॥३४॥

शुचि पवित्र सुर देवता के सर मानसरोवर की सुता पुत्री सरयू, कर्त्ता वसिष्ठ जी अथवा (करता) ब्रह्म का पवित्र (सुर-सर) मान सरोवर। उस की सुता पुत्री सरयू। शशि चन्द्रमा का नाम मयंक म सारङ्ग राग का रा मिला कर मरा। उस को उलटने से राम हुआ। महिजात भूमि से उत्पन्न जानकी हुई। इन को दूसरा नहीं समझना चाहिये। अथवा (तुलसी समुझु, न आन) इन को तुलसी दास वा राम लक्ष्मण और सीता के भक्त साधु जन जानते हैं और लोग नहीं समझते। आन का न केवल दोहे का छन्द मिलाने के लिये दिया गया है और उसी कारण "सारङ्ग" के र को भी हूस्व पढ़ना चाहिये॥

अन्वय। ससि (मयङ्क) आदि वर्ण (म)

सारङ्ग (राग) प्रथम (रा)

सह (साथ) मिलाओ (मरा)

आदि अन्त युत (आदि वर्ण अन्त से युक्त कर के (राम) यदि "शुचि करता" को एक पद मानो तो पवित्र करने वाले, अर्थ निकलेगा। वेदोक्त कर्म करने के कारण वसिष्ठ "कर्ता" कहे जा सकते हैं और सरयू ब्रह्मा के बनाये मान सरोवर की पुत्री है इस के विषय में मनु और रामायण के श्लोक।

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः॥ (मनु)
कैलासपर्व्वते राम! मनसा निर्मितं परम्।
ब्रह्मणा नरशार्दूल! तेनेदं मानसं सरः॥

तस्मात् सुस्राव सरसः साऽयोध्यामुपगूहते।

सरः प्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्म सरश्च्युता॥ (रा)॥ ३४॥

गिरिजा-पति कल आदि इक नक्खत हरि जुध जान।
आदि अन्त भजु अन्त पुनि तुलसी सुचि मन मान॥ ३५॥

गिरिजा पार्वती पति शिव के आदि अक्षर में एक कला मात्रा दे कर सी लेना और नक्षत्र इस के अन्त का त लेकर उस में भी एक मात्रा देना तो सीता हुआ। हरि नाम तारा में का फिर अन्त अक्षर रा और युद्ध सङ्ग्राम में का म सब के संयोग से सीताराम हुआ। सीताराम को (सुचि मन जान मान) पवित्र मन से जान कर माने और भजो॥ ३५॥

रितु-पति-पद पुनि पङ्क्ति-युत प्रथम आदि पुनि लेहु।
अन्त हरन पद दुतिय मँह मध्य बरन सह नेहु॥ ३६॥

ऋतु पति बसन्त पद (आदि हरन) में से आदि का अक्षर निकाल लेने से सन्त रहा और द्वितीय पङ्क्ति नाम रजत में (अन्त हरन) अन्त अक्षर निकाल ले तो रज बचा और उस के मध्य में पद शब्द लगाया तो सन्त पद रज हुआ। इस का मध्य पद जो चरण है उस से (नेह) प्रीति करो॥

अन्वय। रितुपति (बसन्त) प्रथम बरन लेऊ (सन्त)
पुनि पङ्क्ति (रजत) अन्त बरन हरन (रज)
प्रथम दुतिय पद मध्य मँहँ पद युत (सन्त-पद-रज)

मध्य पद सह नेह (बीच पद से प्रीति)। मूल में "पड़िक" शब्द "पदक" से निकला हुआ जान पड़ता है। कई एक पुस्तकों में "पड़िक" पाठ है इस कारण वही पाठ लिया गया है वस्तुतः पदक पढ़ना अच्छा होगा॥ ३६॥

बाहन सेख सु-मधुप रव भरत-नगर-जुत जान।
हरि भरि सहित बिपरज करि आदि मध्य अवसान
॥ ३७॥

(बाहन) यान (और सेख नाग अवसान) वासुकी के अन्त की की ले कर जानकी हुआ) फिर (सु-मधुप) सुन्दर भवंर शब्द का भी (अवसान) अन्त का अक्षर र लेकर वचन (मध्य हरि) शब्द के बीच के च को निकाल दिया तब रवन हुआ। इन को मिलाने से जानकी रवन पद निकला। फिर (भरत-नगर) मथुरा शब्द के मध्य के वर्ण को निकाल लिया तो मरा हुआ।) (विपर्ज करि जिस को उलटने से राम हुआ) इन सब को युक्त करने से जानकी रवण राम पद सिद्ध हुआ। इस जानकी रवन राम को जानना और भजना चाहिये॥

अन्वय। बाहन (यान) अर्थात् (जान)
सेख (बासुकी) आदि मध्य हरि (की)
मधुप (भँवर) आदि मध्य हरि (र)
रव (शब्द अर्थात् बचन) मध्य हरि (बन)
भरत नगर (मथुरा) मध्य हरि (मरा)
विपर्य करि (उलट) (राम)

सहित (सब को युक्त कर अर्थात् मिला कर जान अर्थात् जानो) जानकी रवन राम को जानो ॥

अथवा । दूसरे प्रकार से अन्वय और अर्थ । सेस वाहन (कुर्म) अवसान हरि (कु) सुमधुप रव (गुंजार) आदि अवसान हरि (जा) दोनों युक्त करने से कुजा सीता निकला तो सीताराम पद बना । सीताराम को (जान) जानो तो वे तेरे (आदि मध्य हरि) जन्म और कर्म को हरण करेंगे और (अवसान भरि) अन्तकाल अर्थात् मृत्यु को (भरि) पुष्ट करेंगे ॥ वा । (आदि मध्य अवसान भरि) जन्म कर्म और मृत्यु तीनों को बनावेंगे अर्थात् जब तक जीओगे तब तक सुख दे कर अन्त में मोक्ष देवेंगे ॥ ३७ ॥

तुलसी उडु-गन को बरन बनज-सहित दोउ अन्त ।
ता कहँ भजु सन्सय-समन रहित एक कल अन्त॥३८॥

(उडु गण के वरण) तारा शब्द के अक्षरों में से रा और (वनज) कमल में से म ले कर दोनों के अन्त अक्षरों को मिलाने से राम हुआ । ये सब सन्देहों को दूर करने हारे हैं । (कल रहित) सब छल आदि कलाओं से रहित और अन्त में अकेले सर्वोपरि विराजमान रहते हैं उन को भजो॥ ३८ ॥

बारिज बारिज बरन बर बरनत तुलसी-दास ।
आदि आदि भजु आदि पद पाये परम प्रकास ॥३९॥

(बारिज) राजीव का आदि रा और (बारिज) महोत्पल का आदि

म दोनों (बरन बर) उत्तम वर्णों को तुलसी (आदि पद) सब के पहले की वस्तु अर्थात् आदि कारण कह के वर्णन करते हैं इसी को भजना चाहिये (क्योंकि) इस को पाने से परम अर्थात् परब्रह्म परमेश्वर का प्रकाश होता है, अथवा परम प्रकाश सब के ऊपर तेजस्वी परमेश्वर मिलता है। (पदं व्यवसित त्राण स्थान लक्ष्माङ्घ्रि वस्तुषु इति कोशः) ॥ ३९ ॥

भजु तुलसी कुलिसा-ऽन्त कहँ सह अगार तजि काम।
सुख-सागर नागर ललित बली अली पर धाम॥४०॥

(कुलिसा-ऽन्त) हीरा शब्द के अन्त रा और (अगार) धाम के अन्त म को मिला कर राम हुआ उन को सकल कामना हीन हो कर भजो। वे सुख के समुद्र बड़े चतुर सुन्दर बलवान, (अलति समर्थो भवति इति अली) समर्थ वा अली को फारसी शब्द मानो तो उदार और परम तेजस्वी हैं ॥ ४० ॥

चञ्चल सहित ऽरु चञ्चला अन्त अन्त-जुत जान।
सन्त-सास्त्र-सम्मत समुझि तुलसी करु परमान॥४१॥

(चञ्चल) पारा और चञ्चला स्त्री अर्थात् वाम इन दोनों शब्दों के अन्त वर्णों को युक्त करने से राम हुआ। इस नाम पर सज्जन और शास्त्र सम्मत हैं ऐसा समझ कर इस को जानो और अपने मन में प्रमाण मानो ॥ ४१ ॥

आदि बसन्त इ कार दै आसय तासु बिचार ।
तुलसी तासु सरन परे कासु न भयेउ उबार ॥ ४२ ॥

वसन्त शब्द के आदि मेँ (इ) इकार जोड़ कर उस का अभिप्राय विचारो अर्थात् विसन्त विशेष कर के सन्त साधु जन राम पद तुल्य हैँ और उन की शरण मेँ जाने से किस की रक्षा नहीँ हुई है ॥ ४२ ॥

धरा धरा-धर बरन-जुग सरन हरन भव-भार ।
करन सतर तर परम पद तुलसी धर्मा-ऽऽधार ॥ ४३ ॥

धरा (पृथ्वी) शब्द के रा और (धराधर पर्वत) महो-धर के म को ले कर दोनोँ अक्षरोँ के योग से राम हुआ । राम जी संसार के दुख को हरने वाले धर्म के आधार और शरण मेँ रहने हारोँ को (सतर) शीघ्र (परम पद) मुक्ति के देने हारे हैँ ॥ ४३ ॥

बरन धनञ्जय-सूनु-पति-चरन-सरन-रति नाहिँ ।
तुलसी जग-बञ्चक बिहठि किये बिधाता ताहि ॥ ४४ ॥

धनञ्जय वायु के सूनु पुत्र हनुमान जी तिस के पति स्वामी श्रीराम के चरण मेँ जिस की प्रीति नहीँ रहती और जो उन की शरण मेँ नहीँ जाता उसे ब्रह्मा ने व्यर्थ संसार के ठगने के लिये बनाया है ॥ ४४ ॥

तुलसी रजनी पूर्निमा हार-सहित लखि लेहु ।
आदि अन्त-जुत जानि करु ता सोँ सरल सनेहु ॥ ४५ ॥

पूर्णिमा की रात का नाम राका, उस का रा और (हार) दाम

शब्द के म को मिलाने से राम हुआ। इस (राका) के आदि और (दाम) के अन्त के अक्षरों को देख जान कर उन के चरण में निष्कपट प्रीति करो॥ ४५॥

भानु गोत्र तमि तासु पति कारण अति-हित जाहि।
ग्यान-सु-गति-जुत सुख सदन तुलसी मानत ताहि॥ ४६॥

भानु सूर्य्य का बीज अ गोत्र अग्नि का बीज र और तमी रात्रि (तासु) तिस के पति चन्द्रमा का बीज म तीनों के मिलाने से राम हुआ। इन के कारण राम-नाम को तुलसी बड़ा हित-कारी सुन्दर गति के सहित ज्ञान-दायक और सुख का घर मानते हैं॥ ४६॥

भजु तुलसी ओघा-ऽऽदि कहँ सहित तत्त्व-जुत-अन्त।
भव आयुर-जय जासु बल मन चल अचल करन्त॥४७॥

(ओघा-ऽऽदि) राशि के आदि रा और (अन्त तत्त्वजुत) तत्वों में आकाश व्योम का अन्त म लेकर दोनों के साथ मिलाने से राम हुआ तुलसीदास कहते हैं कि राम को भजो। जिस के बल से (भव) महादेवजी आयुर्जय अर्थात् मृत्युञ्जय अमर हुये और (चल) चञ्चल मन अचल किया अथवा चञ्चल अर्थात् अनेक योनि में घूमने हारे मन को नाम का उपदेश दे कर अचल करते हैं॥ ४७॥

दैत कहा व्रिप्र काज पर लेत कहा इतराज।
अन्त-आदि-जुत-सहित भजु जौ चाहसि सुभ काज॥ ४८॥

नृप राजा काम पड़ने पर बीरा देता है सो उस का रा और फिर राजा जब अप्रसन्न हो कर दूतराज करता है तो मर्य्याद लेता है उस का म ले कर पहले के अन्त और दूसरे के आदि दोनोँ को युक्त करने से राम ज्ञआ। हे मन जो तू शुभ काम और अपना कल्यान चाहता हो तो राम को भज ॥ ४८॥

चन्द्र-रमनि भजु गुन-सहित समुझि अन्त अनुराग।
तुलसी जौ यह बनि परै तौ तव पूरन भाग ॥ ४९॥

चन्द्रमा की स्त्री अर्थात् नक्षत्रोँ मेँ एक अनुराधा का गुण अर्थात् तीसरा अक्षर रा और अनुराग प्रेम शब्द के अन्त म को मिला कर राम बना तुलसी कहते हैँ कि समझ कर जो इस नाम का स्मरण तुम से बन सके तो तुम्हारे भाग पूरे हैँ ॥ ४९ ॥

जिन के हरि-बाहन नहीँ दधि-सुत-सुत जेहि नाहिँ।
तुलसी ते नर तुच्छ हैँ बिना समीर उड़ाहिँ ॥ ५०॥

हरि बाहन गरुड़ अर्थात् गरुवापन और दधि समुद्र का सुत पुत्र चन्द्र उस का सुत बुध अर्थात् बुद्धि ये दोनोँ जिन के नहीँ हैँ वे मनुष्य बड़े हलके होते हैँ और बिना वायु के उड़ा करते हैँ ॥ ५०॥

रबि चञ्चल अरु ब्रह्म-द्रव बीच सु-बास बिचारि।
तुलसि-दास आसन करे अवनि-सुता उर धारि ॥ ५१॥

(रबि) सूर्य्य अर्थात् अर्क (चञ्चल) लोल अर्थात् लोला (ब्रह्म द्रव) गङ्गा जी अर्थात् लोलार्कादित्य और गङ्गा के बीच तुलसीदास का

सुन्दर बास है वहाँ (अवनि-सुता) सीता जी को हृदय में धारण कर के तुलसीदास अपना आसन जमाते थे। काशी में अस्सी के दक्षिण लोलार्कादित्य और गङ्गा जी के बीच में तुलसीदास की कुटी है वहाँ ही वे बैठते थे ॥ ५१ ॥

बन-बनिता-द्रिगको-ऽपमा-जुत करु सहित बिबेक।
अन्त आदि तुलसी भजहु परिहरि मन कर टेक॥५२॥

बन नाम जल अर्थात् नारा का रा और वनितादृगकोपमा स्त्री के नेत्र का उपमान मछली का म इन दोनों के अन्त और आदि के अक्षरों को युक्त करने से राम हुआ। तुलसीदास कहते हैं कि विचार पूर्वक मन की जड़ता दूर कर कें राम को भजो ॥ ५२ ॥

उरबी-अन्तहुँ आदि-जुत कुल-सोभा-कमला-ऽऽदि।
करि बिपरज ऐसे हि भजहु तुलसी समन बिखादि॥५३॥

(उरबी) धरा के अन्त का रा और फिर (उरबी) मही शब्द के आदि म को युक्त करने से राम हुआ। फिर कुल शोभा कुल वंश की शोभा शील से होती है इस से सी और कमल अर्थात् तामरस का ता दोनों के आदि अक्षरों के मिलाने से सीता हुआ। राम सीता को विपर्य्यय करके उलट कर अर्थात् सीता राम बना कर ऐसे अर्थात् घर बैठे विना यज्ञादि के भी भजो तो सब दुःख नष्ट होगा ॥ ५३ ॥

तौ तोहि कहँ सब कोउ सुखद करहिँ कहा तव पाँच।
हरब चितिय बारिज-बरन तज बलीन सुनु साँच॥५४॥

(वारिज) तामरस शब्द के (बरन) अक्षरों में से (त्रितीय हरब) तीसरा अक्षर निकाल लो तब तामस बचा। इस बलवान तामस को त्याग कर और सत्यता को सुन तो पाँच अर्थात् १ क्षुधा २ तृषा ३ निद्रा ४ आलस्य और ५ मैथुन तुम्हारा क्या कर सकते हैं और सब जन तुम्हारे लिये सुखदायी होंगे ॥ ५४ ॥

तजहु सदा सुभ-आसु-अरि भजु सुमनस-अरि-काल।
सजु मत ईस अवन्तिका तुलसी बिमल बिसाल॥५५॥

सदा शुभ कल्यान वा मुक्ति की आशा छोड़ो और सुमनस देवताओं के अरि रावण के काल मारने हारे राम को भजो। अवन्तिका पुरी उज्जयिनी के ईश महाकालेश्वर महादेव के निर्मल और बड़े मत को (सजो) धारण करो अर्थात् राम का स्मरण करो।

दूसरा अर्थ। शुभ के अरि काम क्रोधादि को छोड़ कर (आशु) शीघ्र राम को भजो और उज्जयन के राजा विक्रमादित्य के मत को धारण करो आदि ॥ ५५ ॥

एत-बन्स-बर-बरन-जुग सेत जगत सब जान।
चेत-सहित सुमिरन करत हरत सकल अघ-खान॥५६॥

(एत-बन्स) सूर्य्यवंशी राजाओं में वर श्रेष्ठ (बरण जुग) दो अक्षर अर्थात् राम (सब जगत सेत जान) को सब संसार की मर्यादारूप वा भवसागर से पार करने के लिये पुलरूप समझो। चैतन्यता से स्मरण करने से सब पापों की खान को हर लेते हैं। जहाँ "जगत सरि" पाठ हो वहाँ संसार रूपी नदी अर्थ करना चाहिये ॥ ५६ ॥

मैत्री बरन य-कार को सह स्वर आदि बिचारि।
पञ्च प-बरगहिँ जुत सहित तुलसी ताहि सम्भारि ॥५७॥

य-कार का मैत्रीवर्ण अर्थात् समान वर्ण र-कार को ले कर (आदि स्वर) अ-कार से (सह) सहित करो तो रा होगा फिर प-वर्ग के पाँचवेँ अक्षर से युक्त करना तब राम हुआ इस राम नाम को तुलसी अपने मन वा भक्तोँ से कहते हैँ कि तुम (सम्भारि) धारण करो वा उन पर भरोसा करो ॥ ५७ ॥

हल-अम-मध्य समान-जुत या तेँ अधिक न आन।
तुलसी ताहि बिसारि सठ भरमत फिरत भुलान ॥५८॥

हल (ह य व र ल) इन अक्षरोँ मेँ से र फिर अम प्रत्याहर मेँ से म ले कर उस के बीच मेँ समान स्वर अ जोड़ा तब राम हुआ जिस से अधिक और कुछ नहीँ है तुलसी अपने मन वा किसी शिष्य से कहते हैँ कि उसे (राम को) विसरा कर हे मूर्ख क्योँ तू भूल कर भटकता फिरता है ॥ ५८ ॥

कौन जाति सीता, सती, को दुख-दा, कटु बाम।
कोकहिँ ए ससि-कर दुख-द, सुख-दायक को, राम॥५९॥

सीता जी कौन जात हैँ ? (उत्तर) सती। दुख-दायक कौन है? कर्कशा स्त्री। (कोकहिँ) चकई को कौन दुख देता? (ससि-कर) चन्द्रमा की किरणेँ। कौन सुख देता है ? राम जी। इस दोहे मेँ प्रश्नोत्तरालङ्कार वा चित्रोत्तर है आधे २ मेँ प्रश्न और उत्तर दोनोँ

कहे है ॥ बाबा राधे राम जी की टीका में जो अर्थ है वैसा अर्थ करो तो कुछ चमत्कारी नहीं आती इस से यह अर्थ किया गया॥ ५९॥

को सङ्कर, गुरु-बाग बर, सिव-हर को, अभिमान।
करता को, अज, जगत को, भरता को, हरि जान॥६०॥

(प्रश्न) (को सङ्कर) कल्यान-कारी कौन है। (उत्तर) गुरु की श्रेष्ठ वाणी उत्तम उपदेश। (प्र) मङ्गल नाशक कौन है? अहङ्कार। जगत का कर्ता कौन है? ब्रह्मा। पोषण करने हारा कौन? विष्णु भगवान को जानिये॥ ६०॥

स्वर स्रेयस राजीव-गुन करु तेहि द्रिढ़ पहिचान।
पञ्च प-बरगहिँ जुत सहित तुलसी ता हित मान॥६१॥

स्वर अर्थात् अ-कार श्रेयस कल्याण कारक है क्योँ कि विष्णुरूप है (अकारो वासुदेवः स्यात्) राजीव तामरस तिस का (गुन) तृतीय वर्ण र ले कर अ मिलाने से रा हुआ। फिर पाँचवें वर्ग अर्थात् प वर्ग का पाँचवाँ अक्षर मिलाकर राम बना। इस राम को (द्रिढ़) निश्चय कर के पहचानो और अपना हित-कारी जानो॥ ६१॥

होत हरख का पाय, धन, बिपति तजे का, धाम।
दुख-दा कु-मति कु-नारितर, अति, सुख-दायक राम॥ ६२॥

(प्रश्न) (का पाय हरख होत) कौन वस्तु पाने से हर्ष होता है (उत्तर) धन। (का तजे विपत्ति) कौन वस्तु छोड़ने से विपत्ति होती

है (उत्तर) धाम। दुखदाई कौन है ? कुबुद्धि और बड़ी दुष्ट स्त्री। अत्यन्त सुखदेनेहारा कौन है ? राम जी ॥ ६२ ॥

बीर कवन, सह मदन-सर, धीर कवन, रत-राम।
कवन क्रूर, हरि-पद-बिमुख, को कामी, बस बाम ॥६३॥

बीर कौन है ? जो काम बाण सह सके। धीर कौन है ? जो रामचन्द्र के चरण में लगा रहता है। क्रूर कौन है ? जो राम के चरण से विमुख विरुद्ध है। कामी कौन है ? जो स्त्री के वश में रहता है ॥ ६३ ॥

ये कई एक दोहे भगवान् शङ्कराचार्य्य के प्रश्नोत्तरमाला से मिलते हैं।

कारन को, कं, जीव को, खं, गुन कह सब कोय।
जानत को, तुलसी कहत, सो पुनि आन न होय ॥६४॥

जीव का कारण कौन है ? कं जल अर्थात् नारा में का रा और खं आकाश अर्थात् व्योम में का म दोनों को गुणने से राम हुआ। जिस को सब लोग सब जीवों का आदि कारण कहते हैं। तुलसी कहते हैं कि यह (को) कोई साधु जन जानते हैं और जो जानते हैं वे दूसरे नहीं अर्थात् राम के तुल्य है ॥ ६४ ॥

तुलसी बरन बिकल्प तें औ चप-चितिय-समेत।
अन-समुझे जड़-सरिस नर समुझे साधु स-चेत ॥ ६५॥

बिकल्प बोधक अक्षर वा और चप प्रत्याहार च ट त क प का

तीसरा अक्षर त दोनों को (समेत) मिलाने से बात हुई। जो मनुष्य सत्य बात को वा वेद पुरान में कही बातें समझता है वह साधु है और जो नहीं समझता वह जड़ मूर्ख है ॥ ६५ ॥

जासु आस सर देव को अरु आसन हरि-बाम ।
सकल-दुख-द तुलसी तजहु मध्य तासु सुख-धाम॥६६॥

(देव-सर) मान-सरोवर जिस का आस स्थान है अर्थात् मानस-निवासी राज-हंस मराल के मध्य रा को और (हरि-बाम) विष्णु-भार्य्या लक्ष्मी का आसन कमल का मध्य म लेना तो राम हुआ मराल के मध्य रा को (तजहु) निकाल देने से मल रहा अर्थात् पाप सब के लिये दुखदाई है इस से इस का त्याग करो। राम-चन्द्र सुख के घर हैं (उन को भजो) ॥ ६६ ॥

चञ्चल तिय भजु प्रथम हरि जो चाहसि पर-धाम ।
तुलसी कहहि सुजन सुनहु यही सयानप-काम॥६७॥

(चञ्चल) पारा का रा और स्त्री अर्थात् बाम शब्द के अन्त का म ले कर दोनों के (प्रथम हरि) पहले अक्षर निकाल कर राम हुआ। तुलसी कहते हैं कि हे साधुजनो ! जो आप लोग परम पद चाहते हों तो मेरी बात सुन कर राम भजिये, क्योंकि यह सयानपने का काम है ॥ ६७ ॥

कुलिस-धरम-जुग-अन्त-जुत भजु तुलसी तजु काम ।
असुभ-हरन सन्सय-समन सकल-कला-गुन-धाम ॥ ६८ ॥

(कुलिश) हीरा और धरम दोनोँ के अन्त अक्षरोँ को (जुत) मिलाने से राम हुआ। सब विद्या और गुनोँ के घर अमङ्गल को नाश करनेहारे और सन्देहोँ को दूर करनेहारे राम को सब काम छोड़ कर भजो॥ ६८॥

श्री-कर को, रघु-नाथ, हर, अनय कहत सब कोय।
सुख-दा को, जानत सु-मति तुलसी समता दोय॥६९॥

(प्रश्न) कौन लक्ष्मी देनेहारा है? रघुकुल-भूषण राम जी।

,, श्री को हरनेहारा कौन है? सब कहते हैँ कि अनीति वा अन्याय।

,, सुखदाई क्या है? सुन्दर बुद्धि और समता दोनोँ को जानना चाहिये। प्रश्नोत्तर है। जहाँ "हर अनयस" पाठ हो वहाँ लक्ष्मी को हरनेहारा अपयश है, ऐसा अर्थ करना चाहिये॥६९॥

बैर-मूल, हित-हर बचन, प्रेम-मूल, उपकार।
दो हाँ सरल सनेह-मय तुलसी करै बिचार॥ ७० ॥

झगड़े की जड़ क्या है? बुराई करनेहारी बात। प्रेम का कारण क्या है। उपकार वा भलाई करना। तुलसी विचार कर कहते हैँ कि (दो हाँ) दो बार हाँ हाँ कर देना स्वाभाविक प्रेम है। किसी ने कोई भली बात कही तो हाँ हाँ कर उस का मन प्रसन्न करने से प्रेम होता है। जहाँ "दोहा" पाठ हो वहाँ दोनोँ अर्थात् प्रीति और बैर को नाश करनेहारी उदासीनता अर्थ करना चाहिये॥ ७०॥

प्राग कवन, गुरु, लघु, जगत तुलसी अवर न आन।
सेष्ठा को हरि-भक्ति-सम, को लघु लोभ-समान॥७१॥

(प्राग) विशेष ज्ञानवान कौन है? गुरु। छोटा कौन है? यह संसार और दूसरा नहीं (कोंकि संसारी प्राकृत जन ही छोटा काम करते हैं)। राम भक्ति के समान श्रेष्ठ इस संसार में और कौन वस्तु है? और लोभ के समान छोटी कौन वस्तु है? कोई नहीं॥ ७१॥

बरन दुतिय नासक निरय तुलसी अन्त रसाल।
भजहु सकल स्री कर सदन जन-पालक खल-साल॥७२॥

निरय नरक के नाश करनेहारे नारायण शब्द का दूसरा वर्ण रा और रसाल आम के अन्त म को ले कर राम हुआ। सब लोग श्री लक्ष्मी के सदन निवास स्थान भक्तों को पालनेहारे और दुष्टों को दण्ड देनेहारे राम को भजो॥ ७२॥

चप स्रेयस-स्वर-सहित गुनि यम-जुत दुख-द न आन।
तुलसी हल-जुत ते कुसल अन्ति-कार सह जान॥७३॥

चप प्रत्याहार च ट त क प वर्णों में से क और श्रेयस अर्थात् कल्यानकारी स्वर आ इन को (गुनि) विचार कर मिलाने से का हुआ, और यम इस शब्द के म अथवा ञम प्रत्याहार ञ म ङ ण न में से म ले कर मिलाने से काम हुआ। काम के समान दुखदाई इस संसार में और कोई वस्तु नहीं है। फिर हल प्रत्याहार में से ल के स्थान में र करने से हर हुआ तब उस के अन्त र में इ-कार

मिलाने से हरि हुआ जिस के समान सुखदाता और कोई नहीं है। हरि से यहाँ विष्णुरूप राम लेना चाहिये।

द्वितीयार्थ। चप प्रत्याहार में से (गुन) अर्थात् तीसरा अक्षर त ले कर उसे प सहित करना तो तप हुआ। तपस्या (श्रेयस) कल्यानकारी है परन्तु (ञम युत दुखद) ञम शब्द वा प्रत्याहार में के म को (युक्त) मिलाने से तम हुआ। यदि वह तपस्या तमोगुण युक्त हो तो उस के समान (दुखद आन न) दुखदाई और कोई वस्तु नहीं है।

तृतीयार्थ। चप प्रत्याहार से (गुन) तीसरा वर्ण त और ञम से पाँचवाँ न लिया तो तन हुआ यह शरीर यदि तप (वा ञम) यम अर्थात् अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य्य, अदम्भ और अचौर्य्य इन पाँचों के सहित हो तो कल्यानकारी है। परन्तु (प गुनि) प-कार को दुगुना कर पप बनाया फिर (स्वर सहित) आकार स्वर पहले प में युक्त किया तो पाप निकला। अथवा (चप-गन-युत) चप में से तीन अक्षर अर्थात् ट प क को उलटा पढ़ने से कपट हुआ। यदि शरीर पाप और कपट युक्त हो तो इस के समान दुखदाई और कुछ नहीं।

चतुर्थार्थ। चप प्रत्याहार में का क (श्रेयस्) साक्षात् शिव स्वरूप है और अत्यन्त मङ्गलकारी है। तैतरीय, कौशीतकी, और शतपथ आदि ब्राह्मणों में, क प्रजापति कर के वर्णन किया गया है। क अर्थात् विष्णु रूप राम कल्यानकारी है परन्तु यदि (स्वर ञम युत) इस में आ स्वर मिला कर ञम का म मिलाइये तो काम हो जाता है जिस के समान दुखदाई कोई नहीं॥

र ल के परस्पर बदलने और क तथा यम शब्द के अर्थों के विषय में प्रमाण।

रलयोर्डलयोश्चैव शषयोर्बवयोस्तथा।
वदन्त्येषाञ्च सावर्ण्यमलङ्कारविदो जनाः॥
मरुते वेधसि ब्रध्ने पुंसि कः (अमरः)
को ब्रह्मणि समीरात्म यम दक्षेषु भास्करे।
मयूरेऽग्नौ च पुंसि स्यात् (मेदिनी)
अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्य्यमकल्कता।
अस्तेयमिति पञ्चैते यमाख्यानि व्रतानि च॥

यद्यपि जम शब्द से यम शब्द भिन्न है तथापि उच्चारण में एक सा सुन पड़ने के कारण यहाँ (जम) से यम का अर्थ लिया गया है॥ ७३॥

तुलसी यम गुन बोध बिनु कहु किमि मिटइ कलेस।
ता तें सत गुरु सरन गहि जा तें पद-उपदेस॥७४॥

यम प्रत्याहार य म ग ण न म का अथवा यम इस पद का म ले कर उस में गुन अर्थात् तीन शब्द का अथवा गुन इस पद का न मिलाया तब मन शब्द बना, तुलसी पूछते हैं कि जब तक मन को बोध यथार्थ ज्ञान नहीं होता तब तक किस प्रकार क्लेश दूर हो सकता है? (मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः)। इस लिये ऐसे उत्तम गुरु के चरण की शरण में जाना चाहिये जिस से उस पद (बोधरूपी वस्तु) का उपदेश मिले॥ ७४॥

भ-गन ज-गन का सोँ करसि राम-अपर नहि कोय।
तुलसी-पति-पहिचान बिनु कोउ तुल कबहुँ न होय ॥ ७५ ॥

भगण जिस में आदि अक्षर गुरु होय अर्थात् तामस (ऽ।।)। और जगण जिस में बीच का वर्ण गुरु हो अर्थात् विरोध (।ऽ।)। (का सोँ भ-गण ज-गण करसि) तुलसी संसारी पुरुषों वा अपने मन से कहते हैं कि तामस क्रोध और विरोध झगड़ा किस से करता है इस संसार में राम को छोड़ और कोई तो है नहीं (सियाराममय सब जगजानी)। बिना राम का पहचाने कोई योग्य वा राम तुल्य कभी नहीं हो सकता है। भगण जगण पदों से आदि और मध्य गुरु किसी दो शब्द को ले सकते हैं जैसे सुप्रीति और उदास आदि ॥ ७५॥

तुलसी त-गन-बिहीन नर सदा न-गन के बीच।
तिनहिँ य-गन कैसे लहइ परे स-गन के कीच ॥ ७६॥

तगण अन्त में जिस के एक लघु वर्ण अर्थात् सन्तोष (।ऽऽ।)।

नगण जिस में तीनों लघु वर्ण हों अर्थात् नरक वा करम (।।। ।।।)।

यगण जिस में आदि में लघु हो अर्थात् सुमेधा (।ऽऽ)।

सगण जिस में अन्त में एक गुरु हो अर्थात् जड़ता (।।ऽ)।

तुलसी दास कहते हैं कि तगण सन्तोष रहित नर मनुष्य सदा नगण नरक के बीच गिरते हैं, उन को यगण (सुमेधा) सुबुद्धि

किस प्रकार मिल सकती है वे तो सदा सगण मूर्खता रूपी कीँच मेँ फसे है ॥ ७६ ॥

इन्द्र-रँवनि सुर देव-ऋखि रुकुमिनि-पति सुभ जान।
भोजन दुहिता काक अलि आनँद असुभ समान॥७७॥

इस दोहे मेँ उदाहरण के सहित गणों का निर्णय है।

जिस मेँ तीनोँ गुरु हो उसे मगण कहते हैँ जैसे (इन्द्ररमणी)
ऽ ऽ ऽ
इन्द्राणी।

जिस मेँ तीनोँ लघु वह नगण कहाता है जैसे (सुर) ।।। अमर।

जिस के आदि मेँ गुरु वह भगण जैसे (देवऋषि) ऽ।। नारद।

" " लघु वह यगण " (रुकुमिनी पति) ।ऽऽ विहारी।

इन चार गणोँ को कवित्त की आदि मेँ शुभदायक जानना चाहिये।

जिस के मध्य मेँ एक गुरु हो वह जगण जैसे (भोजन) ।ऽ। अहार।

" " एक लघु " रगण जैसे (काक-दुहिता) ऽ।ऽ कोकिला।

" अन्त मेँ गुरु " सगण जैसे (अलि) ।।ऽ भवरा।

" अन्त मेँ लघु हो " तगण जैसे (सुख) ऽऽ। आनन्द।

इन चार गणोँ को कवित्त की आदि मेँ अशुभ समझना चाहिये।

मगण नगण भगण यगण शुभ। जगण रगण सगण तगण अशुभ॥७७॥

को हित, सन्त. अहित, कुटिल; नासक को ऽहित, लोभ।
पोखक, तोखक; दुखद, अरि; सोखक, तुलसी, छोभ॥७८॥

हितकारी कौन है ? साधु जन। हानिकारक कौन है? कपटी। नाश और अहितकारी कौन है ? लोभ। पुष्ट करनेहारा कौन है? सन्तोष। दुखदाई कौन ? शत्रु। शरीर को सुखानेहारा कौन ? (क्षोभ) डर वा चिन्ता ॥ ७८॥

सदा न-गन-पद-प्रीति जेहि जानु न-गन-सम ताहि।
ज-गन ताहि जय जुत रहत तुलसी सन्सय नाहि॥७९॥

नगन (। । ।) अर्थात् भरत के चरण में जिस की प्रीति सर्वदा रहती है उसे भरत के समान जानना चाहिये। जो जगन अर्थात् विचार वा विज्ञान युक्त है उस का सदा जय होता है इस में कुछ भी सन्देह नहीं है। अथवा कवित्त की आदि में प्रीति दायक और जय दायक नगण और यगण को जानना चाहिये ऐसा भी अर्थ कर सकते हैं॥ ७९॥

भ-गन-भक्ति करु भरम तजि त-गन स-गन बिधि होय।
स-गन-सुभाव समुझि तजो भजे न दूखन कोय॥८०॥

भ्रम सन्देह छोड़ कर भगन (ऽ । ।) (माधव) अर्थात् राम जी की भक्ति करो। (त-गन (ऽ ऽ ।) बिधि होय) सन्तोष करने की आज्ञा है अर्थात् सन्तोष करना चाहिये, परन्तु (म-गन स-गन सुभाव समुझि तजो) मगण ममता को सगण जड़ता का स्वभाव जान कर छोड़ दो। इन को तज कर राम भजने में कोई दोष न होगा। अथवा भ्रम छोड़ कर भक्ति बढ़ानेहारे भगण को कवित्त की आदि में लीजिये परन्तु तगण को

सगण ही के समान अशुभ स्वभाव जान कर त्याग कीजिये मगण आदि को लेने में दोष नहीं॥ ८०॥

स्त्रिङ्गज-असन स जुक्त जू बिहरत तीर सु-धीर।
जग्य-पाप-मय-त्रान-पद राजत स्री रघु-बीर॥ ८१॥

सींग से जो उत्पन्न हो उसे शृङ्गज कहते हैं अर्थात् धनुष सो है असन फेंकने का स्थान जिस का उसे शृङ्गज-असन कहते हैं अर्थात् शर हुआ। उस शर को (जू जुक्त) ज अक्षर से युक्त करो तो सरयू हुआ। यज्ञ शब्द से मख लिया और पाप शब्द से मल लिया इन दोनों को (मय) युक्त किया तब मखमल हुआ। मखमल है पद-त्रान जूता जिस का उसे यज्ञपापमयपदत्राण कहते हैं।

(सु-धीर) बड़े धीर (स्री रघु-बीर) शोभावान रघुवंशियों में श्रेष्ठ बीर रामचन्द्र (स्त्रिङ्गज-असन स जुक्त जू तीर) सरयू के तीर (जग्य पाप मय पद त्रान) मखमल का जूता पहने (बिहरत) टहलते हुये (राजत) शोभ रहे हैं॥८१॥

बान-जुक्त जू तट निकट बिहरत राम सुजान।
तुलसी कर-कमलन ललित लसत सरासन बान॥ ८२॥

(बान) शर में (जू जुक्त) जू मिलाने से सरजू हुआ। सरजू तीर पर अतिज्ञानवान श्रीरामचन्द्र अपने कमलरूपी हाथों में सुन्दर धनुष-बाण लिये टहलते हुये शोभ रहे हैं॥ ८२॥

घिदु मेचक सिर-रुह रुचिर सीस तिलक भ्रू बङ्क।
धनु सर गहि जनु तड़ित-जुत तुलसी लसत मयङ्क॥ ८३॥

(घिदु) कोमल (मेचक) श्याम बाल शिर पर विराज रहे हैं और मस्तक में तिलक दिये टेढ़ी भृकुटी किये श्रीराम मानों धनु शर लिये बिजुली युक्त चन्द्रमा के समान शोभ रहे हैं। भ्रू, धनु, तिलक बाण, बाल की चमक बिजुली, श्यामता मेघ और मुख चन्द्र के स्थान में जानना चाहिये॥ ८३॥

हन्स कमल बिच बरन-जुग तुलसी अति प्रिय जाहि।
तीन लोक महँ जो भजै लहै तासु फल ताहि॥ ८४॥

(हन्स) मराल का मध्य अक्षर रा और कमल का मध्य म मिलाने से राम हुआ। राम को तीनों लोक में जो प्यार करता और भजता है वह उस भजन का फल (संसार से) मुक्ति पाता है। अथवा तीनों लोक में जो फल यज्ञ आदि से मिल सकता है सो सब भजनेवाले को मिलता है॥ ८४॥

आदि म है अन्त हु म है मध्य र है तेहि जान।
अनजाने जड़ जीव सब समुझे सन्त सु-जान॥ ८५॥

आदि में म और अन्त में भी म है और मध्य में र है अर्थात् मरम को जानो। जब तक लोग राम नाम का मरम और भेद न जानें तब तक जीव जड़ है। और जब सब भेद समझें तब सुन्दर सन्त हो जाते हैं॥ ८५॥

आदि द है मध्ये र है अन्त द है सो बात।
राम बिमुख के होत है राम भजन तेँ जात॥ ८६॥

आदि मेँ द मध्य मेँ र और अन्त मेँ भी द है अर्थात् दरद। सो यह दरद पीर बात राम से जो लोग विमुख हैँ उन्ही को होती है और भजन से पीड़ा नष्ट हो जाती है ॥ ८६ ॥

ललित चरन कटि कर ललित लसत ललित बन-माल।
ललित चिबुक द्विज अधर सह लोचन ललित बिसाल॥ ८७॥

श्री राम के चरण अति सुन्दर कमर और हाथ दाढ़ी दाँत और होठ अत्यन्त मनोहर और नेत्र बड़े२ शोभ रहे है । (तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजाता, और कमल से बनी) बनमाला गले मेँ विराजती है ॥ ८७ ॥

भरन हरन अव्यय अमल सहित बिकल्प बिचार।
कह तुलसी मति अनुहरत दोहा अरथ अपार॥८८॥

अक्षर अव्यय अनस्वर और निर्दोष हैँ कोई लोग इसे भरते और कोई हरते हैँ अर्थात् किसी अक्षर को मिलाते और हरते किसी अक्षर को निकाल लेते जैसे इस सर्ग के दोहोँ मेँ किया गया है और कोई विकल्प कर के अर्थात् दो अर्थ मेँ से एक अर्थ अपनी२ बुद्धि के अनुसार करते हैँ परन्तु दोहोँ का अर्थ अपार है कई प्रकार का हो सकता है। अथवा (भरन) अलङ्कार, रस, और काव्य के गुणादि

से पुष्ट करना,(हरन) दुःश्रवत्व अश्लीलत्व आदि दोषोँ का निकालना, (अव्यय) पुनि वा एव आदि का प्रयोग (विकल्प) गुरु को लघु और लघु को गुरु मानना इत्यादिकोँ का (अमल) शुद्ध विचार अपनी२ बुद्धि के अनुसार लोग करते है परन्तु दोहोँ का अर्थ अपार है॥८८॥

बिसिश्टा-ऽऽय-ऽलङ्कार महँ सङ्केता-ऽऽदि सु-रीति ।
कहे बहुरि आगे कहब समुझब सु-मति बिनीति॥८९॥

अलङ्कारोँ के बीच मेँ (विशिष्ट) विशेष विलक्षण (सङ्केताऽऽदि) कूटरचना आदि की सुन्दर रीति है उस को कहा है और आगे कहँगे उन को सुशिचित नम्र और बुद्धिमान लोग समझेँगे ॥ ८९ ॥

कोस अलङ्कित सन्धि-गति मैत्री बरन बिचार।
हरन भरन सु-बिभक्ति बल कबिहिँ अरथ निरधार॥ ९० ॥

(कोश) शब्द के अर्थ और लिङ्ग को बतानेवाले ग्रन्थ का ज्ञान, (अलङ्कार) शब्दोँ और अर्थोँ का भूषण, अक्षरोँ और शब्दोँ का परस्पर मिलना, (बरन मैत्री) कौन २ अक्षर आपस मेँ सवर्ण हैँ, विभक्ति के चिन्होँ के लोप और प्रगट रहने अथवा किसी शब्द मेँ से किसी अक्षर को निकाल लेने और किसी के बीच दूसरा वर्ण बैठा देने आदि के बल और अबल का ज्ञान जिस कवि को होता है वही दोहोँ के अर्थ का निश्चय कर सकता है ॥९०॥

देस काल करता करम बुधि बिद्या-गति हीन।
ते सुर-तरु-तर दारदी सुर-सरि-तीर मलीन॥ ९१॥

देश अर्थात् स्थान काल समय कर्त्ता कर्म्म बुद्धि विद्या आदि विषयोँ के बोध से रहित मनुष्य इस काव्यरूपी कल्पवृक्ष के तले आकर भी (दारदी) दुखी हैँ और गङ्गा जी के तीर पर भी रह कें मलीन हैँ। इस ग्रन्थ को न समझने के कारण उन को कुछ लाभ नहीँ है॥ ९१॥

देस काल गति हीन जे करता करम न ज्ञान।
तेऽपि अरथ-मग पग धरहिँ तुलसी स्वान-समान॥९२॥

जिन को स्थान समय का बोध और कर्ता कर्म का ज्ञान नहीँ है वे यदि काव्य के अर्थ कहने मेँ लगेँ तो तुलसी कहते हैँ कि वे निश्चय कुत्ते के समान हैँ विना सोच विचार भूकते हैँ॥ ९२॥

अधिकारी सब ओसरी भलो जानिबो मन्द।
सुधा-सदन बसु बारहेँ चौथे अथवा चन्द॥ ९३॥

भले अच्छे२ अधिकारी भी सब अपनी२ ओसरी अर्थात् अवसर वा पारी पर भले और (मन्द) खराब हो जाते हैँ। इस संसार मेँ भले अवसर पर मित्र भी भले होते और बुरे पर बुरे हो जाते हैँ। इस मेँ दृष्टान्त देते है कि चन्द्रमा यद्यपि (सुधा सदन) अमृत का घर है तो भी वसु आठवेँ (८) स्थान पर बारहवेँ और चौथे स्थान अर्थात् राशि पर मन्द (खराब) फल देता है।

और (मन्द) शनैश्वर बुरा ग्रह हो कर भी पाँचवें आदि स्थान पर शुभदायी होता है। ९२ के दोहे में अर्थ न जानने वालों की निन्दा कर यहाँ दिखलाया कि वे अधिकारी हो सकते हैं॥ ९३॥

नर बर नभ-सर बर सलिल बन-ज बिनै बिज्ञान।
सु-मति सुक्तिका सारदा स्वाती कहहिँ सुजान॥ ९४॥

(नर) मनुष्यों में (बर) श्रेष्ठ जो मनुष्य सोई (नभ) आकाश में (सर बर) सुन्दर पोखरा है उस के (सलिल) जल में (बन-ज) कमल रूपी बिनय नम्रता और विशेष ज्ञान है और अच्छी बुद्धि ही सीप है। सो यह कविता बुद्धि सरस्वती रूपी स्वाती नक्षत्र पा कर उत्पन्न होती है ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं। मोतीरूपी कविता नररूपी सर से उत्पन्न होती है। इस में रूपक अलङ्कार स्पष्ट है॥ ९४॥

सम दम समता दीनता दान दया-ऽऽदिक रीत।
दोख दुरत हर दरद दर उर बर बिमल बिनीत॥ ९५॥

(सम) इन्द्रिय मन अहङ्कार आदि का त्याग, (दम) बाह्य विषय रूप रस गन्ध आदि से नेत्र जीभ नाक आदि इन्द्रियों को अपने वश में रखना, (समता) सब जीवों में ईश्वर व्याप्त है जान के सम बुद्धि रखना, (दीनता) अपने को नीचा समझ गुरु आदि से दीन रहना, देना, दया करना, आदि व्यवहारों से जिन, (दोख दुरत) जीवों के ईश्वर विमुख रहना आदि अवगुन दूर होते हैं और (दरद) दुःख

तथा (दर) डर का (हर) हरण नाश हो कर के (उर) अन्तःकरण निर्मल और (बिनीत) नम्र होते, वे साधु हैं और उन पर ईश्वर-रूप राम की शीघ्र दया होती है। जहाँ "दोख दुरित" पाठ हो वहाँ दोष और पाप को हर पीड़ा को (दर) दर डालता चूर्ण कर नाश करता, ऐसा अर्थ करना चाहिये ॥ ९५ ॥

धरम-धुरीन सु-धीर-धर धारन बर पर-पीर।
धरा धरा-धर सम अचल बचन न बिचल सु-थीर॥९६॥

अन्वय। धरम-धुरीन, सु-धीर-धर, पर-पीर धारन वर, धरा, धरा-धर सम अचल, सु-थीर बचन न बिचल।

धर्म के भार को धारण करने में श्रेष्ठ बड़े धर्म्मी, बड़े धैर्य्यमान, दूसरे के दुख को उठा लेनेवालों में बड़े, (धरा) पृथ्वी पर (धरा-धर) पर्वत के समान अचल, जिस की स्थिर बात कभी विचल मिथ्या नहीं होती ऐसे ऐसे जन भक्ति के योग्य होते हैं ॥ ९६ ॥

चौतिस के प्रस्तार में अरथ भेद परमान।
करहु सु-जन तुलसी कहत या बिधि तें पहिचान॥९७॥

३४ चौतिश अक्षर (क से ले कर क्ष तक) के भीतर सब अर्थों का भेद वर्णन किया है। तुलसी दास कहते हैं कि सज्जन विद्वान साधु जन! आप इस रीति अङ्क के द्वारा इस भेद को जानिये। यहाँ व्यञ्जन वर्ण लिया है और छन्द में प्रस्तार होता है उस के भेद से छन्द बनते हैं ॥ ९७ ॥

बेद बिखम क-बरण सु-तर सतर राम की रीति।
तुलसी भरत न भरि हरत भूलि हरहु जनि प्रीति ॥ ९८ ॥

(क बरण बेद) क-वर्ग का चौथा अक्षर घ और (बिखम) सङ्ख्या तीन उस का अन्तिम न ले कर दोनों को मिलाने से घन हुआ। घन मेघ संसार में जल को भरता है और फिर उस जल को नहीं हरण करता वैसे ही मेघवत् श्याम वर्ण श्रीराम की मेघ से भी (सुतर) सुन्दर और (स-तर) शीघ्र रीत है कि भक्तों को सब देते हैं और फेर नहीं लेते इस हेतु भूल कर भी राम के चरण से अपनी प्रीति को न (हरहु) घटाओ। जहाँ "सु-तरु" पाठ हो वहाँ उत्तम वृक्ष अर्थात् कल्प वृक्ष के समान उदार अर्थ करना चाहिये ॥ ९८ ॥

बन तेँ गुन कहि जानिये ता तेँ दिग दिग तीन।
तुलसी यह जिय समुझि करि जग जित सन्त प्रबीन ॥ ९९ ॥

बन शब्द के-न और (तीन गुन) सत्व, रज, तम तीनों गुणों में रज का र और तम का म लेकर तीनों को उलटा पढ़िये तो मरन हुआ। प्रथम दिग नाम दश और दूसरे दिग नाम दिश हुई। १० दिशा में मरन जान कर और इस मरन को मन में अवश्य होनेवाला समझ कर बुद्धिमान साधु जन संसार को जीतते हैं अर्थात् विषय भोगादि संसारी कामों में इच्छा हीन

हो कर ईश्वर के भजन में लगते हैं जिस के कारण संसार से तर जाते हैं। जहाँ "सा-तें गुन कहि जानिये ता-तें दिग द्वि द तीन" पाठ हो वहाँ स-कार से तीसरा अक्षर म और त-कार से (द्वि दिग) १२ वाँ अक्षर र, फिर (दतीन) द-कार का तीसरा अक्षर न लेना और योग करना तो मरन बना ऐसा अर्थ करना चाहिये॥ ९९॥

चन्द्र अनल नहिँ है कहूँ झूठो बिना बिवेक।
तुलसी ते नर समुझिहैं जिनहिँ ग्यान रस एक॥१००॥

(चन्द्र) चन्द्रमा से आकार छोड़ केवल म लिया और (अनल) अग्नि नाम वैश्वानर के नर को उलटा तो रन बना फिर तीनों अक्षरों को मिलाने से मरन हुआ। इस ब्रह्मरूप अविनाशी जीव का (कहूँ) तीनों काल में मरन नाश नहीं है केवल शरीर ही का नाश होता है यह कर्म भोगी प्राण एक आकार को छोड़ कर दूसरे में जाता है परन्तु (बिना बिवेक) जिन्हें ज्ञान नहीं है वे झूठ ही मरन मानते हैं। इस सिद्धान्त को वेही समझेंगे जिन को एक तत्त्व ज्ञान है॥

दूसरा अर्थ। चन्द्र चन्द्रमा में (कहूँ) कभी अनल अग्नि नहीं है (अर्थात् चन्द्रस्वरूप इस सतसई ग्रन्थ में अग्निरूप कोई भी दोष नहीं है) बिना ज्ञान के वियोगी लोग चन्द्र में भी अग्नि का आरोप करते हैं वैसे ही सतसई को जानना चाहिये अथवा चन्द्र सुख देनेहारे और अग्नि दुःखद कोई नहीं हैं केवल अज्ञान से दुख सुख

होता है। इस को वेही लोग समझेंगे जिन्हे (गुरु का दिया एक ज्ञान रस है)॥ १००॥

सत-सैया तुलसी सतर तम हर पर पद देत।
तुरित अविद्या जन दुरित बर तुल सम करि लेत॥ १०१॥

॥ इति श्रीगोस्वामितुलसीदासविरचितसप्तसतिकायां साङ्केत-वक्रोक्तिरसवर्णनन्नाम तृतीयः सर्गः॥०॥

यह सतसई ग्रन्थ (सतर) शीघ्र (तम) अज्ञान को (हर) नाश कर के (पर पद) परब्रह्मरूप राम को देती है तुरन्त अज्ञानरूप पाप को नाश कर के (जन) भक्त जनों को बर श्रेष्ठ श्री साधु जन के तुल्य समान कर देती है॥ १०१॥

॥०॥ इति विहारिकृतसंक्षिप्तटीकायां तृतीयः सर्गः॥०॥

अथ चतुर्थ सर्ग।

चौदह चारि अठारहो पढ़े सुने का होइ।
तुलसी अपने राम कहँ जौँ लगि लखे न कोइ॥ १॥

अन्वय। कोइ जौ लगि अपने राम कहँ न लखै (तब लगि) चौदह चारि अठारहो पढ़े सुने का होइ।

तुलसी दास कहते हैँ कि कोई जब तक अपने राम को अर्थात् अपने स्वामी श्रीरामचन्द्र को अथवा (अपने) आप को और (राम) अर्थात् परमेश्वर को न लखे तब तक चौदहो विद्या चारो उप-वेद और अठारहो उप-पुराण पढ़ने सुनने से क्या होता है अर्थात् कुछ लाभ नहीँ होता। ऋक् यजु साम और अथर्वण चारो वेद, शिक्षा कल्प व्याकरण छन्द निरुक्त और ज्योतिष छ वेदाङ्ग, मीमांसा और न्यायशास्त्र पुराण और धर्मशास्त्र ये चौदह विद्या है। चौदह विद्या मेँ आठारहो पुराण और चारो वेद भी आ गये तो फिर चार और अठारह शब्द दोहे मेँ व्यर्थ पड़े इस कारण किसी २ टीका मेँ जो "चौदह विद्या चार वेद और अठारह पुराण" अर्थ किया गया है सो असङ्गत जान पड़ता है इस कारण "चार" शब्द से आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ब्ववेद और स्थापत्यवेद (कल की विद्या) इन चारो उप-वेद्दाँ को लेना चाहिये और "अठारह" शब्द से

(१) आदि पुराण (२) नरसिंह (३) स्कन्द (४) शिवधर्म्म (५) आश्चर्य्य (६) नारद (७) कपिल (८) वामन (९) वरुण (१०) शाम्ब (११) सौर (१२) पराशर (१३) भार्गव (१४) मारीच (१५) कालिका (१६) देवी (१७) महेश्वर (१८) पद्म इन १८ उप-पुराणोँ को लेना चाहिये। चौदह विद्या के विषय में श्लोक और एक दोहे में अठारहो पुराणोँ के नाम।

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
पुराणं धर्म्मशास्त्रञ्च एता विद्याश्चतुर्द्दश॥
वेद वकार ब्रकार द्व दो मकार दो भकार।
प ना अ कु स्क ग लिङ्ग ये अष्टादश विस्तार॥

४ व अर्थात् विष्णु, वराह, वामन और वायु ३ ब्र अर्थात् ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त्त और ब्रह्माण्ड २ म. अ० मार्कण्डेय और मत्स्य २ भ. भागवत और भविष्यत् प. पद्म ना. नारद अ. अग्नि कु. कुर्म्म स्क. स्कन्द ग. गारुड़ और लिङ्ग पुराण ये १८ पुराण हैं॥ १॥

तन सुखाइ पञ्जर करै धरै रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटै न बासना बिना बिचारे ग्यान॥ २॥

अन्वय। तन सुखाइ पञ्जर करै रैन दिन ध्यान धरै तुलसी बिना ग्यान विचारे बासना न मिटै॥

शरीर को सुखा कर (तप करते २ पञ्जर करै) हड्डियोँ की ठटरी बना डाले और रात दिन ध्यान ही में मगन रहे तौ भी (बिना ज्ञान

बिचारे) ज्ञान का बिचार करने के बिना बासना अर्थात् संसारिक सुख की इच्छा नहीँ मिटती ॥ २ ॥

कल्प-वृक्ष को चित्र लिखि कीन्हेँ विनय हजार।
वित्त न पावै ताहि सोँ तुलसी देखु बिचार ॥ ३ ॥

तुलसी-दास अपने मन अथवा किसी भक्त से कहते हैं कि (जैसे) कल्प वृक्ष का चित्र लिख कर कोई हज़ारोँ प्रार्थना करे कि मुझे धन मिले परन्तु (ताहि सोँ वित्त न पावै) उस से धन नहीँ मिलता यह बात बिचार कर देखो। अभिप्राय यह कि मुक्ति के मुख्य कारण ज्ञान वा भक्ति के बिना वेदादि अध्ययन चित्र के समान हैं ॥
॥ ३ ॥

बैठि निसाऽऽगम निलै मँहँ करै दीप की बात।
तुलसी देखु बिचार उर नहिँ तम नेकु नसात ॥४॥

(निसाऽऽगम निलै मँहँ बैठि दीप की बात करै) दूसरा दृष्टान्त देते हैं कि रात आने पर कोठरी मेँ बैठ के दीये की चर्चा करे परन्तु (तम नेकु नहिँ नसात) अन्धकार कुछ भी नहीँ दूर होता है उसी प्रकार तुलसी-दास कहते हैं कि हृदय मेँ बिचार कर देखना चाहिये कि शास्त्ररूपी दीपक की केवल चर्चा करने से मोहरूपी अन्धकार (ज्ञान रूपी दीपक के हृदय मेँ बलने के विना) दूर नहीँ हो सक्ता ॥ ४ ॥

ग्रिह सुन्दरि पुनि निकट कवि आँगन अंमृत मूरि।
ते अति लघु तेँ लघु रह बिनु समझे अति दूरि ॥५॥

प्रथम ज्ञान पक्ष का अर्थ।

(गेह) अर्थात् मनुष्य को शरीररूपी घर मिला है और उस में (सुन्दरि) सुन्दर भक्ति भी है (पुनि कबि निकट) और पण्डितरूपी जीव आत्मा भी उसी के समीप है (आँगन अमृत मूरि) और अँगना रूपी हृदय में अमृत की जड़ ज्ञान भी है परन्तु (बिनु समझे) बिना भली भाँति समझे (ते अति लघु तें लघु) वे अज्ञानी लोग बहुत छोटे से भी छोटे और (अति दूरि रहैं) अत्यन्त दूरस्थित रह जाते हैं॥

द्वितीय लौकिक पक्ष का अर्थ।

किसी मूर्ख मनुष्य के घर में परम सुन्दरी स्त्री है और उस के समीप में ज्ञानी कबि भी रहता है और घर के अँगने में सब पदार्थों का देनेहारा कल्प वृक्ष का अङ्कुर भी है परन्तु वह गँवार इन के गुण को नहीं समझता इसी से वे इसे अति छोटे और दूर जान पड़ते हैं। अभिप्राय यह है कि परमेश्वर ने इस मनुष्य को ज्ञान बुद्धि सब कुछ दिया परन्तु यह उन को नहीं समझता इस लिये वे पूर्णफलदाई नहीं होते अथवा कोई सब वेद पुराण शास्त्र को उलटा करे परन्तु यदि उस वेद पुराण के उलटने पुलटने का फल ज्ञान भक्ति न हुई तो सब निरर्थक है॥ ५॥

यह तन अनुपम अयन बर उपमा रहित सु-चैन।
समुझ रहित रटि पचि मरै करत सकल अध्यैन॥६॥

(यह बर अनुपम तन उपमा रहित सुचैन अयन) यह श्रेष्ठ

उपमा हीन जिस की देवता भी इच्छा करते हैं ऐसा मनुष्य का शरीर अनुपम परमानन्द का घर है परन्तु (समुझ रहित सकल अध्येन करत रटि पचि मरै) ज्ञान हीन होने के कारण सब विद्याओं को पढ़ कर रटता २ पच कर मर जाता है। अभिप्राय यह कि जीव उपमा रहित मनुष्य देह पा कर भी ज्ञान और भक्ति के बिना पढ़ते २ मर भी जाता है परन्तु मुक्ति नहीं पाता ॥ ६॥

रसना-सुत पहिचान बिनु कहहु न कवन भुलान।
जाने कोउ हरि-गुरु-क्रिपा उदित भये रबि-ग्यान॥७॥

ऊपर कई दोहों के द्वारा जीव के पास सब मुक्ति की सामग्री का रहना और वेदादि विद्याओं का पढ़ना आदि दिखला कर अब उन उपायों के निष्फलता का कारण कहते हैं।

(कहहु रसना सुत पहिचान बिनु कवन न भुलान) कहो (रसना सुत अर्थात् जीभ से उत्पन्न) शब्द (शब्द ब्रह्म) को बिना पहचाने कौन मनुष्य नहीं भ्रम में पड़ता है ? अर्थात् सब ही भ्रम में पड़े हैं (रबि-ज्ञान उदित भये हरि गुरु क्रपा कोउ जाने) सूर्यरूपी ज्ञान के हृदय में प्रकाशित होने से कोई कोई परमेश्वररूपी गुरु की दया से जानते हैं अर्थात् संसाररूपी भ्रम में नहीं पड़ते हैं॥ अभिप्राय यह कि शब्द को सब ही लोग सुनते हैं परन्तु उस के मुख्य आशय को बिना जाने अज्ञान वा संसाररूपी भ्रम में पड़े रहते हैं जब कोई परमेश्वररूपी गुरु मिल कर सूर्य्यरूपी ज्ञान का उपदेश करता है तब भ्रमरूपी अन्धकार दूर होजाता है। ऊपर के कई एक दोहों में दृष्टान्त और रूपक अलङ्कार हैं॥ ७॥

त्रि-बिध भाँति को सब्द बर बिघट न लट परमान।
कारण अबिरल अल अपि तु तुलसी अबिद भुलान ॥ ८ ॥

अन्वय। बर शब्द त्रि-बिध भाँति को, लट परमान, विघट न अपि तु अविरल अल कारण तुलसी अबिद भुलान।

श्रेष्ठ वह रसनासुत शब्द तीन प्रकार का है (जो २१वें दोहे में श्रवणात्मक आदि कहा है) और यह शब्द (बिघट न) कभी घटता नहीं (लट) सदा वर्तमान है कारणरूप है अथवा (लट परमान बिघट न) अर्थात् जैसे टूटे और समचे दोनों प्रकार के केश एक में बुझ कर लट पड़ जाता है और फिर छूटता नहीं उसी प्रकार विधि-निषेध-मय वाणी का अलगाना कठिन है और कारण वा बीज स्वरूप है और (अविरल) अखण्ड (अपि तु) और निश्चय कर (अल) सब सामर्थ्य युक्त है। तुलसी दास कहते हैं कि (अबिद) जो लोग इस शब्द के रूप को ठीक२ नहीं जानते हैं वे ही (भुलान) इस संसार की जाल में भूले हुये हैं। जो शब्द ब्रह्म को जान चुका है वह मुक्त हो सकता है। जहाँ "अल पियत तुलसी अविध भुलान" पाठ हो वहाँ विधि निषेधमय दोनों प्रकार के शब्दों को (पियत) सुनते हुये मनुष्यलोग "अविध" निषेध वाणी में भूल गये हैं अर्थात् जिस को निषेध समझना चाहिये उसे विधि और जिसे विधि समझना चाहिये उसे निषेध समझ लिये हैं ऐसा अर्थ करना चाहिये। यह पाठ उत्तम है ॥ ८ ॥

द्रिग-भ्रम जा बिधि होत है कौन भुलावत ताहि ।
जानि परत गुरु-ग्यान तेँ सब जग सन्सय माँहिँ ॥ ६ ॥

(जा बिधि तेँ द्रिग भ्रम होत है सब जग सन्सय माँहिँ जानि परत ताहि कौन भुलावत) जिस प्रकार किसी को दिशा भ्रम हो जाता है और सब संसार संशय मय देख पड़ता है तो उसे कौन भुलाता है अर्थात् कोई नहीँ भुलाता केवल उस की बुद्धि में ऐसा भ्रम पड़ जाता है कि उसे यह नहीं जान पड़ता कि किधर कौन दिशा है । परन्तु (गुरु ग्यान तेँ जानि परत) कोई श्रेष्ठ मनुष्य वा उस का गुरुजन उसे बताता है कि अमुक दिशा इस ओर है तब उसे जान पड़ता है । वैसी ही दशा इस जीव की है जो आप से आप ऐसे भ्रम में पड़ा हुआ है कि बिना गुरु के उपदेश छूटना कठिन है । अभिप्राय यह कि जैसे कोई भूल से पश्चिम चला जाता है और जानता है कि मैं पूर्व जा रहा हूँ । बीच में किसी बुद्धिमान ने उसे बता दिया कि पूर्व इधर है तब उस के कहने पर वह पूर्व को चला, वैसे ही बिना गुरु के लोग विषय सुख में भूले हैं ॥ ६ ॥

कारण चार बिचार बर बरन न अपर न आन ।
सदा सोउ गुन-दोख-मय लखि न परत बिनु ग्यान॥१०॥

६वेँ दोहे में दिशा भ्रम में पड़े मनुष्य के समान जीवोँ का विधि निषेध-मय वाणी में भूलना दिखा कर अब भूलने का कारण बताते हैं ।

अन्वय। चार कारण आन न, बरन बर कारन न, (किन्तु) न चार विचार, सोउ सदा गुन-दोख-मय बिनु ग्यान न लखि पड़त।

(चार कारण आन न) दिशा भ्रम होने के चारो दिशा कारण हैं और कुछ नहीं उसी प्रकार (बरन बर कारण न) उत्तम बाणी अर्थात् शास्त्र आदि इस जीव के भ्रम होने के कारण नहीं हैं परन्तु चार अर्थात् चारु विचार सुन्दर विचार का न होना कारण है क्योंकि वह भी विचार सदा सर्व्वदा (गुन-दोख-मय) भला बुरा दो प्रकार का है और बिना उत्तम ज्ञान के नहीं जाना जाता॥

द्वितीय अर्थ (चार बर बिचार न अपर चार बरन बिचार कारण, आन न) चारो श्रेष्ठ दिशाओं का बिचार न होना और चार बरन अर्थात् ब्राह्मण चत्रिय आदि अथवा चारु सुन्दर बरण अचर शास्त्र आदि भ्रम होने के कारण हैं और दूसरा नहीं क्योंकि शास्त्र बिधि निषेध के भेद से सदा गुण दोष युक्त हैं और बिना ज्ञान के जाने नहीं जाते॥

अथवा-ब्राह्मण अपने कर्म को न जान कर अपने जाति के अभिमान से तरना चाहे चत्रिय समझे कि मैं राजा हूँ दूसरे का शासन करता हूँ मेरे लिये भजन नहीं है, वैश्य अपने धन के मद में रहे शूद्र अपना कर्म छोड़ दूसरा कर्म करे तो ये चारो अपने २ भ्रम में पड़े कहे जा सकते हैं॥ १०॥

यह करतब सब ताहि को जेहि तें वह परमान।
तुलसी मरम न पाइहैं बिनु सद-गुरु-बर-दान॥११॥

यह सब भ्रम होना उसी (रामरूप परमेश्वर) का करतब है जिस

से वह अर्थात् वेदादिक प्रमाणिक समझा जाता है तुलसी-दास कहते है (बिनु सद्-गुरु-बर-दान मरम न पाइहैं) कि बिना अच्छे गुरु के वरदान रूपी उपदेश के जीव के इस का भेद नहीँ मिलेगा। अभिप्राय यह कि जीव को अपने कर्तव्य मेँ भ्रम हुआ इसी से वह संसार की जाल मेँ बन्धा है सद्गुरु मिलेँ ते छूट जाय ॥ ११ ॥

द्रिग-भ्रम-कारन चारि ते जानहिँ सन्त सुजान।
ते कैसे लखि पाइहैँ जे वहि बिबस भुलान ॥ १२ ॥

(सुजान सन्त ते चारि द्रिग-भ्रम-कारण जानत) ज्ञानी सज्जन लोग उन दिशा-भ्रम वा ज्ञान-भ्रम के चार अर्थात् चारो दिशा अथवा चारो वर्णोँ के अभिमानी हो कर अपने कर्म से हीन होने के कारणोँ वा चारो वेदरूपी कारणोँ को जानते हैँ। (जे वहि बिबस भुलान ते कैसे लखि पाइहैँ) परन्तु जो संसारी लोग उन्ही चारो मेँ बेबस हो कर भ्रम मेँ पड़े हैँ वे (बिना गुरु के) कैसे जान सकेँगे ॥ १२ ॥

सुख-दुख-कारन सो भयेउ रसना को सुत बीर।
तुलसी सो तब लखि परइ करेँ क्रिपा बर धीर ॥१३॥

(बीर सो रसना को सुत सुख-दुख-कारण भयो) प्रबल वही बाणी सुख और दुख का कारण हुई तुलसी दास कहते हैँ कि (बर धीर) बड़े श्रेष्ठ धैर्य्यवान सन्त लोग जो दया करेँ तब वह जान पड़ेगी। अभिप्राय यह कि विधि-निषेध वाक्य-जाल मेँ पड़ा हुआ जी तब वही छूट सकता है जब साधु-लोग वा सब के स्वामी रामचन्द्र इस पर दया करेँ ॥ १३ ॥

अपने खोदे कूप महँ गिरे जथा दुख होइ।
तुलसी सुख-द समुझि हिये रचत जगत सब कोइ॥१४॥

११वें दोहे में वेद के कर्ता ही को बाणी में भ्रम कराने का कारण कहा था सो अब "अपने खोदे" आदि से उस का खण्डन इस हेतु करते हैं कि ईश्वर दोषी नहीं हो सकता ॥

(तुलसी सब कोइ हिये सुखद समुझि कूप रचत) तुलसी कहते हैं कि संसार में सब लोग अपने मन में सुख देनेहारा जान कर कूआँ खोदते हैं परन्तु (जथा) जैसे अपने खोदे हुये कूप में गिरने से दुःख होता है वैसी ही दशा इस जीव की है कि अपने ही किये कर्म में फस-कर दुख सुख पाता है ॥ १४ ॥

ता बिधि तें अपनो बिभव दुख-द सुख-द करतार।
तुलसी कोउ कोउ सन्तबर कीन्हे बिरचि बिचार॥१५॥

(ता बिधि तें अपनो बिभव बिरचि दुख कीन्हो) उसी प्रकार से अपने ऐश्वर्य्य को बढ़ा कर दुख किया।(तुलसी कोउ २ सन्तबर बिचार बिरचि सुख करतार कीन्हे) परन्तु तुलसी दास कहते हैं कि कोई २ साधु-जन उत्तम विचार कर के अपने उस ऐश्वर्य्य को सुख का करनेहारा वा देनेहारा बनाते हैं । अभिप्राय यह कि जीव अपने किये हुये कूपरूपी कर्म वा बाणी में गिर कर दुख भोग रहा है जो कोई साधुओं के उपदेश और सङ्गति से उत्तम बिचार पूर्व्वक कर्म करता वा विधिमय वाणी के अनुसार चलता है वह सुख पाता है । जहाँ

"दुख सुख दे करतार" पाठ हो वहाँ अपने बिभव में भूल कर लोग जैसा कर्म्म करते हैं वैसाही (करतार) ईश्वर (दुख सुख-दे) उन्ह दुख और सुख देता है ऐसा अर्थ करना अच्छा होगा ॥ १५ ॥

रसना ही के सुत उपर करत निरन्तर प्रीति ।
तेहि पाछे सब जग लगेउ समुझ न रीति अरीति ॥१६॥

सर्व्वदा लोग (रसना ही के सुत उपर) वेद शास्त्र आदि बाणी में प्रेम करते हैं (तेहि पाछे सब जग लगेउ) और विचार करते२ उन्ही के पीछे सब संसार लगा है परन्तु (रीति अरीति) किस कर्म करने की विधि और किस का निषेध है इसको नहीँ समझा । अभिप्राय यह कि शास्त्र के विचार से जब ठीक २ कर्म का ज्ञान हो तो सुख हो सकता है परन्तु ठीक२ ज्ञान होना कठिन है । जहाँ "करत करन तर प्रीति" पाठ हो वहाँ कान से अत्यन्त प्रेम करते हैं ऐसा अर्थ कहना चाहिये ॥ १६ ॥

माया मन तेँ ईस भनि ब्रह्मा बिस्न महेस ।
सुर देवी औ ब्रह्म लौँ रसना-सुत उपदेस ॥१७॥

(माया-ईस ब्रह्म तेँ ब्रह्मा बिस्नु महेस औ देवी सुर मन लौँ रसना सुत उपदेस भनि) ।

माया के स्वामी परमेश्वर से ले कर ब्रह्मा विष्णु शिव देवी देव और जीव तक वाणी के पुत्र अर्थात् शब्द के उपदेश को कहते हैं अर्थात् शब्द के द्वारा सब लोग उपदेश देते हैं । अभिप्राय यह

कि वेद धर्मशास्त्र पुराण आदि सब शब्दमय है और देव ऋषि आदि के उपदेश से भरे हैं।

द्वितीय अर्थ। माया मन ईश्वर आदि सब (रसना-सुत उपदेश भनि) बाणी के द्वारा वर्णन किये जाते हैं जहाँ "माया मन जिव ईस भनि" पाठ हो वहाँ जीव ईश अर्थात् ब्रह्म का अंश है परन्तु मन माया उस का मन माया के अधीन हुआ इसी दोष से जीव भूला ऐसा ब्रह्मा विष्णु महेश देव देवी सब वेदादि में (भनि) वर्णन करते हैं ऐसा अर्थ करना। यह अर्थ और पाठ पहले से उत्तम है ॥ १७ ॥

बरन धार बारिध अगम को गम करइ अपार।
जन तुलसी सत-सङ्ग-बल पाये बिसद बिचार ॥ १८॥

अक्षररूपी समुद्र (अगम) अमेय अर्थात् अथाह और (अपार) अनन्त है (को गम करइ) इस का पार कौन पा सकता है? (तुलसी जन) सीता राम लक्ष्मन के भक्त लोग (सत-सङ्ग बल) सज्जनों की सङ्गति के बल से (बिसद बिचार पाये) निर्मल विवेक पा कर (गम करइ) पार पाते हैं ॥ १८ ॥

गहि सु-बेल बिरलइ समुझि बहि गे अपर हजार।
कोटिन बूड़े खबर नहिँ तुलसी कहहिँ बिचार ॥ १९ ॥

(बिरलइ समुझि सु-बेल गहि) बहुत थोड़े लोग इस बाणीरूपी समुद्र को समझ कर इस का पार पाये हैं अथवा (समुझि सु-बेल गहि)

ज्ञानरूपी सुन्दर समुद्र के तट पर पहुंचे हैं। (अपर हजार बहि गे) परन्तु और दूसरे हज़ारों लोग जिन्हों ने शब्द समुद्र को नहीं समझा। वे बह गये (तुलसी बिचार किये खबर नहिं कोटिन बूड़े) तुलसी दास ने विचार किया है कि कड़ारों मनुष्य विचार करते२ इस शब्दरूपी समुद्र में डूब कर मर गये पता न लगा अभिप्राय यह कि ज्ञानप्राप्ति, क्रियाकलाप, जपतप करते२ बहुतेरे मर बिलाये, पर न तरे। परन्तु भक्तिरूपी दृढ़-नाव की आश्रा जिन्हों ने की, वे शीघ्रही बन्धन से छूट गये इस से रामभक्ति करना-ही तरने का सहज उपाय है ॥ १९ ॥

स्रवन सुनत देखत नयन तुलत न बिबिध बिरोध।
कहहु केहि केहि मानिये केहि बिधि करिय प्रबोध॥
॥ २० ॥

(स्रवन सुनत) कान सुनता है वा कान के द्वारा लोग सुनते हैं (नयन देखत) आँख देखती है वा आँख के द्वारा लोग देखते हैं आँख के द्वारा सुन नहीं सकते और कान के द्वारा देख नहीं सकते (तुलत न बिबिध बिरोध) इन दोनों इन्द्रियों में जो अनेक प्रकार का बिरोध है सो मिटता नहीं कहो किस को२ मानें कान को वा आँख को और (केहि बिधि प्रबोध करिय) किस प्रकार धीरज धरें वा ज्ञान पावें। अभिप्राय यह कि सुनते हैं कि सर्व्वव्यापी परमात्मा एक है और देखते हैं कि सब का आत्मा अपनी२ शरीर में अलग अपने साथ है तो इन दोनों में से किसे मानें ॥

द्वितीयार्थ। श्रवण शब्द से श्रुति अर्थात् वेद लेना वेद में यह सुनने में आता है कि यह आत्मा ब्रह्म रूप है। नेत्र से अनेक बिरोध देख पड़ता है अर्थात् अग्नि जल का विरोधी है, सिंह हाथी का विरोधी है। बिल्ली मूसे की विरोधिनी और सर्प नकुल इत्यादि जीवों में और देव दैत्य आदि देवयोनियों में भी विरोध देख पड़ता है। कहिये किसको मानें ? और क्यों कर बोध हो ॥ २० ॥

स्रवना-ऽऽत्मकध्वन्या-ऽऽत्मक बरना-ऽऽत्मक बिधि तीन।
त्रि-बिध सबद अनुभव अगम तुलसी कहहिँ प्रबीन॥२१

(तुलसी प्रबीन तीन बिधि सबद कहहिँ) तुलसी दास अथवा सीता-राम लक्ष्मण के भक्त कवि लोग तीन प्रकार के शब्द कहते हैं, अर्थात् एक जो स्पष्ट सार्थक सुन पड़े, दूसरा ध्वन्यात्मक अर्थात् जो अस्पष्ट मृदङ्गादि के शब्द के समान हो और तीसरा अकारादि अक्षरों से बना वर्णात्मक। इन तीनों प्रकार के शब्दों का (अनुभव अगम) ज्ञान होना बहुत कठिन है ॥ २१ ॥

कहत सुनत आदिहिँ बरन देखत बरन-बिहीन।
द्रिस्यमान चर-अचर-गण एकहिँ एक न लीन॥ २२॥

अन्वय। कहत सुनत आदिहिँ बरन, देखत बरन बिहीन, दृश्यमान चर अचर गन एकहिँ, एक लीन न। कहने सुनने में सब के प्रथम कारण अर्थात् ब्रह्मा अपनी देवजाति वा ब्रह्मा के रूप में हैं। परन्तु (देखत) देखने में वा उन के और चरितों को विचारने

में (बरन-बिहीन) गुणहीन देख पड़ते हैं। बिष्णु और शिव की शक्ति से अल्पशक्ति हो कर कई बार भ्रम और मोह में पड़े हैं। अथवा (आदिहिँ कहत सुनत बरन, देखत बरन बिहीन) आदि ब्रह्म कहने वा वर्णन करने में और सुनने अर्थात् गुणानुवाद के सुनने में (बरन) रूप वा रङ्ग युक्त है अर्थात् सगुन है परन्तु देखने से वा विचारने से रूप रङ्ग रहित अर्थात् निर्गुण है। संसार में जो चर अचर दो प्रकार के जीव देख पड़ते हैं सो सब भी (एकहिँ एक न लीन) आपस में विरोधी प्रत्यक्ष है ॥ २२ ॥

पाँच भेद चर-गन बिपुल तुलसी कहहिँ बिचार।
नर पसु स्वेदज खग क्रिमी बुध जन मत निरधार॥२३॥

(तुलसी बिचार बिपुल चरगन, नर, पसु, स्वेदज, खग, क्रमी पाँच भेद कहहिँ बुध जन मत निरधार)।

तुलसीदास विचार कर सम्पूर्ण (चर) चलनेवाले जीवों में मनुष्य, पशु सिंह आदि, स्वेदज अर्थात् चीलर आदि पसीने से उत्पन्न होनेवाले, पक्षी, और कीड़े मकोड़े पाँच भेद कहते हैं जिन को पण्डित लोग अपने मत से जानेंगे ॥ २३ ॥

अति बिरोध तिन महँ प्रबल प्रगट परत पहिचान।
अस्थावर गति अपर नहीँ तुलसी कहहिँ प्रमान॥२४॥

(तिन महँ अति प्रबल विरोध प्रगट पहिचान परत) उन सब चर जीवों में बड़ा बलवान विरोध प्रगट देख पड़ता है अर्थात् मनुष्य

मृगादि पशुओं को मारते व्याघ्रादि पशु मनुष्यों को मारते और गिद्धादि पक्षी कीड़े मकोड़े आदि को खाते दिखाई पड़ते हैं। (स्थावर गति अपर नहीं) अचर अर्थात् वृक्षादि की भी दूसरी गति नहीं देख पड़ती अर्थात् बड़े वृक्षों का छोटे वृक्षों को दबाना आदि बिरोध इन में भी लक्षित होता है तुलसीदास इस का प्रमाण कर के अर्थात् सच सच कहते हैं ॥ २४ ॥

रोम रोम ब्रह्माण्ड प्रभु देखत तुलसी-दास।
बिनु देखे कैसे कोउ सुनि मानै बिसुआस ॥ २५ ॥

(तुलसी-दास प्रभु रोम रोम ब्रह्माण्ड देखत) कवि तुलसी-दास अथवा भक्त लोग ईश्वर (राम) के विराट स्वरूप के रोम२ में ब्रह्माण्ड देखते हैं (कोउ बिनु देखे सुनि कैसे बिसुआस मानै) कोई बिना देखे सुन कर कैसे विश्वास कर सकता है॥ २५ ॥

बेद कहत जहँ लगि जगत तेहि तें अलग न आन।
तेहि अधार बेवहरत लखु तुलसी परम प्रमान ॥ २६ ॥

(परम प्रमान) बेद कहत जहँ लगि जगत तेहि अधार) इस विषय में बड़ा भारी प्रमाण वेद कहता है कि जहाँ तक लोक हैं उसी विराट रूप राम के आश्रय में हैं अर्थात् सब का आधार वही है (तुलसी लखु तेहि तें अलग न तेहि अधार बेवहरत) तुलसी दास देखते हैं वा और भक्तों से कहते हैं कि तुम लोग देखो कि सम्पूर्ण जगत विराट रूप राम से अलग नहीं है उसी के आश्रय से जगत का व्यवहार चलता है ॥ २६ ॥

सरखप स्रुझत जाहि कहँ ताहि सुमेरु असूझ।
कहेउ न सो समुझत अबुध तुलसी बिगत बिबूझ॥ २७॥

जिस के सरसो देख पड़ती है अथवा सरसोरूप अन्तरात्मा समझ पड़ता है उस के लिये सुमेरु पर्वत के समान महान विराट स्वरूप राम असूझ हैं अर्थात् नहीं देख पड़ते (तुलसी सो अबुध कहेउ न समुझत) तुलसी दास कहते हैं वह अज्ञानी कहने अर्थात् समझाने पर भी नहीं समझता वह बिलक्षण मूर्ख है अर्थात् जिस से उत्पन्न हुआ है पाला जाता है उस के नहीं पहचानता॥ २७॥

कहत और समुझत और गहत तजत कछु और।
कहे सुने समुझत नहीं तुलसी अति मति बौर॥ २८॥

कहता कुछ और है और समझता कुछ और है अर्थात् वाणी से कहता है कि संसार असत्य है परन्तु उस में जानने योग्य परमेश्वर के न समझ कुछ और ही व्यवहार के सच्चा समझ लेता है, और ही कुछ ग्रहण करता और और ही कुछ त्याग करता है अर्थात् संसारी माया और संसार के बिभव के जो त्यान करने के योग्य हैं ग्रहण करता है और परमेश्वर और उस के नाम शान्ति बैराग्य आदि के जो ग्रहण करने के योग्य हैं त्याग करता है तुलसी दास कहते हैं कि बुद्धि का ऐसा छोटा है कि कितना कहो सुनो पर नहीं सकझता अथवा सुनी हुई (श्रुति) वेद को कहता है परन्तु उस के ठीकर सारांश को नहीं समझता॥ २८॥

देखेउ करइ अदेख इव अन देखेउ बिसुआस।
कठिन प्रबलता मोह की जल कहँ परम पियास॥२९॥

जो बात यह जीव देख रहा है उसे अन देखी सी कर देता है अर्थात् देखता है कि यह संसार और हमारा शरीर अनित्य और नश्वर हैं परन्तु इन पर इतना कम ध्यान देता है कि मानो अन देखा कर देता है और जिस बात को नहीं देखा उस में विश्वास करता है (अथवा रामरूप परमेश्वर को इस सृष्टि में अपने प्रभाव से फैला हुआ देखता है तौ भी अन देखा सा हो जाता है) और कुटुम्बादि से भावी सुख जिस को इसने नहीं देखा है उस में विश्वास करता है। आहा! माया का कैसा प्रबल प्रताप है कि (जल) विषय सुख की (जो मृग तृष्णा के समान नश्वर है) बड़ी लालसा रहती है। अभिप्राय यह कि यद्यपि जीव इस संसार के विभव को देखता है कि चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरा पाख है तौ भी जैसे मृग धूप में जल के भ्रम से अपनी प्यास को शान्त करने के लिये दौड़ते फिरते हैं वैसे ही यह विषय सुख की लालसा के पीछे बावला हो रहा है॥ २९॥

सोइ सेमर सोई सुआ सेवत पाइ बसन्त।
तुलसी महिमा मोह की बिदित बेखानत सन्त॥३०॥

जैसे सेमर के फल को सुन्दर देख कर मारे मोह के सुग्गा उस की सेवा करता है परन्तु फल पकने पर उस में चोंच मारता है

तो भूआ निकलता है तब अपने भ्रम पर पछताता है। फिर बसन्त ऋतु आने पर वही सुग्गा पहली बात भूल कर उसी सेमर के फल की सेवा करता है ऐसी ही दशा इस जीव की है कि संसारी सुख दुःखमय होने के कारण सेमर के फल के समान है तिस को यह सेवता है और अन्त को दुःख पाता है तौ भी विषय का पीछा नहीं छोड़ता तुलसी दास कहते हैं कि मोह का सामर्थ्य विदित है ऐसा साधु लोग भी बर्णन करते हैं॥ ३०॥

सुनत स्रवन देखत नयन सन्सय समन समान। तुलसी समता असम भौ कहत आन कहँ आन॥३१॥

कान से सुनता और आँख से देखता है तौ भी इस का सन्देह जम राज के समान बड़ा दृढ़ है अथवा (संसय समन) सन्देह का शान्त होना (समान) जैसा का तैसा ही रह जाता है अर्थात् दूर नहीं होता तुलसी दास कहते हैं कि (असम समता भौ) असमान अर्थात् संसार और विषय सुख आदि जो टेढ़ा है सो इस को समान अर्थात् सीधा जान पड़ता है अथवा (असम) एक संख्या विशिष्ट अद्वैत मार्ग सम अर्थात् द्वैत के समान जान पड़ता है इसी कारण (आन कहँ आन कहत) नाश होनेवाले संसार को सत्य समझता है॥

अभिप्राय यह कि जैसे सुग्गा सेमर के फल को सच्चा फल समझता है वैसाही यह जीव भी संसार और विषय सुख को सत्य जानता है जहाँ "सुनेउ स्रवन देखब नयन" पाठ हो वहाँ कान से सुना कि वह बड़ी सुन्दर है तो आँख से उस को देखने की इच्छा हुई (संसय-

सुमन) तब अच्छे निर्विकार मन में संशयरूप यम (समान) समाया कि अब किस भाँति उस से मिलूँ। इस प्रकार विषय सुख भोगी जीव के लिये (असम) विरुद्ध कर्म (समता भौ) अच्छा हुआ ऐसा अर्थ करना चाहिये॥ ३१॥

बस हा भौ अरि हित अहित सोऽपि न समुझत हीन।
तुलसी दीन मलीन मति मानत परम प्रबीन॥ ३२॥

१ (हा अरिवस अहित भव हित समझत तुलसी सो मतिहीन मलीन दीन अपि परम प्रबीन मानत) (हा इति कष्टे) बड़े कष्ट की बात है काम क्रोधादि शत्रुओं के बश हो कर असुखकारी विषय सुख को सुख कारी मित्र समझता है तुलसी दास कहते हैं कि यह जीव ऐसा बुद्धिहीन, दूषित, दुखी भी हो कर अपने को बड़ा बुद्धिमान मानता है॥

२ द्वितीयार्थ—(हा बस अहित अरि परम हित समझत सोपि प्रबीन मतिहीन मलीन न मानत) कष्ट के बश हो कर वस्तुतः गृहस्थी के जाल में फसाने हारे होने के कारण अमङ्गल कारी संसारी धनदारादि ऐश्वर्य को अति मङ्गल दायक मित्र समझता है वह दारा आदि चतुर कुटुम्ब भी जब यह वृद्धा अवस्था वा रोगादि के कारण बुद्धिहीन दीन और दोषी हो जाता है तो इसे नहीं मानता अर्थात् इस का आदर भाव नहीं करता। जहाँ "बस ही" पाठ हो वहाँ उस जन की (ही) हृदय काम क्रोध लोभ आदि अरि के बश हुआ ऐसा अर्थ करना चाहिये॥ ३२॥

भटकत पद अद्वैतता अटकत ग्यान गुमान।
सटकत बितरन तेँ बिहठि फटकत तुख अभिमान॥३३॥

(अद्वैतता पद भटकत) अद्वैत अर्थात् सम्पूर्ण सच्चिदानन्द परब्रह्म स्वरूप है इस सिद्धान्त में भटकता अर्थात् सन्देह के कारण बिश्वास नहीं करता (ग्यान गुमान अटकत) और यह संसार सच्चा है इस ज्ञान के अभिमान में (फँसा हुआ) चूर है (बिहठि बितरन तेँ सटकत) हठ कर के दान से भागता है अथवा वि बिशेष रूप से तरन जो मुक्ति वा भक्ति उस से दूर रहता है (तुख अभिमान फटकत) भूसा रूपी अभिमान को ओसाता है अर्थात् आत्माभिमान में झूठ ही अपने को मग्न रखता है॥ ३३॥

जो चाहत तेहि बिनु दुखित सुखित रहित तेहि होय।
तुलसी सो अतिसय अगम सुगम राम तेँ होय॥ ३४॥

जिस को यह चाहता है अर्थात् संसारी ऐश्वर्य, विषयसुख, अथवा जप तप आदि कामना पूरी करनेहारे काम, वा वह सुन्दरी जिस के रूप की प्रशंसा इसने सुनी है। उन के विना यह दुखित है। (तेहि रहित सुखित होय) परन्तु वस्तुतः उन के न रहने से यह जीव सुख पाता है यदि यह किसी वस्तु की कामना न करे तो सुखी रहे। तुलसी दास कहते हैं कि सो अर्थात् इस जीव का कामना रहित होना अत्यन्त दुस्साध्य है केवल रामचन्द्र की दया से सुसाध्य होता है॥ ३४॥

मातु पिता निज बालकहिँ करहिँ इष्ट उपदेस।
सुनि माने विधि आपु जेहि निज-सिर सहे कलेस॥३५॥

जैसे कल्पित (वाम-पन्थी) देवता की पूजा करने हारे माता पिता अपने बालक को उसी अपने मिथ्या इष्ट देव की पूजा का जिस प्रकार का उपदेश करते हैं उसी प्रकार उन के लड़के बाले उसे सुन कर मान लेते हैं और जन्म भर उस कल्पित देवता की पूजा का क्लेश अपने शिर पर ढोते रहते हैं वैसी ही दशा इस जीव की है।

अभिप्राय यह कि संसार को परम्परागत सत्य समझ के इस के व्यवहार में पच मरते हैं॥

द्वितीयार्थ। माता पिता अपने बालक को इस जगत के ऐसे अच्छे अभिलषित काम का उपदेश देते हैं जिन से बड़त काम निकले। (जेहि उपदेस सुनि आपु विधि निज-सिर कलेस सहे) जिस प्रकार (जल में सैन करनेहारे लक्ष्मी-नारायण का यह उपदेश सुन कर कि आप कमल पर बैठिये) आप ब्रह्माजी ने अपने शिर पर मधुकैटभ के उपद्रव का दुख उठाया वा सृष्टि की रचना का दुखदाई भार अपने शिर लिया जिस से आज तक नहीं छूटे तो संसारी मनुष्य क्यों कर छूट सकता है॥ ३५॥

सब सोँ भलो मनाइबो भलो होन की आस।
करत गगन को गेडुआ सो सठ तुलसी-दास॥ ३६॥

तुलसी-दास कहते हैं (सो सठ भलो होन की आस सब सों भलो मनाइबो गगन को गेडुआ करत) वह मूर्ख पुत्र जिस को पिता ने झूठे

वाम पन्थ की देवता की पूजा का उपदेश दिया था अपने कल्यान होने की आशा से सब वस्तुओं की भलाई मनाता है और आकाश को गेड़ुवा कर रहा है अर्थात् जो शून्यरूप कुछ नहीं है उस को गेड़ुवी बनाता है।

अभिप्राय यह कि उस की देवता वा इष्ट पदार्थ ही झूठा ठहरा तो उस से भलाई की क्या आशा हो सकती है इस लिये मूर्ख पुत्र असम्भव काम कर के व्यर्थ अपने को दुखी करता है ॥ २६ ॥

बलि मिसु देखत देवता करनी समता देव।
मुए मारि अविचार रत स्वारथ साधक एव ॥ ३७॥

(अविचार रत साधक देवता बलि मिसु मुए मारि स्वारथ देखत) अविवेक में पड़ के हिंसा-शील वह मूर्ख साधक अपने इष्ट देवता को बलिदान वा पूजा देने के बहाने से मृतक तुल्य पशु को मार कर अपने प्रयोजन को देखता है अर्थात् देवता के नाम पर पशु मार कर आप खा जाता है। (समता एव देव करनी) सच पूछिये तो सब जीवों को अपने समान जानना अथवा सब पदार्थों को राम-मय देखना ही देवता का काम है अर्थात् जो सब को अपने समान जानता है वह आप देवता के तुल्य है किसी जीव की हिंसा करने से रामचन्द्र प्रसन्न नहीं होते (अहिंसा परमो धर्मः) किसी को मनसा वाचा कर्मणा पीड़ा न देना यही बड़ा धर्म है ॥ ३७ ॥

बिना बीज तरु एक भव साखा दल फल फूल।
को बरनै अतिसय अमित सब बिधि अकल अतूल॥३८॥

(बिना बीज एक तरु भव) बिना बोये के अर्थात् किसी के बिना उत्पन्न किये वृक्ष रूप एक परमेश्वर (राम) आप से आप हुये ब्रह्मा विष्णु महेश आदि उन की शाखा अपर देवता पत्र और लोकादि फल फूल हुये उस का बर्णन कौन कर सकता है अत्यन्त अनन्त है और सब प्रकार से अगणनीय और अनुपम है॥

द्वितीयार्थ। (बिना बीज) जैसे कलम बिना बीज होता है वैसे ही माया की महिमा से बिना बीज एक भव तरु यह संसाररूपी वृक्ष हुआ अर्थात् वेदान्तियों के मत से केवल भ्रान्तिमय और शून्य होने के कारण इस संसार को बिना बीज का वृक्ष कहा है (अतिसय अमित अकल साखा दल फल फूल को बरनै) जिस में किसी की कारीगरी काम नहीं कर सकती और जिस के इतने अधिक कर्मरूपी शाखा पत्ता फल और फूल हुये कि बर्णन करना असम्भव है सब प्रकार से असङ्ख्य और अनुपम हैं॥ ३८॥

सुक पिक मुनि गन बुध बिबुध फल आसित अति दीन।
तुलसी ते सब बिधि रहित सो तरु तासु अधीन॥३९॥

वृक्ष पर पक्षी रहते है इस वृक्ष के (बिबुध बुध मुनि सुक पिक गन) देवता पण्डित ऋषि सुग्गा और कोकिल के झुण्ड हैं जो संसाररूपी वृक्ष कें कर्मरूपी फल के अधीन हो कर बड़े दीन हैं अर्थात् जब कोई संसार में आ कर उत्तम कर्म आदि करता तब देवता आदि की पदवी पाता है तुलसी दास कहते हैं कि वे शुक पिक आद सब बिधानों से हीन है अर्थात् उन का इस वृक्ष पर

कुछ अधिकार नहीं है और वह संसाररूपी वृक्ष उस रामरूप परमेश्वर के अधीन है ।

जहाँ "तुलसी ते सब बिरद हित" पाठ हो वहाँ (ते सब) वे सब शुक पिक आदि मुनिगन (तासु हित बिरद) उस ब्रह्मरूप राम के आज्ञाकारी वा प्रिय जस बखाननेहारे हैं जिस के अधीन वह वृक्ष है ॥ ३९ ॥

को नहिँ सेवत आइ भव को न सेइ पछिताय ।
तुलसी बादहिँ पचत है आपुहिँ आपु नसाय ॥४०॥

(आइ को भव नहिँ सेवत) जन्म पा कर कौन इस संसार को नहीँ सेवता और सेवा कर के नहीँ पछताता । तुलसी दास कहते हैँ कि व्यर्थ ही (आपुहिँ आपु पचत नसाय है) आप से आप मारे दुःख के गल कर नष्ट हो जाता है । अभिप्राय यह कि इस झूठे संसार में जो फँसा सो अपने कर्म की जाल मेँ पड़ कर अनेक जन्म मरन के दुःख मेँ पचता रहता है ॥ ४० ॥

कहत बिबिध फल बिमल तेहि लहत न एक प्रमान ।
भरम प्रतिष्ठा मानि मन तुलसी कथत भुलान ॥४१॥

उस को अनेक प्रकार का निर्मल फल बताते हैँ परन्तु प्रमाणरूप एक फल भी कभी नहीँ पाते हैँ । (तुलसी मन भरम प्रतिष्ठा मानि) तुलसी दास कहते हैँ कि अपने मन मेँ भ्रम से फल पाने का आदर मान कर (भुलान कथत) भूल से कहते फिरते हैँ ।

जहाँ "बहँत न एक प्रमान" पाठ हो वहाँ (एक प्रमान बहत न)

किसी के प्रमाण पर नहीं चलते अर्थात् कहने को तो कहते हैं कि शास्त्र में अनेक प्रकार जप तप के फल लिखे हैं परन्तु आप उस के अनुसार नहीं करते। मन में अपनी प्रतिष्ठा और भय के लिये झूठे ही कहते हैं ॥ ४१ ॥

म्रिग-जल घट भरि बिबिध-बिध सींचत नभ-तरु-मूल।
तुलसी मन हरखित रहत बिनहिं लहे फल फूल॥४२॥

(बिबिध बिधि घट मृग-जल भरि नभ-तरु-मूल सींचत) संसार में विश्वास करनेवाला अनेक प्रकार के घड़ों में मृग तृष्णारूपी जल भर के आकाशरूपी वृक्ष की जड़ को सींचता है और तुलसी-दास कहते हैं बिना फल फूल पाये मन में प्रसन्न रहता है।

अथवा भूत आदि की पूजारूपी जल को अपने हृदय में भर के नभ-तरु झूठे विश्वासरूपी आकाश वृक्ष को सींचते हैं और जो भी अज्ञानी ही बने है तथापि मन में प्रसन्न रहते हैं ॥ ४२ ॥

सोऽपि कहहिं हम कहँ लहेउ नभ-तरु को फल फूल।
ते तुलसी तिन तें बिमल सुनि मानहिं मुद मूल॥४३॥

(सोऽपि कहहिं हम नभ-तरु को फल फूल कहँ लहेउ) निश्चय है कि भूत पूजारी संसारी भ्रम में पड़ के कहता है मैं ने आकाश वृक्ष के फल फूल को पाया और वे जो उस की बात को सुन कर उसे आनन्द की जड़ समझते हैं उस से भी निर्मल हैं अर्थात् और अधिक भ्रम में पड़े हैं ॥ ४३ ॥

तेऽपि तिनहिँ आँचहिँ बिनय करि करि बार हजार।
तुलसी गाडरि के ढरन जाने। जगत बिचार ॥४४॥

और दूसरे हजारोँ बार उन मिथ्या-विश्वासकोँ से प्रार्थना कर के माँगते हैँ कि हम को भी बताइये कि जिस से पूजा कर के फल पावँ तुलसी दास कहते हैँ कि भेड़ की चाल के समान संसार का बिचार है॥ अभिप्राय यह कि जैसे आगे चलनेवाली एक भेड़ी यदि कूँएँ मेँ जावे तो उस के पीछे सब भेड़ी कूँएँ मेँ जा गिरती हैँ वैसे ही भेड़िया-धसान संसार के विश्वासकोँ का है॥ ४४ ॥

ससि कर स्रग रचना किये अति सोभा सरसात।
स्वरग सुमन अवतन्स खल चाहत अचरज बात॥४५॥

चन्द्रमा की किरणोँ की माला बना कर पहिन्ने से अत्यन्त शोभा होती है परन्तु ऐसी माला का बनना ही असम्भव है ऐसा ही संसार मेँ विश्वास करनेहारा मूर्ख आकाश के फूल का भूषण बनाना इस अत्यन्त आश्चर्य बात को चाहता है। जहाँ "कहँ सोभा सरसात" पाठ हो वहाँ क्या सोभा हो सकती अर्थात् नहीँ हो सकती ऐसा अर्थ करना चाहिये॥ ४५ ॥

तुलसी बोल न बूझई देखत देख न जोइ।
तिन सठ को उपदेस का करब सयाने लोइ ॥४६॥

तुलसी दास कहते हैँ कि जो (बोल न बूझई) वाणी को नहीँ समझता

और देखता हुआ भी नहीं देखता है (सयाने लोग तिन सठ को का उपदेस करब) बुद्धिमान लोग उन महामूर्खों को क्या उपदेश कर सके है।

अभिप्राय यह कि जो कोई इस संसार को और कल्पित देवताओं की पूजा को असत्य जान कर भी नहीं छोड़ना चाहता उस से कौन छुड़ा सकता है॥ ४६॥

जो न सुनै तेहि का कहिय कहा सुनाइय ताहि।
तुलसी तेहि उपदेस हीं तासु सरिस मति जाहि॥४७॥

जो नहीं सुनता उस से क्या कहना और क्या सुनाना अर्थात् कहना-सुनना दोनों व्यर्थ हैं तुलसी दास कहते हैं कि जिन की बुद्धि उन्ही के सदृश है वे ही लोग उन को उपदेश देते हैं॥ ४७॥

कहत सकल घट राम-मय तौ खोजत केहि काज।
तुलसी कहँ यह कुमति सुनि उर आवत अति लाज॥ ४८॥

(सकल घट राम-मय कहत तौ केहि काज खोजत) कहते हैं कि रामचन्द्र घट २ व्याप्त हैं तो फिर दूसरी ठौर उन्हे खोजने क्या जाते हैं (यह कुमति सुनि तुलसी कहँ उर अति लाज आवत) यह कुबुद्धि सुन कर तुलसी दास को अपने मन में बड़ी लज्जा आती है अभिप्राय यह कि—जब अपने ही घट में राम हैं तो वहाँ हीं खोजना चाहिये और दूसरी ठौर भटकना केवल मूर्खता है॥ ४८॥

अलख कहहिँ देखन चहहिँ ऐसो परम प्रबीन ।
तुलसी जग उपदेस हीँ बनि बुध अबुध मलीन ॥४९॥

(ऐसो परम प्रबीन अलख कहहिँ देखन चहहिँ) ऐसे बुद्धिमान (बड़े मूर्ख) हैँ कि जिस राम को अलख अर्थात् देखने के अयोग्य कहते हैँ उस को देखना चाहते हैँ (मलीन अबुध बुध बनि जग उपदेस हीँ) ऐसे अधर्मी और अज्ञानी लोग ज्ञानी बन के संसार को उपदेश देते हैँ ॥ ४९ ॥

हहरत हारत रहित बिद रहत धरे अभिमान ।
ते तुलसी गुरुआ बनहिँ कहि इतिहास पुरान ॥५०॥

(बिद रहित हहरत हारत (तथापि) अभिमान धरे रहत) विद्या-हीन होने के कारण हहरत थक जाते हैँ अर्थात् जिस बात को खोजते हैँ वह नहीँ मिलती तब थकित हो कर भी अभिमान धरे ही रहते हैँ तुलसी दास कहते हैँ कि (कलि मेँ) ऐसे लोग आ कर पुरानी कथा कह कर जगत के गुरू बनते हैँ ।

अभिप्राय यह कि—कल्पित भूत प्रेतादिकोँ की पूजा करनेहारे कुछ सिद्धि न पा कर भी आ कर लोगोँ के पास यह पुरानी कथा निकालते हैँ कि मेरे पिता या गुरु अमुक देवता की पूजा वा बलिदान से बड़े सिद्ध ऊये थे, यदि तुम लोग करो तो वैसी सिद्धि अवश्य पाओगे ॥

कोई कोई इतिहास पुराण आदि शब्द का महाभारत आदि

इतिहास और भागवत आदि पुराण अर्थ करते हैं सो अयुक्त जान पड़ता है क्योंकि तुलसी-दास वैष्णव थे, वे क्यों इतिहास पुराण की निन्दा करेंगे। यहाँ पुराने इतिहास से पैंतीसवें दोहे में कहा परम्परा-गत इष्टदेव का मिथ्या-उपदेशरूपी इतिहास समझना चाहिये॥ ५० ॥

निज नैनन देखत नहीं गही आँधरे बाँह।
कहत मोह बस तेहि अधम परम हमारे नाँह॥५१॥

आपनी आखों से तो देख नहीं पड़ता दूसरे अन्धे की बाँह पकड़ा (अधम मोह बस कहत हमारो नाँह परम) नीच भ्रम में पड़ कर कहता है कि हमारे उपदेशक स्वामी वा देवता बड़े हैं।

अभिप्राय यह कि अज्ञानी गुरु के आश्रे में पड़ कर संसार में विश्वास किया। इसी से चौरासी योनि का अधिकारी हुआ॥ ५१ ॥

गगन बाटिका सींचहीं भरि भरि सिन्धु तरङ्ग।
तुलसी मानहिँ मोद मन ऐसे अधम अभङ्ग॥५२॥

(सिन्धु तरङ्ग भरि२ गगन बाटिका सींचहीं) संसाररूपी झूठे समुद्र के अभिलाषरूपी तरङ्गों से जल भर कर आकाशरूपी मिथ्या बाटिका को सींच रहे हैं। तुलसी दास कहते हैं कि ये ऐसे नीच और निडर हैं कि मिथ्या से भी मन में आनन्द मानते हैं॥ ५२॥

द्रिखद करत रचना बिहरि रङ्ग-रूप सम तूल।
बिहग बदन बिष्टा करत ता तें भयो न तूल॥ ५३ ॥

ये मिथ्या विश्वासी (द्रिखद् बिहरि रचना करत) पत्थल पर बड़े सिंह का चित्र बनाते हैं जिस का रङ्ग रूप ठीक२ सिंह के तुल्य होता है, परन्तु पची उस के मुख में बीट कर देता है, इस से सिंह के पराक्रम की तुलना उस में न ऊई।

अभिप्राय यह कि यद्यपि वे लोग अपने मिथ्या देवता को ईश्वरवत् समझ के बलि आदि देते हैं परन्तु वह निर्जीव होने के कारण उस पची को भी नहीं मार सकता और अपने भक्तों के मनोरथ का पूरा करना तो दूर रहा।

दूसरा अर्थ—परमेश्वर ऐसे अपने भक्तों के अधीन हैं कि भक्त-जन पत्थल काट कर उस पर देवता का रङ्ग रूप सब उसी के तुल्य बनाते हैं और मुख में पची बीट कर जाता है तो भी उस भक्त से रूठते नहीं ऐसे दयालु हैं। पहले अर्थ में (वि) विशेष हरि सिंह अर्थ किया गया। दूसरा अर्थ पहले से अच्छा जान पड़ता है॥ ५३॥

चाह तिहारी आप तें मान न आन न आन।
तुलसी करु पहिचान पति जा तें अधिक न मान॥५४॥

(तिहारी चाह आप तें आन) तू अपनी इच्छा को आप अर्थात् आपने ही आत्मा से (आन) लाओ पूरी करो (आन न मान) और दूसरे को न मानो, तुलसी दास कहते हैं (पति) अपने स्वामी राम को पहचान कर (जा तें अधिक आन मान न) जिस से अधिक और को न मानना चाहिये॥

अभिप्राय यह कि यदि तुम अपने राम को अपने घट में ढूंढ़ के उन से अपनी इच्छा पूरी कराओगे तो शीघ्र फल पाओगे नहीं तो इधर उधर भटकते रह जाओगे ॥ ५४ ॥

आतम बोध बिचार यह तुलसी कर उपकार।
कोउ कोउ राम प्रसाद तेँ पावत पर-मति पार ॥५५॥

(तुलसी उपकार) (हेतु) यह आतम बिचार कर। कोउ२ राम प्रसाद तेँ पर मति पार पावत)।

तुलसी दास ने जगत के उपकार के लिये यह आत्मा के ज्ञान का बिचार किया। कोई२ श्रीराम चन्द्र (रूपी गुरु) की कृपा और पर-मति अर्थात् उत्कृष्ट बुद्धि वा भक्ति से इस बिचार के पार जायँगे।

अभिप्राय यह कि इस ग्रन्थ में गोसाँई जी ने आत्मज्ञान का वर्णन किया है परन्तु उस का यथार्थ बोध श्रीरामचन्द्र और गुरु की दया के बिना नहीँ हो सकता ॥ ५५ ॥

जहाँ तोख तहँ राम हैँ राम तोख नहिँ भेद।
तुलसी देखि गहत नहीँ सहत बिबिध बिधि खेद ॥५६॥

जहाँ सन्तोष है वहाँ श्रीरामचन्द्र रहते हैँ क्योँकि सन्तोष और राम में कुछ भेद नहीँ है परन्तु संसार के मनुष्य लोग इस बात को देख कर भी संतोष को नहीँ ग्रहण करते इसी से वे अनेक प्रकार का दुःख सहतेँ अर्थात् भोगते हैँ ॥ ५६ ॥

गो-धन गज-धन बाजि-धन और रतन-धन खान।
जब आवत सन्तोख धन सब धन धूरि समान ॥५७॥

संसार में गौ, हाथी, घोड़ा आदि पशु और अनेक प्रकार के रत्नों की खान हैं परन्तु इन सब धनों से सन्तोषरूपी धन बड़ा है क्योंकि जब सन्तोष मन में आता तो और धन मट्टी के समान हो जाते हैं॥ सबों के रहते यदि सन्तोष न हुआ तो सब व्यर्थ हैं। जिस के पास कुछ नहीं है वह सौ रुपया चाहता सौवाला हजार हजारवाला लाख चाहता है और बहुत धन और जन होने पर भी इच्छा पूरी नहीं होती, जब सन्तोष होता है तभी इच्छा पूर्ति और सुख होता है॥५७॥

कुथि रटि अटत बिमूढ़ लट घट उद घटत न ग्यान।
तुलसी रटत हटत नहीं अतिसय गत अभिमान॥५८॥

अ०—(बिमूढ़ लट कुथि रटि अटत ग्यान घट न उद घटत (तौ भी) तुलसी अतिसय अभिमान गत हटत नहीं रटत रहत ॥)

(सन्तोष कर के रामरूपी गुरु को प्रसन्न करना छोड़ संसारी) मूर्ख खल कूथता और रटता हुआ इधर उधर भटकता है परन्तु आत्म-ज्ञान ऐसा दुर्लभ है कि उस के हृदय में नहीं आता तुलसी दास कहते हैं कि तौ भी मूर्ख जन अभिमान के वश हो कर हारता नहीं बरन रटता रहता है ॥

जहाँ (कथि रति) पाठ है वहाँ स्त्री पुत्रादि में प्रीति का वर्णन करता और (बिमूढ़ लट) मूर्खों में बर्तमान हो के अहङ्कार से भर के

तीर्थादि में फिरता रहता है और पुराणादि के (हटत नहीं रटत रहत) पाठ से हटता नहीं रटता अर्थात् घोखता रहता है (घट ग्यान न उद घटत) तौ भी रामरूप परमेश्वर की भक्ति से हीन होने के कारण उस के हृदय में ज्ञान नहीं आता। ऐसा अर्थ करना चाहिये ॥ ५८ ॥

भू भुजङ्ग गत दाम भव का मन बिद्धि विधान।
तो तन बरतमान जत तत तुलसी परमान॥ ५९ ॥

अ०-(दाम गत भुजङ्ग भव मनका विधान बिद्धि, तुलसी जत तो तन बरतमान तत परमान)।

भूमि पर पड़ी माला अर्थात् रस्सी में जैसे साँप का भ्रम होता है वैसा ही तुझ को इस झूठे संसार में सत्यता का भ्रम होता है, इस को तू अपने मन की (विधान) कल्पना मात्र (बिद्धि) जानो। तुलसी दास कहते हैं कि जब से तेरा शरीर हुआ है तभी से तुझ को भ्रम हुआ है और रहेगा॥

अभिप्राय यह कि माला अन्धेरे में जिस प्रकार सच मुच साँप जान पड़ती है उसी प्रकार यह जगत भी अज्ञानरूप अन्धेरे में सत्य भाषमान होता है वस्तुतः सत्य नहीं है

जहाँ "दाम भव काम न बिबिध विधान" पाठ हो वहाँ यह माला है सर्प नहीं है उसी प्रकार यह भ्रम है संसार नहीं है और अनेक प्रकार की कामना भी (न) झूठी है, कुछ है नहीं, ऐसा अर्थ करना चाहिये॥ ५९ ॥

भोडर सुक्ति बिभव पड़िक मनि गति प्रगट लखात ।
मनि भोडर अपि सुक्ति तेँ बिलग बिजानत तात ॥६०॥

अ०-तात, भोडर सुक्ति गत पड़िक मनि बिभव प्रगट लखात (परन्तु) भोडर अपि सुक्ति मनि तेँ बिलग बिजानत ॥

अब दूसरा दृष्टान्त देते हैँ कि हे प्यारे ! जैसे अभरक और सीपी मेँ (भ्रम से) चाँदी रत्नादि ऐश्वर्य प्रगट देख पड़ता है परन्तु (भ्रम दूर होने पर) अभरक और सीप मणि रत्नादि ऐश्वर्य से अलग हैँ ऐसा ज्ञान होता है तैसे ही इस संसार में सत्यता का भाष होता है परन्तु आत्मज्ञान होने पर अभरक और सीपीरूपी संसार की झुटाई तथा रत्नरूपी आत्मा की सचाई प्रगट हो जाती है। परन्तु जैसे जिस पुरुष के मन मेँ सर्प चाँदी और रत्न छा गये हैँ उस को दूर से बार २ देखने पर भी रस्सी सीपी अभरक मेँ क्रम से पूर्वोक्त तीनोँ पदार्थ (न रह कर) भी सच मुच देख पड़ते हैँ वैसे ही जिस के मन मेँ संसार की सत्यता छाई है उस को (यह झूटा हो कर) भी सच्चा ही जान पड़ता है॥

जहाँ "भव डर सुक्ति बिभव पड़िक मन गत" पाठ हो, वहाँ तेरे मन मेँ संसार जो सत्य जान पड़ता है सो सीप मेँ चाँदी के ऐश्वर्य के भ्रम के समान है ऐसा अर्थ करना चाहिये ॥ ६० ॥

राम-चरन-पहिचान बिनु मिटी न मन की दौर ।
जनम गवाँये बादहीँ रटत पराए पौर ॥ ६१ ॥

रामचन्द्र के चरण का सच्चा पहिचान न होने के कारण मन की

(हीर) अभिलाषा न मिटी दूसरे अर्थात् छोटे२ राजा बाबू देवता और तीर्थों में रटता२ (बादहीँ) व्यर्थ जन्म को बिता दिया ॥

अभिप्राय यह कि जब तक तुझे परमेश्वर की भक्ति वा ब्रह्मज्ञान न होगा तब तक तू चाहे कितना भी छोटे२ देवताओं की पूजा और तीर्थ व्रत कर पर तुझे परम गति न मिलेगी ॥

श्रीधरस्वामी भागवत की टीका में लिखते हैं* कि चाहे तप करें परबत से गिरें तीर्थों में फिरा करें वेद पुराण पढ़ा करें यज्ञ किया करें और बाद बिबाद किया करें परन्तु बिना विष्णु (रूप राम) के संसार से नहीं छूट सकते ॥ ६१ ॥

सुनै बरन मानै बरन बरन बिलग नहिँ ग्यान ।
तुलसी सु-गुरु-प्रसाद-बल परै बरन पहिचान ॥ ६२ ॥

(बरन) अक्षर सुन पड़ता है वही माना जाता है वही ज्ञान स्वरूप है तुलसी दास कहते हैं कि उत्तम रामरूप गुरु की कृपा के बल से बरण अक्षररूप ब्रह्म पहिचाना जाता है ॥

अभिप्राय यह कि अक्षरमय शब्द होता है जिस को सुन कर लोग मानते हैं। वेद के मन्त्र भी अक्षर ही के हैं और अक्षर ही उच्चारण किया जाता है॥

---

* तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्व्वतादटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान् ।
यजन्तु यागैर्विवदन्तु वादैर्हरिं विना नैव मृतिं तरन्तु ॥

द्वितीयार्थ। अथवा वरन शब्द में श्लेष मान कर शास्त्र विधि निषेधमय वाणी अर्थ किया तब कान से सुनता है मन से उस वाणी को मानता है और ज्ञान और शास्त्र की वाणी में भेद नहीं है इत्यादि अर्थ हो सकता है॥ ६२॥

बिटप बेलि गन बाग के माला-कार न जान।
तुलसी ता बिधि बिद बिना करता राम भुलान॥ ६३॥

अ०-बाग के बिटप बेलि गन, माला-कार न जान तुलसी बिद बिना (जन) ता बिधि करता राम भुलान॥

जिस प्रकार से बगीचे में के छोटे २ वृक्ष और बेल-बूटे आदि अपने सींचनेहारे माली को नहीं जानते तुलसी दास कहते हैं उसी प्रकार से जन ज्ञान के बिना अपने कर्ता आत्मारूप श्रीरामचन्द्र को भूल गया है। अथवा माली सब वृक्ष और फलों को लगाता पर यह नहीं जानता, कि किस वृक्ष में कैसा फूल-फल लगेगा वैसा ही ज्ञान के बिना जीवात्मा परमेश्वर को भूल गया है॥ ६३॥

करतब हीं सों करम है कह तुलसी परमान।
करनहार करता सोई भोगी करम निदान॥ ६४॥

पाप पुण्य आदि जो मनुष्य की करनी हैं उन ही को तुलसी दास कर्म कहते हैं और उन का करनेहारा कर्ता कहाता है यह प्रमाण है कि वही अपने शुभाशुभ कर्म को भोगेगा॥

अभिप्राय यह कि यदि तू पाप पुण्यादि कर्म न करेगा तो कर्ता न कहावेगा तेरा आत्मा यद्यपि निर्विकार है तौ भी देहा-ऽभिमानी होकर कर्म करता है इसी से बार२ जन्म ले कर उन के फल को भोगता है जब गुरु की कृपा से तुझे आत्म-ज्ञान होगा तब संसार के बन्धन से छूटेगा॥६४॥

तुलसी लट पद तें भटक अटक अपि तु नहिँ ग्यान।
ता तें गुरु-उपदेस बिनु भरमत फिरत भुलान॥६५॥

अ०-(अपि तु तुलसी नहिँ ग्यान लट पद तें अटक भटक) तुलसी कहते हैं कि तू निर्विकार है (अपितु) किन्तु ज्ञान नहीं होने के कारण (लट पद) वर्तमान स्थान अर्थात् संसार वा अपने शरीर में अटक कर भटक रहा है इसी कारण बिना अच्छे गुरु के उपदेश के भूल से भ्रम में पड़ा हुआ फिरता है॥

अथवा (लट पद तें भटक अटक) बाल की लट के समान उर्भा-हुआ शुभा-ऽशुभ कर्म में पड़ा हुआ भूला है शुभा-ऽशुभ कर्म की जाल में बे-हाल हो रहा है गुरु के उपदेश के बिना भ्रम में पड़ा है॥६५॥

ज्योँ बरदा बनिजार के फिरत घनेरे देस।
खाँड़ भरे भुस खात है बिनु गुरु के उपदेस॥६६॥

जैसे पीठ पर खाँड़ लादे बनजारे का बैल अनेक देश२ फिरता है और भूसा खाता है वैसे ही अच्छे गुरु के उपदेश के बिना मनुष्य खाँड़रूपी आत्मा को शरीर में लिये दुःखरूपी वा विषय सुखरूपी

भूखा बुका रहा है और इस संसाररूपी वा चौरासी योनिरूपी देश में घूम रहा है ॥ ६६ ॥

बुध्या बारत अनय पद स्व ऽपि न पदारथ लीन।
तुलसी ते रासभ सरिस निज मन गनहिँ प्रबीन ॥६७॥

अनीति पथ में पड़ कर (बुध्या बारत) बुद्धि को त्याग देता है तौ भी अपने को पण्डित समझता है (स्वऽपि न पदारथ लीन) अपना पदार्थ जो पर-मात्मा है उस में लीन नहीं है।

अथवा (स्व अपि पदारथ न लीन) आप भी अव्यय ब्रह्मरूप पदार्थ में तत्पर नहीं है।

तुलसी-दास कहते हैं कि ऐसे लोग (रासभ सरिस) गदहे के समान हैं परन्तु अपने मन में अपने को बड़ा बुद्धिमान मानते हैं ॥ ६७ ॥

कहत बिबिध देखे बिना गहत अनेक न एक।
ते तुलसी स्वन हा सरिस बानी बदहिँ अनेक ॥६८॥

अ०-बिना देखे बिबिध कहत अनेक गहत, एक न, तुलसी हा स्वन सरिस अनेक बानी बदहिँ॥

जिन बातेँ को कभी नहीँ देखा उन को अनेक बार कहते हैँ और अनेक बातेँ को लेते है परन्तु एक मुख्य बात को नहीँ लेते तुलसी-दास कहते हैँ कि हा बड़े खेद की बात है वे कुत्ते के समान बहुत भूकते हैँ ॥

यदि स्वनहा को एक पद मानो तो उस का अर्थ कुत्ता मारनेहारा चाण्डाल हो सकता है। जहाँ "सोनहा" पाठ हो वहाँ सोना मारने-

वाले सुनार के समान हैं जैसे सुनार सोना चुराने के लिये आपस में अनेक बोली बालते हैं वैसे ही अपने बुझने के लिये ये अनेक वेद शास्त्र सुनाते हैं पर किसी का ठीक भेद नहीं पाते हैं।

बिनु पाये परतीत अति करत जथारथ हेत।
तुलसी अबुध अकास इव भरि भरि मूठी लेत॥ ६९॥

विषय भोग से सच्चा सुख कभी पाया नहीं परन्तु बड़ा विश्वास उस के पाने में करता है तुलसी-दास कहते हैं कि अज्ञानी के समान आकाश को भर मूठी पकड़ना चाहता है जो बात असम्भव है।

अथवा बिना फल पाये भी कुदेवताओं में विश्वास करता है और सच्ची प्रीति करता है वह अबूझ (आकाश) शून्य ही को मूठी में भरता है इस कारण छूछे हाथ का छूछा ही बना रहता है॥ ६९॥

बसन बारि बाँधत बिहठि तुलसी कौन बिचार।
हानि लाभ बिधि बोध बिनु होत नहीँ निरधार॥७०॥

तुलसी-दास कहते हैं कि हठ कर के कपड़े में जल बाँधता है इस बिचार की क्या प्रसंशा हो सकती है? बुराई भलाई की रीति के ज्ञान के बिना निश्चय नहीँ होता कि किस से लाभ और किस से हानि होगी।

अथवा किस कर्म, किस देव की पूजा वा किस मन्त्र से लाभ होता है किस से हानि इत्यादि के विधि प्रकार को बिना जाने जो मन्त्र साधने में लगते हैं उन को सिद्धि का कुछ निश्चय नहीँ होता वरन और उलटा-परिश्रम व्यर्थ जाता है॥ ७०॥

काम क्रोध मद लोभ की जब लगि मन में खान।
का पण्डित का मूरखौ दोऊ एक समान॥ ७१॥

जब तक मनुष्य के मन में काम क्रोध अहङ्कार और लोभ आदि भरे हैं तब तक चाहे पण्डित वा मूर्ख हो परन्तु दोनों समान हैं।

अभिप्राय यह कि वेद पुराण के पढ़ने का मुख्य फल कामादि शत्रुओं को जीत कर आत्मा का पहिचानना है सो न हुआ तो मूर्ख और पण्डित में क्या भेद है।

अथवा काम की खान सुन्दर स्त्री, क्रोध की खान ईर्षा द्वेष, अहङ्कार की खान विद्या सुन्दरता आदि और लोभ की खान लाभ धन आदि में जब तक मन लगा रहे तब तक पण्डित और मूर्ख दोनों समान हैं। पण्डित होने का फल तो यही है कि इन में मन न दे॥ ७१॥

उत कुल की करनी तजी इत न भजे भगवान।
तुलसी अधवर के भये ज्यों बधूर के पान॥ ७२॥

अब तुलसी-दास इस दोहे में कच्चे साधुओं का वर्णन करते हैं जो बिना ठीक ठीक ज्ञान हुये गृहस्थी छोड़ कर मूड़ मुड़ा लेते हैं॥

उधर अपने कुल की मर्यादा अर्थात् वर्णाऽऽश्रम धर्म को छोड़ कर साधु हुये और इधर साधु के कर्म अर्थात् रामरूप परमेश्वर के भजन में भी मन न लगा तो ऐसे लोग अधवर अर्थात् बीच के हो जाते हैं जैसे बधूर का पत्ता अर्थात् बवण्डर के बीच में उड़ता हुआ पत्ता न भूमि का न आकाश का किसी ठौर का नहीं। न उन

से गृहस्थों का धर्म हुआ न साधुओं का। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों पथों से भ्रष्ट हुये ॥ ७२ ॥

कीर-सरिस बानी पढ़त चाखन चाहत खाँड़।
मन राखत बैराग महँ घर महँ राखत राँड़ ॥ ७३ ॥

अब तुलसी-दास इस दोहे में ऐसे पण्डित वा साधु का बर्णन करते हैं जो अपने मन और इन्द्रियों को बश में न ला कर पाषण्ड से वेदादि का पाठ करता और अपने को साधु दिखलाता है।

सुगों के समान बिना समझे वेदादि का पाठ करते हैं और खाँड़रूपी मुक्ति को पाना चाहते हैं मन बैराग के काम में लगाते हैं और घर में राँड़ रखते हैं ऐसे पण्डित और साधु बड़ी निन्दा के पात्र हैं ॥

२—अथवा सुगों के सदृश बोली बोलना चाहते परन्तु खाँड़ खाते और मन बैराग में रख कर घर में राँड़ रखते हैं। अभिप्राय यह कि जैसे मधुर बाणी का बिरोधी खाँड़ है वैसे ही बैराग्य का बिरोध करने हारी स्त्री है। ये न घर के हुये और न बैराग्य के हुये गृहस्थी और साधुपन दोनों से गये ॥

राम-चरन परचे नहीं बिनु साधुन-पद नेह।
मूड़ मुड़ाए बादहीं भाँड़ भये तजि गेह ॥ ७४ ॥

सन्तों के चरन में प्रीति न होने के कारण जिन को रामचन्द्र के चरण का ज्ञान न हुआ ऐसे साधुओं के मूड़ मुड़ाने से कुछ भी

लाभ नहीँ है क्योँकि वे बना बनाया घर छोड़ कर भ्रष्ट अथवा हंसी के योग्य भाड़ हो गये हैँ अर्थात् जिस प्रकार भाड़ लोगोँ को रिझाने के लिये अनेक नकल करते हैँ भेष बदलते हैँ वैसे ही ये साधु भी जोगी का भेष बना कर पुजाते हैँ परन्तु जोगी का कर्म इन मेँ नहीँ है। जहाँ "बिन साधन" पाठ हो वहाँ श्रद्धा आदि भक्ति के उपायोँ से रहित अर्थ करना ॥ ७४ ॥

काह भए बन बन फिरे जौँ बनि आएउ नाहिँ।
बनते बनते बनि गएउ तुलसी घर ही माहिँ ॥ ७५ ॥

तुलसी-दास कहते हैँ कि बन बन फिरने से क्या हो सकता है यदि उस से परलोक न बने घर मेँ रह कर भी अच्छा कर्म करने से मनुष्य के दोनोँ लोक सुधर सकते हैँ।

अभिप्राय यह कि यदि मनुष्य ने मन और काम क्रोधादि शत्रुओँ को न जीता तो उस के बन मेँ जा कर तप करने से कुछ भी लाभ नहीँ है गृहस्थाश्रम मेँ रह कर भी यदि सुकर्म करे तो उस का परलोक बन सकता है॥७५॥

जो गति जानै बरन की तन-गति सो अनुमान।
बरन-बिन्दु-कारन यथा तथा जानु नहिँ आन॥७६॥

जैसी दशा अक्षर की है अर्थात् अक्षर बिन्दुओँ के योग से बनता है वैसी ही शरीर की भी जानना चाहिये जैसे वर्ण का कारण बिन्दु है वैसे ही शरीररूपी अक्षर के बिन्दुरूप मन और इच्छा को भी कारण कहते हैँ।

अभिप्राय यह कि जैसे फारसी में बिन्दु (नोखता) देने से अक्षर तुरन्त दूसरा हो जाता है वैसे ही शरीर में जैसी वासना हुई वैसी ही उस की गति हुई अर्थात् विषय से विषयी और भक्ति से भक्त होते हैं॥ ७६॥

बरन-जोग भौ नाम जग जानु भरम को मूल।
तुलसी करता है तु ही जानि मानु जनि भूल॥७७॥

(जग नाम बरन-जोग भौ भ्रम को मूल जान तु ही करता है जानि मानु जनि भूल)

अक्षरों ही के मिलाने से जगत का नाम हुआ अर्थात् ज+ग के मिलने से जग बना इसे भ्रम का कारण समझो इस नाम का बनानेहारा तू ही है ऐसा जान कर मान ले और न भूल।

अभिप्राय यह कि जगत मिथ्या है केवल तेरे ही भ्रम से सच जान पड़ता है और इस का नाम भी तुझी ने रक्खा है॥

द्वितीयार्थ—वर्ण (अक्षरम्) अर्थात् परब्रह्म और प्रकृति की इच्छा से जग का नाम हुआ सो केवल ईश्वर की क्रीड़ा मात्र होने के कारण भ्रम का मूल है और इस का बनानेहारा परमात्मा का अंश तेरे शरीर में वर्तमान जीवात्मा ही है ऐसा तू निश्चय रख भूल मत॥ ७७॥

नाम जगत सम समुझु जग बस्तु न करु चित चैन।
बिन्दु गये जिमि गैन तें रहत ऐन को ऐन॥ ७८॥

(जग नाम जगत सम समुझु) जग संसार में नाम पाना नामी

होगा—जगत ही के समान झूठा जानना चाहिये अर्थात् जैसे जगत भ्रम है सत्य नहीं है वैसे ही इस में नामी होना भी व्यर्थ है क्योंकि अन्त को कुछ भी न रहेगा।

अथवा जगत शब्द में का त निकाल लो तो वह जग हो जायगा दोनों समान असत्य होंगे। यह (बस्तु न चित चैन करु) कोई सत्य पदार्थ नहीं है ऐसा अपने मन में विश्वास करो जैसे फ़ारसी के दो अक्षरों ع غ में कुछ भेद नहीं है यदि ग़ैन के ऊपर से बिन्दु उठा लो तो केवल ऐन रह जायगा।

अभिप्राय यह कि फ़ारसी में ऐन भला अक्षर है उस पर बिन्दु रखने से अशुभ हो जाता है वैसे ही बिन्दुरूप विषयाभिलाष न रहने से शरीर सुखदाई होता है।

अथवा इस नश्वर शरीर में चैतन्यरूप ऐन परमात्मा का स्वरूप है उस के ऊपर बिन्दु लगाने से वह शरीररूपी (झूठा ग़ैन) हो जाता है ॥ ७८ ॥

आपु हिँ ऐन बिचारु बिधि सिद्धि बिमल मतिमान। आन बासना बिन्दु सम तुलसी परम प्रमान ॥ ७९ ॥

अ०-मतिमान बिमलसिद्धि आपु हिँ ऐन बिधि बिचारु तुलसी परम प्रमान, आन बासना बिन्दु सम ॥

ज्ञानस्वरूप और निर्मल सिद्धियों को धारण करनेवाले परमात्मा के स्वरूप अपने आत्मा को ऐन के समान बिचारो तुलसी-दास अत्यन्त प्रमान से कहते हैं कि और सब बासना देहाभिमान विषयाभिलाष आदि बिन्दु के समान जानना चाहिये।

अभिप्राय यह कि—इस शरीर का चैतन्यरूप आत्मा यद्यपि मल-रहित है तौ भी पञ्च-भौतिक शरीर का अभिमानी हो कर संसारी बासना और विषय के अधीन हो कर सुख दुःख का भागी होता है ॥७९॥

धन धन कहइ न होत कोउ, समुझि देखु, धनमान।
होत धनिक तुलसी कहत दुखित न रहत जहान ॥८०॥

तुलसी-दास कहते हैं कि केवल धन २ बकने से कोई कभी धनिक नहीं हो सकता, इस बात को अपने मन में समुझ कर बिचारो। और यदि कहने ही से कोई धनिक होता तो जहान में कोई दुखित दरिद्र न रहता, सब धनिक हो जाते।

अभिप्राय यह कि केवल बिना समझे बूझे पुराणादिक का पाठ करने से बिशेष लाभ नहीं यदि उन में कही हुई साधना न करे। इसी का दृष्टान्त ऊपर के दोहे में दिया गया है ॥ ८० ॥

हिम की मूरति के हिये लगी नीर की प्यास।
लगत सबद गुरु तरनि कर सो मैं रही न आस ॥८१॥

हिम की मूर्ति के मन में जल की प्यास लगी (गुरु तरनि सबद कर लगत सो मैं आस न रही) परन्तु गुरुरूपी सूर्य के उपदेश-रूपी किरणों के लगने से वह आप गल कर पानी हो गई तब उस में जल की आश वा प्यास न रही वा नष्ट हो गई।

अभिप्राय यह कि हिम-मूर्ति यह मनुष्य शरीर इस को जल-रूपी

संसारी सुखो की इच्छा ऊई परन्तु बीच में सूर्य के समान गुरु के उपदेशरूपी किरणों के लगने से वह आशा जाती रही ॥

अथवा-(मूरति के हिये हिम-नीर की प्यास लगी) मनुष्य को बर्फ के जल की प्यास (विषय तृष्णा) लगी । फिर सूर्यरूपी गुरु के उपदेश के लगते ही उस मनुष्य में विषयरूपी हिम की प्यास इच्छा न रही ॥ ८१ ॥

जा के उर बर बासना भई भास कछु आन ।
तुलसी ताहि बिड़म्बना केहि बिधि कथहिँ प्रमान ॥८२॥

तुलसी-दास कहते हैं कि (बर बासना जा के उर कछु आन भास भई ताहि बिड़म्बना प्रमान केहि बिधि कथहिँ ।) जिस के हृदय में उत्तम इच्छा कुछ और ही प्रकार से भासमान ऊई उस के भ्रमों के प्रमाणों को किस प्रकार कह सकते हैं अर्थात् उस के भ्रम को प्रमाणित करके मिटा देना बऊत कठिन है ।

अभिप्राय यह कि आत्मा के पाने की उत्तम इच्छा के रहने पर भी जब मनुष्य के मन में झूठे संसारी सुखों की अभिलाषा होती है तो वह केवल विड़म्बना है ॥

अथवा-(जा के बर उर बासना भई) जिस के निर्मल मन में विषय सुख की इच्छा ऊई । (ताहि आन विड़म्बना भास प्रमान केहि बिधि कथहिँ ।) उस के और आड़म्बरों की झुठाई का प्रमाण कौन कह सकता है ? ॥ ८२ ॥

रुज तन-भव परिचय बिना भेखज कर किमि कोइ ।
जानि परइ भेखज करइ सहज नास रुज होइ ॥ ८३ ॥

(तन भव रुज परिचय बिना कोई किमि भेखज करै) शरीररूपी संसार रोग जन्म मरण दुःख आदि वा शरीर में उत्पन्न रोग को बिना जाने कोई किस प्रकार उस की औषधी कर सकता है जब रोग पहिचान परे तो तुरन्त गुरु-बचन-रूप औषध करने से सहज ही में रोग छुट जा सकता है ॥ ८३ ॥

मानस व्याध कुचाह तव सत गुरु बैद समान ।
जासु बचन अल बल अवस होत सकल रुज हान ॥ ८४ ॥

(तव कुचाह मानस व्याधि) तुम्हारी संसारी सुख और विषय बासना ही मानसिक रोग है और उत्तम गुरु रोग को दूर करने-हारे वैद्य के समान हैं (जासु अल बचन बल सकल रुज हान अवस होत) जिस के समर्थ उपदेश के बल से सब रोग अवश्य छूट जाते हैं ।

तिरासी के दोहे में रोग का परिचय आदि वर्णन कर के ८४ में उस को भली भाँति समझा कर उस के छूटने की औषधी भी बतलाया है अब ८५ में औषध करने पर कभी रोग अच्छा हुआ कि नहीं इस का पहिचान कहेंगे ॥ ८४ ॥

रुचि बाढ़इ सत-सङ्ग महँ नीति-छुधा अधिकाइ ।
होत ग्यान बल पीन अल ब्रिजिन बिपति मिटि जाइ ॥ ८५ ॥

सत्-सङ्ग में प्रीति अधिक हो न्याय पथ पर चलने की इच्छा बढ़े ज्ञान की शक्ति दृढ़ और (अल) समर्थ हो और दुःख और विपत्ति मिट जाय।

अभिप्राय यह कि रोग छूट जाने पर जैसे क्षुधा आदि के बढ़ने से बल सामर्थ आदि होती है वैसे ही उपदेश के फल इस दोहे में कहे हैं॥ ८५॥

सुकल पच्छ ससि स्वच्छ जिमि क्रिशन पच्छ दुति-हीन।
बढ़त घटत बिधि भाँति बिद तुलसी कहहिँ प्रबीन ॥ ८६ ॥

जैसे आकाश में कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की कान्ति एक २ कला कर के घटती जाती है और शुक्ल पक्ष में आकाश के बीच उन की शोभा बढ़ती है और वे स्वच्छ होते जाते हैं, (बिद) ज्ञानी अर्थात् कबि तुलसी-दास मनुष्य की वही दशा कहते हैं अर्थात् ज्ञान आदि के होने से मनुष्य की कान्ति बढ़ती है और अज्ञान आदि से क्षीण होती है॥८६॥

सत-सङ्गति सित पच्छ सम असित असन्त प्रसङ्ग।
जानु आपु कहँ चन्द्र सम तुलसी बदत अभङ्ग ॥८७॥

सत्-सङ्गति शुक्ल पक्ष के समान और दुर्जनों की सङ्गति कृष्ण पक्ष के समान है और अपने को चन्द्रमा के समान समझना चाहिये तुलसी-दास इस उपमा को अखण्ड बताते है।

अभिप्राय यह कि मनुष्यों की प्रीति दुष्टों की सङ्गति से कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा के समान घटे और सज्जनों के सङ्ग में शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा

के समान बढ़े तो समझना कि गुरु उपदेशरूपी औषध से उस का उपकार हुआ ॥ ८७ ॥

तीरथ-पति सत-सङ्ग सम भक्ति देव-सरि जान ।
बिधि उलटी गति राम की तरनि-सुता अनुमान ॥ ८८ ॥

सत्-सङ्ग जो है सोई तो तीर्थ-पति प्रयाग है और राम की भक्ति गङ्गा जी और (बिधि) करने योग्य काम (उलटी गति) उस के विरुद्ध अयोग्य काम अर्थात् शुभाशुभ दोनों प्रकार के कर्मों का परित्याग (तरनि-सुता अनुमान) अर्थात् यमुना जी जानना चाहिये।

अभिप्राय यह कि गङ्गा यमुना युक्त सत-सङ्ग-रूप प्रयाग बास के प्रभाव से रामचन्द्र के चरण में भक्ति का होना मुख्य फल है ॥ ८८ ॥

बर मेधा मानहु गिरा धीर धरम न्यग्रोध ।
मिलन त्रिबेनी मल हरनि तुलसी तजहु बिरोध ॥ ८९ ॥

धारण करनेहारी बुद्धि मानो (गिरा) सरस्वती हैं और धीरज धर्म अक्षय-बट, तुलसी-दास कहते हैं कि सब प्रकार के बिरोधों का छोड़ना सब पापों के हरनेहारी त्रिबेणी का मिलना है ।

अर्थात् भक्ति ज्ञान और कर्म तीनों का रूप त्रिबेणी के मेल से भला होता है कर्म को परमेश्वर को अर्पण करे ज्ञान से अपने स्वरूप को जाने और भक्ति से राम में प्रेम बढ़ावे तो परम पद पावे ॥ ८९ ॥

समुझब सम मज्जन बिसद मल अनीति गइ धोइ ।
अवसि मिलन सन्सै नहीँ सहज राम-पद होइ॥९०॥

(समुझब बिसद मज्जन सम) सन्त के समाज मेँ जा कर उन के भाव को समझना मानो प्रयाग मेँ निर्मल त्रिवेणी स्नान के समान है जिस से सम्पूर्ण पाप अधर्म निर्मूल हो जाता है इस प्रकार सहज ही मेँ रामचन्द्र का चरण अवश्य मिल जाता है इस मेँ कुछ संशय नहीँ है ॥९०॥

छमा बिमल बारानसी सुर-अपगा सम भक्ति ।
ग्यान बिसेसर अति-बिसद लसत दया सह सक्ति॥९१॥

सन्त समाज और प्रयाग का रूपक वर्णन कर के परमेश्वर शिव ज्ञान और दुर्गा दया आदि का रूपक कहते हैँ ।

क्षमा जो है सोई निर्मल काशी है और भक्ति जो है सोई गङ्गा जी हैँ अत्यन्त निर्मल ज्ञान विश्वनाथ हैँ जो दयारूपी (सक्ति) पार्वती के सहित विराजते हैँ ॥९१॥

बसत छमा ग्रिह जासु मन बारानसी न दूरि ।
बिलसत सुर-सरि भक्ति जहँ तुलसी नय-क्रित भूरि॥९२॥

तुलसी जहँ जासु मन गृह क्षमा बसत, भूरि नय-कृत सुर-सरि भक्ति विलसत वारानसी न दूरि ।

तुलसी-दास कहते हैँ कि कोई चाहे किसी स्थान मेँ रहे यदि

उस के मनरूपी घर में क्षमा हो और अति धर्म और नीति युक्त गङ्गा जी रूपी भक्ति बिराजमान हो तो (ऐसे पुरुष के लिये) काशी दूर नहीं है॥

अभिप्राय यह कि काम क्रोध के बश क्षमा दया हीन पुरुष के लिये वाराणशी फल-दायिनी नहीं होती और उन गुणों से युक्त जन के लिये सब स्थान काशी ही है॥९२॥

सित कासी मगहर असित लोभ मोह मद काम।
हानि लाभ तुलसी समुझि बास करहु बसु जाम॥९३॥

(सित) शुक्ल पक्ष अर्थात् ज्ञान भक्ति क्षमा दया सत्सङ्ग आदि काशी है और (असित) कृष्ण पक्ष लोभ मोह काम क्रोध अहङ्कार आदि मगध है (तुलसी हानि लाभ समुझि बसु जाम बास करऊ) तुलसी-दास कहते हैं कि अपनी हानि लाभ समझ कर आठो पहर निवास करना चाहिये।

अभिप्राय यह है कि शुभ गतिदाई स्थान काशी और अशुभदाई स्थान मगध तुम्हारे शरीर ही में बतला दिया अब शुभ गति चाहो तो सर्वदा क्षमा दया आदि रक्खो और अशुभ चाहो तो काम क्रोध के वश रहो दोनों बात तुम्हारे ही अधीन हैं॥९३॥

गये पलटि आवै नहीं है सो करु पहिचान।
आजु सोई सोइ कालिह है तुलसी भरम न मान॥९४॥

जो समय बीत गया है सो फिर नहीं आवेगा जो बर्तमान है उसे तू भली भाँति पहिचान ले तू जो आज है सोई कल भी रहेगा

अर्थात् तेरा आत्मा त्रिकाल में अनश्वर है इस बात में तुलसी-दास कहते हैं कि तुझे सन्देह नहीं करना चाहिये।

द्वितीयार्थ—यदि यह मनुष्य जन्म बीत जावेगा तो फिर इस का मिलना बहुत कठिन है इस लिये जिस मनुष्य देह में बर्तमान है उसे भली भाँति चीन्ह कर शुभ कर्म करो जिस के लिये कोई साइत देखना न चाहिये जो आज है सोई कल है इस में कुछ सन्देह नहीं है॥ ९४॥

बर्तमान आधीन दोउ भावी भूत बिचार।
तुलसी सन्सय मन न करु जो है सो निरुवार॥ ९५॥

भावी अर्थात् जो होगा (मरण) और भूत अर्थात् जो हो गया है (जन्म) इन दोनों का विचार तुम्हारे बर्तमान शरीर वा कर्म के अधीन है तुलसी-दास कहते हैं कि तुम अपने मन में किसी प्रकार का सन्देह मत करो परन्तु जो बर्तमान है उस का उद्धार कर अथवा जो तू है अर्थात् चैतन्य परमात्मा का रूप उसे तू निश्चय कर।

अभिप्राय यह है कि जो कुछ हुआ और जो कुछ होगा उस की चिन्ता को छोड़ आत्म-तत्व का बिचार कर इसी में तेरा कल्याण है क्योंकि इस से और भावी जन्म मरण का क्लेश तुझे न भोगना पड़ेगा॥ ९५॥

मान-सरो-बर मन मधुर राम सुजस सुचि नीर।
हरइ त्रिजिन बुधि बिखद अति बुध नय अगम सुधीर॥ ९६॥

मन जो है सोई मान-सरोवर तड़ाग है उस में रामचन्द्र का सुन्दर यश पवित्र और मीठा जल है वह वृजिन अर्थात् दुःख को हरता है और बुद्धि को अत्यन्त निर्मल कर के पण्डितों की नीति को सुस्थिर कर देता है। जहाँ "हटेउ ब्रिजिन बुधि बिमल भइ बुध नहिँ अगम सुधीर" पाठ हो वहाँ बुद्धि के निर्मल हो जाने से दुःख दूर हो जाता तब वह सर पण्डितों के लिये सुस्थिर और सुलभ्य हो जाता है, ऐसा अर्थ करना। इस दोहे में रूपक अलङ्कार स्पष्ट है ॥ ९६ ॥

अलङ्कार कबि-रीति-युत भूखन दूखन प्रीति।
बारि-जात बरनन बिबिध तुलसी बिमल बिनीति॥९७॥

अब कबिता में जो२ विषय पाये जाते हैं उन का वर्णन करते हैं। (अलङ्कार कबियों की रीति बर भूखन प्रीति दूखन बिधि और बिमल अबिनीति बरनन बारि-जात) जिस प्रकार स्त्री को गहने से शोभा होती है उसी रीत कबिता में शब्द और अर्थ के भेद से दो प्रकार के अलङ्कार होते हैं॥

कबि रीति (कबि संप्रदाय) यथा नदी में कमल वर्णन, स्त्री के लात मारने से अशोक का विकसना, शराब के कुल्ले से मवसरी का फूलना आदि*। (भूखन दूखन रीति) गुणदोष यथा ओज, प्रसाद

---

* स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः शीधुगण्डूषसेकात्
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम्।
मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाता-
च्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्त्तनात् कर्णिकारः। १।

अलङ्कार और गुणदोषों के जानने के लिये "बिहारी तुलसीभूषण-बोध' नाम मेरी पुस्तक देखना भला होगा॥

माधुर्य गुण और श्रुतिकटु अश्लील ग्राम्य आदि दोष। इन सभों से युक्त (बिनीति बिमल) और तुलसी-दास की नम्रता से निर्मल जो (बिबिध बरनन) अनेक प्रकार की वर्णना वही इस कविताकृपी सरोवर में (बारि-जात) कमलरूप हैं॥ ९७॥

बिनय बिचार सुह्रियता सोइ पराग रस गन्ध।
कामाऽऽदिक तिहिँ सर लसत तुलसी घाट प्रबन्ध॥९८॥

इस काव्यरूपी तालाव के कमलों में नम्रता पुष्परज, कमल की धूली है, विचार रस है और मित्रता गन्ध अर्थात् कमल का सुगन्ध है, और काम तथा आदि पद से धर्म अर्थ मोक्ष चारो घाट की रचना सोभित हैं। नम्रता का उदाहरण जैसे "तुलसी राम क्रिपाल तेँ कहि सुनाव गुन दोख। होत दूबरी दीनता परम पीन सन्तोख"॥ रस भक्तिरस जैसे "ज्यों जग बैरी मीन के आपु सहित परिवार। त्यों तुलसी रघुनाथ बिनु अपनी दसा बिचार" गन्ध सब से मेल जैसे "तुलसी मीठे वचन तेँ सुख उपजत चहुँ ठौर। बसीकरण यह मन्त्र है तजि दे बचन कठोर"॥ ९८॥

प्रेम उमँगि कविता-ऽवली चली सरित सुचि सार।
राम बरा पुरि मिलन हित तुलसी हरख अपार॥९९॥

जिस प्रकार उस मान-सरोवर से सरयू निकलीं उसी रीत इस मान-सरोवर-रूपी मन से प्रेमरूपी तरङ्ग पूर्ण कवित्त समहरूपी

पवित्र और (सार) श्रेष्ठ वा उत्तम नदी (सरयू) अपार आनन्द के सहित (राम बरा पुरि मिलन हित) रामचन्द्र की उत्तम पुरी के मिलने के लिये चली।

अभिप्राय यह कि मान-सरोवर-रूपी मन से कविताऋपी नदी निकले तो रामचन्द्र के सुयश और उन की पुरी आदि का वर्णन करे जिस से अर्थ धर्म काम मोक्ष मिलें ॥९९॥

तरल तरङ्ग सुछन्द बर हरत द्वैत तरु मूल।
वैदिक लौकिक विधि बिमल लसत बिसद बर कूल ॥ १०० ॥

इस कविताऋपी नदी में अनेक प्रकार के छन्द जो हैं सोई चञ्चल तरङ्ग हैं जो वेद की विधि और लौकिक विधि अर्थात् वैदिक लौकिक दोनों मतरूपी निर्मल उत्तम किनारों में के द्वैत अर्थात् जीव और ईश्वर दोनों भिन्न हैं इत्यादि मत अथवा लौकिक वैदिक दोनों रीतरूपी वृक्ष की जड़ को उखाड़ डालते हैं ॥१०० ॥

सन्त-सभा बिमला नगरि सकल सुमङ्गल-खानि।
तुलसी-उर सुर-सर-सुता लसत सुथल अनुमानि ॥ १०१ ॥

सकल सुमङ्गल-खानि सन्त-सभा बिमला नगरि तुलसी उर सुथल अनुमान सुर-सर-सुता लसत ॥

अयोध्या को पवित्र जान कर उस में सरयू बहती है परन्तु यहां

सब उत्तम उत्तम कथाओं की खानि (सज्जन) साधुओं की सभा निर्मल नगरी (अयोध्या-पुरी) में तुलसी-दास के हृदयरूपी उत्तम स्थान को अनुमान कर सरयू-नदीरूपी (कबिता) शोभित होती है॥ १०१॥

मुक्त मुमुच्छू बर बिखयि स्रोता त्रिबिधि प्रकार।
ग्राम नगर पुर जुग सुतट तुलसी कहहिँ बिचार॥१०२॥

तुलसी-दास बिचार कर के कहते हैं कि जैसे सरयू नदी के दोनों किनारों पर ग्रामादि बसते हैं वैसे ही नदीरूपी कबिता के सुननेहारे तीन प्रकार के हैं अर्थात् मुक्त मुमुचु और बिषयी तीनों प्रकार के श्रोता ग्राम नगर पुर हैं।

मुक्त श्रोता वे कहाते हैं जो एक रस कथा में मन दे कर सुनते, मुमुचु वे जो मुक्ति पाने की इच्छा से कथा सुनते हैं और उन को कथा सुनने की इच्छा भी है परन्तु मन एक रस नहीं है और बिषयी वे जो बिषय सुख में मन रखते हैं परन्तु थोड़ी श्रद्धा कथा में भी है॥ १०२॥

बारानसी बिराग नहिँ सैल-सुता-मन होय।
तिमि अवधहिँ सरजू न तज कहत सु-कबि सब कोय॥ १०३॥

सैल-सुता-मन बारानसी बिराग नहिँ होय तिमि सरयू अवधहिँ न तज सब कोय सुकबि कहत॥

जिस प्रकार (शैल) हिमालय तिस की पुत्री पार्वती अथवा उसी पहाड़ से निकलनेहारी गङ्गा जी का मन काशी जी से अलग नहीं होता अर्थात् वह काशी को नहीं छोड़तीं उसी प्रकार सरयू अयोध्या को नहीं छोड़तीं ऐसा सब अच्छे अच्छे कवि लोग कहते हैं।

अभिप्राय यह है कि सरयूरूपी कविता अयोध्यारूपी सन्त-सभा को नहीं छोड़ती ॥ १०३ ॥

कहब सुनब समुझब सो पुनि सुनि समुझाइब आन ।
स्रम-हर घाट प्रबन्ध बर तुलसी परम प्रमान ॥१०४॥

इति श्रीगोस्वामी-तुलसीदास-कृत सप्तशतिकायां
आत्मबोधनिर्देशो नाम
चतुर्थः सर्गः ॥

तुलसी परम बर प्रबन्ध कहब सुनब समुझब पुनि सुनि आन समुझाइब सो स्रम-हर घाट प्रमान ॥

तुलसी-दास के इस अत्यन्त उत्तम ग्रन्थ वा कविताॆरूपी सरयू का कहना सुनना समुझना और सुन कर दूसरों को समुझाना जो है वही परिश्रम को दूर करनेहारा घाट है। सरयू नदी में परिश्रम से थके हुये जो लोग आ कर स्नान करते हैं उन का श्रम मिट जाता और वे बड़े आनन्द को पाते हैं परन्तु इस संसार के जीवों का अत्यन्त दुखदायी परिश्रम उन का बार २ जन्म लेना और मरना है सो ब्रह्मज्ञान न होने के कारण से होता है और ब्रह्मज्ञान

देनेहारी तुलसी-दास की कविता को पढ़ने सुनने से आत्मतत्त्व प्राप्ति होती है और जीवों का संसार में बार २ जन्म मरन का क्लेश दूर हो जाता है।

ऊपर के कई एक दोहों में रूपक अलङ्कार है। १ अर्थ २ धर्म ३ काम ४ मोक्ष का लाभ इस प्रकार होता है कि सेवा से अर्थ पाना, श्रद्धा से अर्थ को भले काम में लगाने से धर्म और अर्थ धर्म से काम आप ही सिद्ध होता है फिर राम-भजन गुण-गान आदि से मुक्ति सहज ही से मिल सकती है, इस प्रकार सब फल प्राप्त हो सकता है ॥ १०४ ॥

इति विहारि-कृत-संक्षिप्तटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥०॥

अथ पञ्चम सर्ग।

अतन अनूपम जानु बर सकल-कला*-गुन-धाम।
अबिनासी अव्यय अमल भौ यह तनु धरि राम॥१॥

प्रथमार्थ (सकल-कला-गुण-धाम अविनाशी अव्यय अमलअनुपम राम) सब *कला और गुण से पूर्ण, नाश रहित, आदि अन्त हीन,

---

* कला (हुनर) ६४ चौसठ हैं यथा—१ गीत। २ वाद्य...बजाना। ३ नृत्य..नाचना। ४ नाट्य...नाटक की खेल। ५ आलेख्य...चित्र बनाना। ६ विशेषच्छेद्य...हीरा आदि वेधना। ७ पुष्पास्तरण...फूल का बिछौना आदि बनाना। ८ दसनवसनाङ्गराग...रङ्गना। ९ मणिभूमि का कर्म... मणि की रचना आदि। १० शयन रचना...सेज बनाना। ११ उदक-वाद्य...जलतरङ्ग बजाना। १२ उदकघात...जलताड़न। १३ चित्रयोग ...तस्वीर का सजना। १४ माल्यग्रन्थन...मालागूँथना। १५ शेखरा-पीड़योजन...मुकुट आदि विधान। १६ नेपथ्ययोग...शृङ्गार करना और वेश बनाना। १७ कर्णपत्रभङ्ग...कुण्डलादि। १८ सुगन्धयुक्ति...अतर आदि बनाना। १९ भूषणयोजना...गहना आदि की रचना। २० इन्द्र-जाल। २१ कौसुमारयोग...बजरूपियापन। २२ हस्तलाघव...पटे-पाजी०। २३ भोज्यविकार...अनेक व्यंजन बनाना। २४ पानकरसरागा-सवयोजन...केवड़ामद्य आदि। २५ सूचीवाणकर्म...वाणचलाना। २६ सूत्रक्रीड़ा...चकईलट्टूखेल आदि। २७ प्रहेलिका...बुझउल कहनी।

सनातन निर्मल जिस के समान और कोई नहीं है ऐसे राम विष्णु भगवान ने (भव) संसार में (यह तनु धरि) इस मनुष्य के शरीर को धारण किया उन की आराधना को (वर जतन जानु) उत्तम यत्न वा काम जानना चाहिये ॥

---

२८ प्रतिमाला...पसुबोली । २९ दुर्वचकप्रयोग...कुलविद्या । ३० पुस्तक बाँचना । ३१ नाटकाख्यायिकादिदर्शन । ३२ काव्य समस्यापूर्ति । ३३ पट्टिका वाङ्वेत्रविकल्प—बेत का पलङ्ग आदि बिनना । ३४ तर्क ३५ तक्षण...बढ़ई का काम । ३६ वस्तुविद्या...थवई । ३७ सर्वांरत्न परीक्षा । ३८ धातुवाद । ३९ मणिरागज्ञान...हीरा, जवाहिरी । ४० आकर ज्ञान । ४१ वृक्षायुर्वेदज्ञान । ४२ मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि—भेड़ा आदि लड़ाने की रीत । ४३ शुकशारिका प्रलापक—चिड़ियों की बोली । ४४ उत्सादन—उच्चाटन । ४५ केशमार्जन कौशल । ४६ अक्षरमुष्टिका कथन...मूकप्रश्न । ४७ म्लेच्छितकुतर्कविकल्प । ४८ देशभाषाज्ञान । ४९ पुष्पसकटिकानिमितज्ञान...फूल से गाड़ी बनाना । ५० यन्त्रमालिका—काठपुतली । ५१ सम्वाच्य...मन का प्रश्न । ५२ मानसीकाव्य । ५३ अभिधानकोश । ५४ छन्दोज्ञान । ५५ क्रियाविकल्प...कार्य्यसिद्धि । ५६ छलितकयोग—छलजानना । ५७ वस्त्रगोपन...अंग के वस्त्र की रक्षा । ५८ द्यूतविशेष...पासा खेलना । ५९ आकर्षक्रीड़ा...खेल को अपनी ओर खींचना । ६० बालक्रीड़नकानि । ६१ वैनायिकीनां सभाचातुरी । ६२ वैजयिकीनां—जयदेनेवाली विद्या । ६३ वैयासिकीनां ज्ञानम्—पुराणादिबाँचने की चातुरी । ६४ षड्विध राजनीति—(सन्धि, विग्रह, यान, आसन द्वैधीभाव और आश्रय) ।

इति शिवतन्त्रोक्त-चतुःषष्ठि-कला ॥

द्वितीयार्थ—(यह तनु सकल कला-गुन-धाम बर जानु) संसार में इस मनुष्य देह को सब विद्या और गुणों का स्थान और श्रेष्ठ समझो क्योंकि (अनुपम अविनाशी अव्यय अमल राम यह तन धर्‌यौ) उपमा, नाश आदि अन्त और दोष हीन राम इस शरीर के धारण करनेहारे हुये। कई एक पुस्तकों में "ये तन अनुपम" आदि पाठ है वहाँ द्वितीयार्थ करना उत्तम होगा, और इस अर्थ में मनुष्य शरीर की बड़ी प्रशंसा हुई ॥ १ ॥

सदा प्रकासक रूप बर अस्त न अपर न आन।
अप्रमेय अद्वैत अज या तें दुरत न ग्यान ॥ २ ॥

अन्वय। सदा प्रकासक वर रूप अस्त न अपर न अप्रमेय अज आन न अद्वैत या तें ज्ञान न दुरत।

सदा सर्वदा अपने प्रकाश से सब को प्रकाशित करनेवाले उत्तम-रूपवाले, कभी जिस का नाश नहीं होता, दूसरे नहीं परमेश्वररूप, मन वचन कर्म से जिस के परिमान को कोई नहीं जान सकता, (उसे अप्रमेय कहते हैं) आप से आप उत्पन्न ब्रह्मरूप अन्य नहीं केवल परमात्मा के रूप इसी कारन उन से ज्ञान कभी दूर नहीं होता अर्थात् ज्ञानरूप राम हैं॥

द्वितीयार्थ में "सब विशेषण अज अद्वैत ब्रह्म का लगा कर अर्थ करना चाहिये कि ऐसे ब्रह्म का रूप जो ज्ञान सो (या तें) इस मनुष्य देह से दूर नहीं होता" कहना चाहिये॥ २ ॥

जानहिँ हन्स रसाल कहँ तुलसी सन्त न आन।
जा की क्रिपा-कटाछ तेँ पाये पद निरबान॥ ३॥

अन्वय (तुलसी सन्त हन्स रसाल कहँ जानहिँ न आन जा की क्रिपा-कटाछ तेँ निर्वान पद पाये)।

तुलसी-दास कहते है कि साधु जन पर-ब्रह्म विष्णु-रूप राम को वा सूर्य्य को और जल के रस वा (रस शब्द से यहाँ जल लेना चाहिये) पानी को जानते हैँ अर्थात् वे यह समझते हैँ कि जिस प्रकार सूर्य्य की किरणोँ से जल वर्षा ऋतु मेँ भूमि पर बरसता है और फिर ग्रीष्म मेँ उन्ही किरणोँ के द्वारा सूख जाता है और कुछ नदी पोखरा आदि मेँ रह जाता है उसी प्रकार परमेश्वर का रूप जीव ईश्वर की माया प्रकृति से संसार मेँ आता और फिर उन्ही की दया से मुक्ति पाता है और इस को साधु जन जानते हैँ दूसरे नहीँ जानते। उन्ही की दया दृष्टि से मुक्ति पद मिलता है॥

जहाँ "जान हन्स सुर-सम कहहु तुलसी सन्त न आन" पाठ हो वहाँ (तुलसी कहहु हन्स सुर-सम सन्त जान न आन) तुलसी-दास ने कहा है कि सूर्य देवता के समान तेजस्वी साधु लोग इस मनुष्य शरीर के महात्म्य को जानते हैँ दूसरा कोई नहीँ जानता (जा की क्रिपा-कटाछ तेँ निरबान पद पाये) जिस की दया दृष्टि से मुक्ति पद मिलता है ऐसा अर्थ करना चाहिये।

अभिप्राय यह कि देवतादिकोँ का शरीर केवल भोग के योग्य है परन्तु मनुष्य शरीर से सब प्रकार का पुन्य ईश्वर भजन और भोग भी हो सक्ता है॥ ९॥

तजत सलिल अपि पुनि गहत घटत बढ़त नहिँ रीति।
तुलसी यह गति उर निरखि करिय राम पद प्रीति॥४॥

सूर्य नारायण अपनी किरणोँ से भूमि के जल को खींच लेते हैँ फिर बरसाते हैँ उन की यह रीति है और खींच लेने और बरसाने मेँ जल घटता बढ़ता नहीँ वा उन की रीत न्यून और अधिक नहीँ होती। तुलसी-दास कहते हैँ कि अपने हृदय से आत्मा की भी वैसी ही गति समझ कर रामचन्द्र के चरण मेँ प्रेम करना चाहिये। अभिप्राय यह कि आत्मा घटता बढ़ता नहीँ केवल शरीर घटता बढ़ता है इस कारण साधुओँ को चाहिये कि शरीराभिमान छोड़ कर परमात्म-स्वरूप रामचन्द्र की भक्ति करेँ॥४॥

चुम्बक अस्मन रीति जिमि सन्तन हरि सुख-धाम।
जानति रिच्छ-रसम सफरि तुलसी जानत राम॥५॥

जैसे चुम्बक को देख कर (अस्मन) लोहा खींच उठता है (सन्तन सुख-धाम हरि रीति तिमि) उसी प्रकार साधु जन को सुख देनेहारे परमेश्वर की चेष्टा अपने भक्तोँ की ओर होनी चाहिये। (रिच्छ रसम सफरि जानत) नक्षत्र की रीति को मछली जानती है अर्थात् अश्विनी से छठवीँ नक्षत्र आर्द्रा को जान कर मछली अण्डा देती हैँ उसी प्रकार से रामचन्द्र की रीति को तुलसी वा और भक्त लोग जानते हैँ यदि जान। तिरीछ, रसम पदच्छेद करो, तो जल की तीखीधार मेँ तैरने की रीत मछली जानती है वैसे ही भक्त, राम-

रीति जानते हैं ऐसा अर्थ करना चाहिये। कई एक पुस्तकों में आहन पाठ है कदाचित वह आहत शब्द से विगड़ कर बना है अर्थात् जो पीटा गया हो। असन पाठ रखने से ठीक ठीक अर्थ होता है ॥ ५॥

भरत हरत दरसत सबहिँ पुनि अदरस सब काहु ।
तुलसी सु-गुरु-प्रसाद-बल होत परम पद लाहु ॥ ६ ॥

(भरत सबहिँ दरसत) जैसे जब सूर्य नारायण बर्षा ऋतु में जल बरसा कर संसार को भरते समय सब को देख पड़ते हैं परन्तु ग्रीष्म ऋतु में सुखाते समय उन की रीति नहीँ देख पड़ती वैसे ही संसार की गति है अर्थात् प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रीति से इस की उत्पत्ति पालन और नाश होता है तुलसी-दास कहते है कि उत्तम गुरु की दया से इन ब वस्तुओँ का ज्ञान होता है तब मुक्ति मिलती है ॥ ६ ॥

यथा प्रतच्छ स्वरूप बहु जानत है सब कोय ।
तथा हि लय-गति को लखब असमञ्जस अति सोय॥७॥

अन्वय। (यथा सब कोय बहु स्वरूप प्रत्यच्छ जानत है) सब लोग जिस प्रकार संसार मे अनेक प्रकार के रूप को प्रत्यक्ष देखते हैं (तथा हि को लय-गति लखब) वैसे ही नाश की गति को कौन जान सकता है (सोय अति असमञ्जस) वह तो अति कठिन है अर्थात् मरने के अनन्तर मनुष्य की क्या गति होती है इस का जानना बहुत कठिन है ।

द्वितीयार्थ। अन्वय (सब कोय यथा प्रत्यच्छ बहु स्वरूप जानत हैं) सब कोई जिस प्रकार प्रत्यक्ष बहुतेरे स्वरूप अर्थात् पञ्च भूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) से जगत की उत्पत्ति को जानते हैं (तथा हि लय गति को लखब) उसी प्रकार निश्चय इन के लय होने के प्रकार को (अर्थात् पृथ्वी जल में जल तेज में इत्यादि) भी जानना चाहिये। परन्तु (सोय अति असमञ्जस) उस परब्रह्म मुक्तिरूप राम का जानना अति कठिन है ॥ ७ ॥

यथा सकल अप जात अपि रबि मण्डल के माँहिँ ।
मिलन तथा जिव राम पद होत तहाँ लय नाहिँ॥८॥

(यथा सकल अप रबि मण्डल के माहिँ जात तथा जीव राम पद मिलन जात तहाँ लय नाहिँ होत) जिस प्रकार से सब जल निश्चय कर सूर्य के मण्डल में जा कर लीन हो जाता है उसी प्रकार जब जीव राम पद में जा कर लीन होता है तो वहाँ इस का नाश नहीँ होता।

अभिप्राय यह कि जैसे जल भूमि से वाफ के आकार में बदल कर आकाश में जा कर सूर्य में मिलता और इस का नाश नहीँ होता वैसे ही जब तक जीव संसार में है तब तक यह अपना शरीर बदला करता है। उस को जन्म मरन कहते हैँ परन्तु जब रामचन्द्र के चरण में मिला तो सब प्रकार के दुःखों से छूट कर मुक्त हो जाता है।

अथवा। रवि से आया जल किरणों के द्वार सुख-कार फिर

सूर्य मण्डल में जाता और बादल हो कर आकाश में रहता है फिर वर्षा में बरसता है सूर्य में मिल नहीं जाता उसी प्रकार जीव अपने शरीर को बदला करता है परन्तु लय नहीं होता ॥ ८ ॥

करम कोस सङ्ग लै गयो तुलसी अपनी बानि ।
जहाँ जाइ बिलसै तहाँ परै कहाँ पहिचानि ॥ ९ ॥

(तुलसी अपनी बानि करम कोस सङ्ग लै गयो) तुलसी-दास कहते हैं कि जीव अपने स्वभाव ही से अपने कर्म का भण्डार ले गया और ले जाता है (जहाँ जाइ तहाँ बिलसै पहिचानि कहा परै) जहाँ जीव जाता है वहाँ अपने कर्म को भोगता है तो उस कर्म की माया में भूले जीव से अपना रूप परमात्मा किस प्रकार पहिचाना जा सक्ता है ॥

अभिप्राय यह कि शुभाशुभ कर्म जीव के साथ अवश्य जाता है चाहे जिस योनि में रहै परन्तु इसे कर्म का भोग अवश्य करना पड़ता है बिना ज्ञान के अपना परमात्मरूप पहिचाना नहीं जाता ॥ ९ ॥

ज्यों धरनी महँ हेतु सब रहत यथा धरि देह ।
त्यों तुलसी लय राम महँ मिलन कबहुँ नहिँ एह ॥१०॥

जैसे पृथ्वी में सब बीज अपने आकार (अर्थात् कोई मनुष्य कोई पशु पची कोई वृच आदि चर अचर रूप) से रहते है परन्तु आपस में मिल नहीं जाते उसी प्रकार परमात्मा रामचन्द्र में जीवात्मा लीन हो कर भी कभी आपस में मिल नहीं जाता है ॥ १० ॥

सोखक पोखक समुझ सुचि राम-प्रकास-सरूप।
यथा तथा बिभु देखिए जिमि आदरस अनूप॥ ११॥

(सुचि प्रकाश सरूप यथा सोखक पोखक समुझ) पवित्र प्रकाश-रूपी सूर्य जिस प्रकार लै और पालन के करनेहारे समझ पड़ते हैं (तथा बिभु राम जिमि अनूप आदरस सरूप देखिए) उसी प्रकार से व्यापक राम परमात्मारूप अनुपम दर्पन में सब जीवों को देखिये।

अभिप्राय यह कि उत्तम दर्पन में देखने से जिस प्रकार अग्नि जल मुखादि के रूप भली भाँति ठीक ठीक देख पड़ते हैं परन्तु उन के गुणों का लेप उस में नहीं लगता न वह आग से जल न पानी से भीग सके। यद्यपि सब उस में है तो भी वह निर्दोष है॥ ११॥

करम मिटाए मिटत नहिँ तुलसी किए बिचार।
करतब ही को फेर है या बिधि सार असार॥ १२॥

(तुलसी बिचार किए करम मिटाए नहिँ मिटत) तुलसी-दास ने विचार किया है कि अपना किया शुभ अशुभ कर्म मिटाने वा नष्ट करने से किसी प्रकार नष्ट नहीं होता (या बिधि करतब ही के फेर सार असार है) इस प्रकार अपने करतब ही के फेर से परमात्मा निर्दोष निर्मल है और जीव असार अर्थात् मलीन हुआ है और ये परस्पर विरुद्ध होने के कारण नहीं मिलते॥ १२॥

एक किए ह्वै दूसरे बहुरि तीसरो अङ्ग।
तुलसी कैस हुँ ना मिटै अतिसय करम तरङ्ग॥ १३॥

किये जाते, पूर्व जन्म के किये और होनेवाले तीन प्रकार के कर्म हैं। एक अर्थात्—किये जाते कर्म के करने से उस के साथ दूसरा होनेवाला भी होता है फिर तीसरा पूर्व जन्म कृत अपने (अङ्ग) शरीर ही के साथ उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार कर्म का तरङ्ग (अर्थात् वृद्धि) तुलसी-दास कहते हैं कि अत्यन्त है और किसी प्रकार नहीं नष्ट होता॥

अभिप्राय यह कि जो मनुष्य इस संसार में पूर्व जन्म में उत्तम कर्म किये हैं वा अब करते हैं उन को उस का फल सुख भोगना पड़ता है और जो पाप कर्म करते हैं उन्हे दुःख भोगना पड़ता है। कभी कभी पाप के करते पुन्य और पुन्य के करते पाप भी संयोग से हो जाता है। इस प्रकार दोनों कर्म करनेहारे संसारी कर्म की जाल में फस कर जन्म मृत्यु के भागी होते हैं॥ १३॥

इन दोउन्ह तें रहित भौ कोउ न राम तजि आन।
तुलसी यह गति जानिहै कोउ कोउ सन्त सुजान॥ १४॥

(इन दोनों तें रहित सुजान राम तजि आन न भौ तुलसी यह गति कोउ कोउ सन्त जानिहैं) इन दोनों प्रकार के शुभाशुभ कर्म्म से हीन सुजान आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्र को छोड़ कर और

को नहीँ हुआ अर्थात् जो दो कर्म से रहित हो कर ज्ञानी है वह ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। तुलसी-दास कहते हैँ कि इस कर्म जाल के भेद को कोई कोई बिरले साधु लोग जानैँगे ॥ १४ ॥

सन्तन को लै अमि-सदन समुझहिँ सुगति प्रवीन।
करम बिपरजै कबहुँ नहिँ सदा राम रस लीन ॥१५॥

पहले के कई एक दोहोँ मेँ विरोधाभास अलङ्कार द्वारा कर्म की प्रबलता दिखा कर अब साधु जनोँ के कर्म जाल मेँ न फसने का कारण कहते हैँ।

अन्वय (प्रवीन सन्तन अमि-सदन लै को सुगति समुझहिँ) ज्ञानी साधु जन अमृत के घर मेँ लीन रहना अर्थात् मुक्ति स्वरूप राम भक्ति मेँ लगे रहने को उत्तम गति जानते हैँ, क्योँकि इस मेँ कभी भी कर्म का हेर फेर नहीँ होता। क्योँकि वे जो कुछ कर्म करते हैँ उस के फल को परमेश्वर को अर्पण किये जाते हैँ। यद्यपि वे कर्ता हैँ तौ भी ममता न रहने के कारण कर्म बन्धन उन्हे नहीँ बाँधता और वे सर्वदा राम की भक्ति योग मेँ लीन रहते हैँ।

अभिप्राय यह कि अमृतरूप भक्ति योग मेँ लगे जन अपने शुभाशुभ कर्म को ज्ञानाग्नि से नष्ट कर परमानन्द के भागी होते हैँ ॥ १५ ॥

सदा एक रस सन्त सिय निसचय निसि-कर जान।
राम दिवा-कर दुख-हरन तुलसी सील निधान ॥१६॥

प्रथम अर्थ। सर्वदा एक भक्ति रस मेँ लगे हुये साधुओँ के लिये

सीताजी चन्द्रमा और अति सुशील और दुःखों को दूर करनेहारे राम सूर्य के समान हैं अर्थात् दिन को सूर्य्य और रात को चन्द्र प्रजाओं के दुख को हरते हैं उस प्रकार सीता राम भी हैं॥

सर्वदा एक रस भक्ति स्वरूप साधु जनों को (निशि-कर चन्द्रमा चदि आह्लादने धातु से निकला इस कारण) आनन्ददायक भक्ति स्वरूप सीता जी को जानना चाहिये और दुःख को हरण करनेहारे दिवाकर अर्थात् सूर्यरूप (शील-निधान) सुशील राम को जानना चाहिये॥ १६॥

सन्तन की गति उरबिजा जानहु ससि परमान।
रमित रहत रस-मय सदा तुलसी रति नहिँ आन॥१७॥

(सन्तन की गति उरबिजा ससि परमान जानहु) चन्द्रमा के सदृश उर्विजा भूमि से उत्पन्न जानकी जी को साधुओं की गति अर्थात् भक्ति अवस्था जानिये जहाँ रस पूर्ण श्रीरामचन्द्र जी (रमित रहत) विहार करते हैं (आन रति नाहीँ) और दूसरे में प्रीत नहीँ करते।

अभिप्राय यह कि जैसे जानकी जी में श्रीरामचन्द्र की प्रीत रहती है वैसे ही सीता सदृश साधु की भक्तिओं में भी रामचन्द्र प्रेम करते हैं॥

द्वितीयार्थ अन्वय। (सन्तन की आन रति नाहिँ) साधुओं को सीता छोड़ और किसी में प्रीति नहीँ है (ससि परिमान उरबिजा गति जानहु) चन्द्रमा के समान शीतल सीता ही उन की गति हैं (रसमय रति सदा रमित रहत) इस हेतु उन की आनन्दरस पूर्ण

भक्ति में वे लगे रहते हैं अर्थात् सीता जी के भजन में मगन रहते हैं ॥ १७ ॥

जात-रूप जिमि अनल मिलि ललित होत तन ताय ॥
सन्त सीत-कर सीय तिमि लसहिँ राम-पद पाय ॥१८॥

(जात-रूप) सोना जिस प्रकार अग्नि में रखने से अपने (तन) शरीर को (ताय) तप्त कर के लालभभूका हो जाता है, उसी प्रकार से साधुओं की बुद्धि (सीत-कर) चन्द्रमारूपी सीता और श्रीरामचन्द्र के चरण को पा कर सोभित होती है अर्थात् सीता-राम की भक्ति में साधुओं के मन लगे रहते हैं इस कारण सदा वे सुखी रहते हैं ॥ १८ ॥

आपुहिँ बाँधत आपु हठि कौन छोड़ावत ताहि ।
सुख-दायक देखत सुनत तदपि सु मानत नाहिँ ॥१९॥

इस संसार के मनुष्य लोग (आप हठि आपहुँ बाँधत) आप ही हठ कर के अपने को संसार की शुभाशुभ कर्मरूपी जाल में बाँधते हैं तो इन को कौन छोड़ा सकता है देखते और सुनते हैं कि ज्ञानमय रामचन्द्र और सन्त सुख देनेवाले हैं तौ भी उन को नहीं मानते परन्तु जन्म मरण आदि के अनेक दुख के देनेहारे विषय के पीछे दौड़ते हैं तो उन को कौन मुक्त कर सकता अर्थात् कोई नहीं कर सकता ॥ १९ ॥

जीन तार तें अधम गति उरध तीन गति जात ।
तुलसी मकरी तन्तु इव कब हुँ न करम नसात ॥२०॥

तुलसी-दास कहते हैं कि कर्म का फन्द मकरी की जाल सा है। मकरी जिस सूत से नीचे उतरती है उसी को पकड़ कर ऊपर चढ़ती है और उन्ही तारोँ से उस का ऊपर नीचे जाना आना लगा रहता है उसी प्रकार मकरी की जाल के समान कर्म कभी नष्ट नहीँ होता अर्थात् जिस प्रकार मकरी एक ही तार से ऊपर नीचे दौड़ा करती है तार नहीँ टूटता वैसे ही कर्म का भी तार नही टूटता इस के कारण लोग स्वर्ग नर्क भोगा ही करते हैँ॥२०॥

जहाँ रहत तहँ सह सदा तुलसी तेरी बानि ।
सुधरै बिधि-बस होइ जब सत-सङ्गति पहिचानि॥२१॥

जहाँ तू रहता है वहाँ तेरे साथ सदा तेरा कर्म और स्वभाव भी रहता है (तुलसी जब बिधि-बस सत-सङ्गति पहिचान होय तेरी बानि सुधरै) तुलसी-दास कहते हैँ कि जब भाग्यवश से तेरे मन मेँ सज्जनोँ की सङ्गति का पहिचान हो तो यह तेरी बानि सुधर जायगी ॥ २१ ॥

रबि रजनीस धरा तथा यह अस्थिर अस थूल ।
सूछम गुन को जीव कर तुलसी सो तन-मूल ॥ २२ ॥

(अथा रबि रजनीस धरा) जिस प्रकार सूर्य्य और चन्द्रमा

अपने अपने किरण और प्रकाश के द्वारा पृथ्वी (धरा शब्द से यहाँ लक्षणा द्वारा उस पर के जीवों को जानना चाहिये) का पालन करते हैं। (तथा यह अस्थिर अस थूल) वैसे ही अर्थात् उसी अस्थिर भूमि के समान जीवों का यह स्थूल-शरीर है। (तुलसी सो सूक्षम तन गुन को जीव कर मूल) तुलसी-दास उस सूक्ष्म शरीर के गुणों को जीवों का कारण कहते हैं अर्थात् जो जो वासना सूक्ष्म देह में रहती हैं वे ही स्थूल संसारी में होती हैं क्योंकि शास्त्र के नियमों से कारण के गुण कार्य्य में पाये जाते हैं। (कारण-गुणाः कार्य्यगुणानारभन्ते)।

वेदान्त के अनुसार पाँच पाँच ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय ग्यारहवाँ मन बुद्धि और पञ्च महाभूत सूक्ष्म शरीर हैं इस प्रकार दोनों प्रकार के शरीरों में वेही गुण और स्वभाव पाये जाते हैं ॥ २२ ॥

आवत अप रवि तें यथा जात तथा रवि माँहि।
जहँ तें प्रकट तहीं दुरत तुलसी जानत ताहि॥२३॥

(यथा अप रवि तें आवत रवि माँहि जात तथा (जीव) जहँ तें प्रकट तहीं दुरत तुलसी ताहि जानत)।

जिस प्रकार जल सूर्य्य से आता है और फिर सूर्य्य ही में चला जाता है अर्थात् सूर्य्य नारायण आठ महीने तक भूमि पर के जल को किरणों से सोख कर वर्षा काल के आने पर उसे फिर बरसाते हैं (अष्टौ मासान्निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु। स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्य्यन्यः काल आगते। भागवत १० स्क०) उसी प्रकार जहाँ से यह

जीव प्रगट होता है वहाँ हीँ अन्त मेँ जा कर (दुरत) मिल जाता है तुलसी-दास अथवा राम लक्ष्मण सीता के और भक्त उस बात को अथवा उस ईश्वर को जानते हैँ ॥ २३ ॥

प्रकट भये देखत सकल दुरत लखत कोइ कोय ।
तुलसी यह अतिसय अगम बिन गुरु सुगम न होय ॥ २४ ॥

(अन्वय) सकल प्रकट भये देखत कोइ कोय दुरत लखत तुलसी यह अतिसय अगम बिन गुरु सुगम न होय ।

सब लोग जिस प्रकार बरसते समय जल को देखते हैँ उसी प्रकार जब जीव जन्म लेता है तब सब लोग जानते हैँ और देखते हैँ परन्तु जब अदृश्य बाफ के आकार मेँ जल उड़ जाता है विरले ही मनुष्य देखते हैँ, वही दशा प्राण के मरने के समय होती है। तुलसी-दास कहते हैँ कि यह बात बड़ी कठिनता से जानी जाती है और बिना अच्छे गुरु के जानने के योग्य नहीँ होती। इस कारण उत्तम गुरु को खोजना और परमेश्वर का भजन करना बहुत आवश्यक हैँ ।

जहां "यह अतिसय अधम" पाठ हो वहां यह संसारी जीव बहुत नीच और बुद्धि-हीन है इस लिये बिना गुरु के परलोक संसारी जीव के लिये सुगम नहीँ हो सकता ऐसा अर्थ करना चाहिये ॥ २४ ॥

या जग जे नय-हीन नर बर बस दुख-मग जाहिँ ।
प्रकटँत दुरत महा-दुखी कँहँ लग कहियत ताहि ॥२५॥

(अन्वय) (या जग जे नर नय-हीन (ते) बर बस प्रकटत दुरत महा-दुखी दुखमग जाहिँ ताहि कँहँ लग कहियत)।

इस संसार में जो मनुष्य नीति से रहित हैं वे विषय में आसक्त होने के कारण हठ से अनेक योनि में जनमते और मरते हैं बड़े दुखी हो कर दुख की राह में जाते हैं उन का कहाँ तक वर्णन करें वे असङ्ख्य हैं ॥ २५ ॥

सुख-दुख-मग अपने गहे मग कोहुँ लगत न धाय।
तुलसी राम-प्रसाद बिन सो किमि जाने जाय ॥२६॥

(अन्वय) (अपने सुख दुख मग गहे मग धाय केऊँ न लगत तुलसी सो राम-प्रसाद बिन किमि जानो जाय)।

जीव अपनी ही इच्छा से सुख अर्थात् शान्ति दया नियम आदि सुख देनेवाले काम और दुख अर्थात् काम क्रोध लोभ अहङ्कार क्रूरता कपट आदि दुखदाई कामों में पड़ते हैं परन्तु सुखदाई और दुखदाई राह दौड़ कर किसी को नहीं लगती अर्थात् जो सुखदाई कर्म करता है वह सुख पाता और जो दुखदाई करता वह दुख पाता है कर्म का बन्धन बिना कर्म किये किसी को नहीं बान्ध सकता। तुलसी-दास कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र की कृपा के बिना यह किस प्रकार से जाना जा सकता है। जिस पर रामचन्द्र जी की दया होती है वह अपने स्वभाव ही से भले काम में लगता है ॥ २६ ॥

महि तेँ रबि रबि तेँ अवनि सपने हुँ सुख कहुँ नाहिँ।
तुलसी तब लगि दुखित अति ससि-मग लहत न ताहि ॥ २७ ॥

(अन्वय) महि तेँ रबि रबि तेँ अवनि सपने हुँ कहुँ सुख नाहिँ तुलसी तब लगि अति दुखित (जब लगि) ताहि ससि-मग न लहत।

जिस प्रकार जल भूमि पर से दृश्य अदृश वाफ के आकार मेँ एक बार सूर्य्य मेँ जा मिलता है फिर वर्षा मेँ भूमि पर आता है उसी प्रकार जीव की भी गति है, इस को स्वप्न मेँ भी कहीँ सुख नहीँ है जन्म मरण के चक्र मेँ घूमा करता है। तुलसी-दास कहते हैँ कि तब तक यह जीव बहुत दुखी बना रहता है जब तक सो चन्द्रमारूप बुद्धि वा सीता जी की शरण नहीँ प्राप्त होती। जब चन्द्रमारूपी सीता जी की दया इस पर हुई तो इस के लिये सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप राम का मिलना कठिन नहीँ है ॥ २७ ॥

सन्तन की गति सीत-कर लेस कलेस न होय।
सो सिय पद सुख-दा सदा जानु परम पद सोय ॥२८॥

(अन्वय) सीत-कर सन्तन की गति कलेस लेस न होय सो सदा सुख-दा सिय पद सोय परम पद जानु।

चन्द्रमा अर्थात् बुद्धिरूप श्रीजानकी जी साधुओँ की आश भरोस हैँ इसी कारण उन को थोड़ा भी दुःख नहीँ होता वह चन्द्रमा सदा सुख देनेहारा श्रीसीता जी का चरण है उसी को परम अर्थात् पर

ब्रह्मरूप राम अथवा परम पद मुक्ति जानना चाहिये। किसी किसी पुस्तकों में "जानु राम पद सोय" पाठ मिलता है वहाँ सीता जी बुद्धिरूप हैं, उन को रामचन्द्र जी का पद जानना ऐसा अर्थ करना चाहिये॥

जिस प्रकार माता, पिता के दूर रहने पर भी, पुत्र का पालन करती और उसे पिता के पास पहुँचा देती है उसी रीत यहाँ मातारूप सीता जी भक्त पुत्र को रक्षा कर रामचन्द्र से मिला देती हैं॥ २८॥

तजत अमिय ससि जान जग तुलसी देखत रूप।
गहत नहीं सब कहँ बिदित अतिसय अमल अनूप॥२९॥

(अन्वय) जग जान ससि अमिय तजत तुलसी अतिसय अमल अनूप रूप देखत सब कहँ विदित गहत नहीं।

संसार जानता है कि चन्द्रमा से अमृत निकलता है और चन्द्र के अत्यन्त निर्मल और उपमा-हीन रूप को देखता है और सब लोगों पर यह बात ज्ञात भी है। तो भी तुलसी-दास कहते हैं कि चन्द्रमा को कोई ग्रहण नहीं करता उसी प्रकार से चन्द्रमा अर्थात् बुद्धिरूप सीता जी को संसार जानता है कि (अमृत तजत) मुक्ति की देनेहारी है और उन का अत्यन्त निर्मल और उपमा-हीन रूप पुराणों के द्वारा सब पर विदित है और ध्यान के द्वारा देखा भी जाता है। गोसाईं जी कहते हैं कि तो भी उन की शरण को ग्रहण नहीं करता इसी से दुखी बना रहता है॥ २९॥

ससि-कर सुख-द सकल जगत को तेहि जानत नाहि।
कोक कमल कहँ दुख-द कर यदपि दुख-द नहिँ ताहि
॥ ३० ॥

अन्वय—ससि-कर सकल जगत सुख-द तेहि को नाहि जानत यद्यपि कर कोक कमल कहँ दुख-द नहिँ (तथापि) ताहि दुख-द।

चन्द्रमा की किरणेँ सब संसार के लिये सुखदाई हैँ इस बात को कौन नहीँ जानता ? अर्थात् सभी जानते हैँ कि चन्द्रमा की अमृत-मय चान्दनी को देख कर सब को आनन्द होता हैँ; और जो भी वे किरणेँ चकवा और कमल के लिये वस्तुत: स्वत: वा आप दुख देनेवाली नहीँ हैँ तो भी उन्हेँ दुखदाई जान पड़ती हैँ अर्थात् चकवा अपनी चकई के वियोग मेँ और कमल अपने मित्र सूर्य्य के वियोग से आप दुखी रहते हैँ। इस कारण यद्यपि चन्द्र किरणेँ अपनी ओर से उन्हेँ नहीँ दुख देतीँ तो भी अपने दुख के कारण ये (चकवा और कमल) उन्हेँ (किरणोँ को) दुखदाई मानते हैँ। इसी प्रकार श्रीसीता जी वा साधु जन संसार मेँ सब के लिये सुखदाई हैँ तो भी नीच विषयी लोग उन्हेँ दुखदाई मानते हैँ अर्थात् इन की भक्ति मेँ उन्हेँ सुख नहीँ मिलता ॥ ३० ॥

बिन देखे समुझे सुने सोउ भव मिथ्या-बाद।
तुलसी गुरु गम कै लखै सहजहिँ मिटै बिखाद ॥ ३१ ॥

अन्वय। भव बिन देखे सुने सोउ मिथ्या-बाद गुरु गम कै लखै तुलसी सहजहिँ बिखाद मिटै।

जैसे संसार में बिना भली भाँत परीक्षा किये केवल सुनने ही से जान लोग झूठ अपवाद करते हैं कि चन्द्रमा चकवा और कमल के लिये दुखदाई है वैसे ही दुष्ट विषयी जन समझते हैं कि सीतारूपी भक्ति और सत्सङ्गति सुखदाई नहीं हैं ऐसा समझना केवल मिथ्यावाद है। यदि वे गुरु अर्थात् सच्चे ज्ञानी से ज्ञान पा कर इस को विचारें तो तुलसी-दास कहते हैं कि सहज ही से उन का दुख दूर हो जाय और भक्ति के प्रभाव से मुक्ति अवश्य मिले।

द्वितीयार्थ अन्वय। बिनु सोउ समुझे मिथ्यावाद भव देखे सुने गुरुगम के लखे सहजहिँ बिखाद मिटे।

बिना उस परब्रह्म परमेश्वर के जाने झूठे आरोपित संसार को लोग देखते सुनते हैं और सच्चा जानते हैं यदि उत्तम गुरु के दिये ब्रह्मज्ञान से देखें तो संसार मिथ्या देख पड़े और ज्ञान हो जाने के कारण सहजहिँ मुक्ति लाभ हो और सब दुःखों से जीव मुक्त हो जाँए॥ ३१॥

बरखि बिस्व हरखित करत हरत ताप अघ-प्यास।
तुलसी दोख न जलद कर जो जड़ जरत जवास॥३२॥

अन्वय। तुलसी (जलद) बरखि बिस्व हरखित करत ताप अघ-प्यास हरत (तथापि) जो जड़ जवास जरत (तो) जलद कर दोख न।

३१वेँ दोहे में भक्ति और ज्ञान की प्रशंसा कर इस दोहे में दृष्टान्त के द्वारा विषय में लीन नीच जनों की निन्दा करते हैं।

तुलसी-दास कहते हैं कि मेघ जल बरस कर संसार को

आनन्दित करता है और सब के दुःखरूपी पाप और प्यास को दूर करता है तो भी जो मूर्खरूप जवासा घास जर जाती है तो इस में मेघ का कुछ भी दोष नहीं है।

अभिप्राय यह कि भक्ति और ज्ञान परम सुखदाई हैं तो भी मूर्ख विषयी लोगों को अच्छे नहीं लगते तो इस में विषयी ही की जड़ता प्रगट होती है ज्ञान भक्ति किसी प्रकार दोषी नहीं ठहर सकतीं ॥ ३२ ॥

चन्द्र देत अमि लेत बिख देखहु मनहिँ बिचार ।
तुलसी तिमि सिय सन्त बर महिमा बिखद अपार॥३३॥

अन्वय। चन्द्र बिख लेत अमि देत मनहिँ बिचारि देखहु तुलसी तिमि सिय सन्त बर बिखद महिमा अपार।

चन्द्रमा अपनी किरणों से संसार के विषरूप सन्ताप को हर लेते हैं और अमृत बरसाते हैं इस बात को मन में विचार कर भली भाँत देखो। तुलसी-दास कहते हैं कि उसी प्रकार सीता जी वा सीतारूपी भक्ति और साधु जन हैं जिन की निर्मल महिमा बड़ाई का अन्त कोई नहीं पा सकता है। भक्ति और सज्जनों की प्रसंशा वर्णन से बाहर है चाहे विषयी मूर्ख लोग उन्हें माने वा नहीं॥ ३३ ॥

रसमि बिदित रबि-रूप लखु सीत सीत-कर जान ।
लसत योग जस-कार भव तुलसी समुझु समान॥३४॥

अन्वय। रबि-रूप लखु रसमि बिदित (तथा) सीत-कर सीत जानु योग जस-कार लसत भव तुलसी समान समुझु।

सूर्य्य के रूप को देखो तो कैसा तीव्र और तेजस्वी देख पड़ता है उन की किरणोँ को लोग जानते हैं कि बड़ी कड़ी हैं सही नहीँ जाती और चन्द्रमा को लोग शीतल समझते हैँ जिस की ओर देखने से परम आनन्द अनुभव किया जाता है। इन दोनोँ के योग वा मिलने से कीर्ति को बढ़ानेहारा चन्द्रमा सोभित (भव) होता है सो तुलसी-दास कहते हैं कि दोनोँ को समान समझना चाहिये अर्थात् यदि दिन को सूर्य्य सब वस्तुओँ को तपा कर उन मेँ का विष निकाल कर उन्हें उष्ण न करेँ तो चन्द्रमा की अमृतमय किरणेँ उन्हेँ सुखदायिनी और शीतल न जान पड़ँ इस कारण दोनोँ विरुद्ध गुणोँ का समान रहना आवश्यक है क्योँकि एक के विना दूसरे का ज्ञान होना कठिन है और दोनोँ के योग से बहुत अच्छा होता है उसी प्रकार सूर्य्यरूप ब्रह्मज्ञानमय श्रीराम को सूर्य्य के स्थान मेँ समझना चाहिये और चन्द्रमा बुद्धिरूप श्रीसीता जी को भक्ति समझना चाहिये दोनोँ को मानने से बड़ा यश होता है और दोनोँ ही को समान जानना उचित है।

द्वितीयार्थ का अन्वय। रवि रसमि विदित रूप लखु, सीत-कर सीत जानु, योग भव लसत, तुलसी जस समान-कार समझु।

सूर्य्य की किरणोँ को ज्ञानरूप जानो और (सीत-कर) चन्द्रमा को शीतल करनेहारा जल जानो अर्थात् सूर्य्य अपनी किरणोँ से भूमि के जल को खीच लेता है फिर बर्षा मेँ उसी जल को बरसा कर संसार को ठण्ढा करता है। उसी जल के योग अर्थात् मिलने से भव संसार सोभित होता है यदि वह जल न हो तो संसार नष्ट हो जाय।

'तु' तुरङ्गवाहन राम, 'ल' लक्ष्मण और 'सी' सीता जी के (जस) यश कीर्ति को समान करनेहारी अर्थात् अपने भक्तों को सूर्य्य और जल के समान पोषण करनेहारी जानो। सूर्य्य वा ज्ञानरूप राम जलरूपी भक्ति को बरसा कर अपनी कीर्ति के फैलानेहारे भक्तों को मुक्ति दे कर अपने समान बना लेते हैं। दूसरे अर्थ में शीत शब्द का अर्थ जल किया गया है उस का प्रमाण।

उदकन्तु जलं नीरं शीतं शीतलम् (मेदिनी) ॥ ३४ ॥

लेत अवनि रवि अम्बु कहँ देत अमिय अप-सार।
तुलसी सूछम को सदा रबि रजनीस अधार ॥ ३५ ॥

अन्वय। रबि अम्बु अवनि अप कहँ लेत सूछम अपसार अमृत रजनीस (कहँ) देत तुलसी (रबि रजनीस) सदा (अवनि) को अधार।

सूर्य्य नारायण अपनी किरणों के द्वारा पृथ्वी पर के जल को (ग्रीष्म ऋतु में) सोख लेते है फिर जल के सूक्ष्म सार भाग अमृत को चन्द्रमा को देते हैं फिर (रजनी, रजनीस अप-सार अमृत कहँ अवनी को देत) चन्द्रमा रात को जल का सार भाग अमृत भूमि और भूमि पर की जड़ी बूटी को देते हैं। तुलसी कहते हैं कि इस प्रकार सूर्य्य और चन्द्रमा सदा पृथ्वी और इस पर के जीव जन्तुओं के प्रणाधार हैं। इसी रीत सूर्य्य और ज्ञान के समान रामचन्द्र हैं और भक्ति बुद्धि और चन्द्र के समान सीता जी हैं।

राम के भजन से ज्ञान होता है तब चन्द्र जलरूप सीता जी भक्त को भक्ति दे कर शीतल कर अमृतरूप मुक्ति देती हैं।

जहाँ "लेति देति" पाठ हो वहाँ नीचे के अन्वय के अनुसार अर्थ करना चाहिये।

अवनि रवि अम्बु कहँ लेति (रजनीश) अप-सार अमिय देत तुलसी रवि रजनीश सदा सूक्ष्म को आधार।

पृथ्वी दिन को सूर्य्य की किरणों को लेती है अर्थात् उन से तप्त हो जाती है तब रात को चन्द्रमा जल के सार अमृत को दे कर उसे शीतल करते हैं तुलसी कहते हैं कि इस प्रकार सूर्य्य और चन्द्रमा सर्वदा सूक्ष्म जीवों के आधार हैं इन्ही के द्वारा पृथ्वी सब जीवों को पालती है ॥ २५॥

भूमि भानु असथूल अप सकल चरा-ऽचर-रूप।
तुलसी बिनु गुरु ना लहै यह मत अमल अनूप ॥३६॥

अन्वय। असथूल भूमि सकल चरा-ऽचर-रूप (असथूल) अप भानुरूप यह अमल अनूप मत बिनु गुरु (जन) ना लहै।

असथूल अर्थात् अनित्य शरीररूप पृथ्वी सब चर अचर जीवों का रूप अर्थात् शरीर है और सूक्ष्म जल सूर्य्य का रूप है अर्थात् जल को सूक्ष्म वाष्प के आकार से सूर्य्य सोख कर अपने मण्डल में रखते हैं। फिर वर्षा ऋतु में छोड़ते हैं यह भूमि और जल के विषय का निर्मल और अद्भुत सिद्धान्त बिना गुरु के उपदेश से मनुष्य नहीं जान सकते हैं।

द्वितीयार्थ अन्वय । असथूल भूमि अप सकल चरा-ऽचर-रूप भानु तुलसी गुरु बिनु यह अमल अनूप मत ना लहै ।

सब जीवों की आधाररूप अस्थूल शरीर पृथ्वी में जल सूक्ष्म है और सब चलनेहारे और नहीं चलनेवाले दोनों प्रकार के जीवों के रूप सूर्य्य नारायण हैं क्योंकि यदि सूर्य्य न हों तो कौन जल बरसा कर सब को जिलावे । इसी प्रकार पृथ्वी पर के सब जीवों के आदि कारण सूर्य्यरूप श्रीराम हैं जिन में प्रलय के अन्त में सब जीव लय हो कर विश्राम पाते हैं । विना किसी राम-भक्त गुरु वा उपदेशक के यह (अर्थात् रामचन्द्र को सूर्य्य के समान सब जीवों का आश्रय जानना) निर्मल और अद्भुत सिद्धान्त कोई नहीं पा सकता अर्थात् जान सकता है ।

इस दोहे के पूर्वार्द्ध में न्यायशास्त्र का मत वर्णित जान पड़ता है क्योंकि न्याय में पृथ्वी का शरीर इन्द्रिय और विषय तीन भाग किया है जिन में इम सबों की शरीर को पृथ्वीरूप माना है ॥ ३६ ॥

तुलसी जे नय लीन नर ते निसि-कर-तन लीन ।
अपर सकल रबि गत भये महा-कष्ट अति दीन॥३७॥

तुलसी जे नर नय लीन ते निसि-कर-तन लीन अपर सकल रबि गत महा-कष्ट अति दीन भये ।

तुलसी-दास कहते हैं कि जो मनुष्य नीति मार्ग में तत्पर हैं वे चन्द्रमा के किरणरूपी शरीर अर्थात् बुद्धिरूप भक्ति मार्ग में लगे

हुये आनन्द पाते हैं अर्थात् भक्ति के द्वारा मुक्ति के भागी होते हैं परन्तु और दूसरे सब लोग जो सूर्य अर्थात् ज्ञान-मार्ग के अनुरागी हैं वे बड़े दुख में अर्थात् योगाभ्यास के ध्यान धारणा समाधि आदि के बड़े कष्टसाध्य उपाय में परिश्रम से बड़े दुखी रहते हैं। ऊपर के कई एक दोहों में भक्ति और ज्ञान दोनों उपायों का वर्णन कर के इस दोहे में ज्ञान को बड़े क्लेश से सिद्ध होनेवाला दिखा कर भक्ति की सुगमता और प्रशंसा दिखाई है। इस में यह शङ्का हो सकती है कि ऊपर ज्ञान और भक्ति दोनों की प्रशंसा कर तथा सूर्य्य और ज्ञान को रामरूप कह के अब उस की निन्दा क्यों करेंगे। इस लिये दूसरे प्रकार अन्वय और दूसरा अर्थ करते हैं॥

ये अतिकष्ट तन लीन नर ते सकल दीन, तुलसी अपर (ये) रबि-गत, (वा) निसि कर नय लीन (ते) महा भये।

जो जीव अत्यन्त दुखरूप शरीर में लीन हैं अर्थात् शरीर और इस के भोग और पालन में लगे हैं वा शरीर ही के सुख को परमार्थ समझते हैं वे अन्त को क्लेशभागी होने के कारण बड़े दुखी हैं परन्तु तुलसी कहते हैं कि दूसरे लोग जो सूर्य्यरूप ज्ञान में लगे हैं वा चन्द्रमारूप भक्ति-मार्ग में तत्पर हैं वे वस्तुतः बड़े हैं अर्थात् सच्ची प्रशंसा के पात्र हैं।

अभिप्राय यह कि शरीर और संसारी विषय भोग को कष्टदाई और तुच्छ जान कर छोड़ना और ज्ञान तथा भक्ति को सदा रहनेवाले आनन्द का मूल समझ उस के करने में तत्पर होना चाहिये॥ १७॥

तुलसी कवन हुँ जोग तेँ सत-सङ्गति जब होय।
राम-मिलन सन्सय नहीँ कहँहिँ सु-मति सब कोय ॥ ३८ ॥

तुलसी-दास कहते हैँ कि किसी सुयोग अर्थात् तीर्थ आदि स्थानोँ मेँ भाग्य के अच्छे होने पर जब साधुओँ का सङ्ग होता है, तो उन की रीत और उपदेश को ग्रहण करने से राम मिल सकते हैँ, इस मेँ कुछ सन्देह नहीँ, ऐसा सब बुद्धिमान लोग कहते हैँ। सत्सङ्गति राम की भक्ति और राम के मिलने का उत्तम उपाय है ॥ ३८ ॥

सेवक-पद सुख-कर सदा दुख-द सेव्य-पद जान।
यथा बिभीखन रावनहिँ तुलसी समुझु प्रमान ॥ ३९ ॥

अब दूसरे प्रकार का दृष्टान्त दे कर भक्ति-मार्ग की पुष्टता दिखाते हैँ।

(सेवक-पद) रामचन्द्र का दास हो कर रहना सर्वदा सुखदाई है। इह लोक पर लोक दोनोँ के लिये उपकारी है, जीते जी गृहस्थी मेँ रह कर राम की भक्ति करने से भक्ति-रस का अनुभव और अन्त को मरने पर राम के लोक वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। (सेव्य-पद दुख-द जान) परन्तु स्वामी होना दुख का कारण होता है क्योँकि उस से लोग अहङ्कार ममता आदि दोषोँ के वश हो परमेश्वर को भूल कर विषयासक्त हो जाते हैँ। इस मेँ प्रमाण देते हैँ कि जिस प्रकार देखो कि विभीषण अपने को राम का भक्त समझते थे इस हेतु लङ्का

के राजा हुये और रावण अपने को ज्ञानी समझ कर अहङ्कार और ममता के कारण विषय में डूब गया और पापकारी हुआ।

पहले सर्ग के ५३वें दोहे में भी सेवक-पद पाने की कठिनता और स्वामी होने की सरलता को दिखलाया है ॥ ३९ ॥

सीत-उष्म-कर-रूप जुग निसि-दिन-कर करतार ।
तुलसी तिन कहँ एक नहिँ निरखहु करि निरधार ॥ ४० ॥

अन्वय। शीत उष्ण एक नहीँ जुग कर करतार निशि-दिन-कर रूप तिन कहँ तुलसी निरधार करि निरखहु।

संसार में ठंढा और गर्म कोई नहीँ हैं (जुग-कर करतार) दोनों के उत्पन्न करनेहारे चन्द्रमा-सूर्य्यरूप हैं, तुलसी-दास कहते हैं कि उन को निश्चय कर ज्ञानदृष्टि से देखो। बिराटरूप भगवान के शरीर के एक भाग सूर्य्य-चन्द्र लोक की रक्षा और काम को चलाने के लिये परब्रह्म परमेश्वर की इच्छा से दिन रात को उदित होते हैं ॥ ४० ॥

नहिँ नयनन काहू लखेउ धरत नाम सब कोय ।
ता तेँ साचो है समुझु झूठ कबहुँ नहिँ होय ॥ ४१ ॥

अन्वय। काहू नयनन (शीत उष्ण गुण) नहिँ लखेउ, सब कोय नाम धरत ता तेँ साचो समुझु कबहूँ झूठ नहिँ होय।

किसी ने आँखों से (शीतता और उष्णतारूप गुणों को) नहीँ देखा है, अर्थात् शीतत्व और उष्णत्व का ज्ञान त्वगिन्द्रिय से होता है आँख से तो नहीँ होता, इस कारण आँख से इनको किसी ने न देखा

परन्तु लक् से ज्ञात होने के कारण सब लोग शीत और उष्ण का नाम रखते हैं कि यह पदार्थ शीत और वह उष्ण है, इस कारण इन को सत्य जानना चाहिये और कभी ये झूठ नहीं होवेंगे। जल जिस का गुण सदा शीत है सो भी अग्नि के संयोग से उष्ण हो जाता है, चन्दन शीतल है उस के घिसने से भी आग निकलती है, सूर्य्य अत्यन्त उष्ण है तो भी अधिक शीतयुक्त देशों में वैसा उष्ण नहीं रहता इस से संयोग और समय के अनुसार अनुभव कर्ता के अनुभव के अनुसार शीत उष्ण का व्यवहार होता है जिसे सत्य समझना चाहिये॥ ४१॥

वेद कहत सब को विदित तुलसी अमिय-स्वभाव।
करत पान अरु रुज हरत अबिरल अमल-प्रभाव॥४२॥

तुलसी वेद अबिरल अमल-प्रभाव अमिय-स्वभाव कहत अरु सब कोउ कहत पान करत रुज हरत।

तुलसी कहते हैं कि वेद सदा दोषहीन सामर्थ्य युक्त अमृत के स्वभाव का वर्णन करता है और सब लोग जानते हैं कि पीने से रोग दुख को दूर कर देता है। यह प्रभाव भी ईश्वर की इच्छा के अधीन है क्योंकि (विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया) कहीं २ उस की प्रेरणा से विष अमृत और अमृत विष हो जाता है जैसे लङ्का में हुआ था "सुधा ब्रिष्टि भई दोउ दल माहीं। जिये भालुकपि निशिचर नाहीं"॥ ४२॥

गन्ध सीत अपि उष्णता सबहिँ बिदित जग जान ।
महि बन अनल सो अनिल गत बिन देखे परमान
॥ ४३ ॥

गन्ध सीत उष्णता महि बन अनल गत जग बिन देखे परमान जान सबहिँ बिदित सोपि अनिल गत ।

गन्ध शीतलता और उष्णता तीनोँ गुण क्रम से पृथ्वी जल और अग्नि मेँ हैँ ऐसा संसार के लोग बिना देखे भी प्रमाण जानते हैँ यह बात सब पर बिदित है वह भी गुणत्रय तीनोँ गुण वायु मेँ हैँ अर्थात् वायु सुगन्ध पुष्पादि के योग से सुगन्ध, शीत के योग से शीतल, और अग्नि के योग से उष्ण हुआ करती है । न्यायशास्त्र मेँ (गन्धवती पृथ्वी, शीतस्पर्शवत्यापः उष्णस्पर्शवत्तेजः) गन्धयुक्त को पृथ्वी शीतस्पर्शयुक्त को जल और जिस का स्पर्श उष्ण हो उसे तेज (जिस का एक भेद अग्नि है) कहते हैँ परन्तु इन तीनोँ गुणोँ का प्रत्यक्ष नाक और त्वगिन्द्रिय से होता है आँख से नहीँ होता तो भी बिना आँख से देखे भी और और इन्द्रियोँ से जानने के कारण लोग इन्हे मानते हैँ परन्तु ये तीनोँ पदार्थ जड़ हैँ इन मेँ चेतनता केवल रामरूप परमेश्वर की सत्ता से आती है यह आगे के दोहे मेँ कहेँगे । ४३ ॥

इन मँहँ चेतन अमल अल बिलखत तुलसी-दास ।
सो पद गुरु-उपदेस सुनि सहज होत परकास ॥ ४४ ॥

तुलसी-दास इन महँ अमल अल चेतन बिलखत गुरु-उपदेस सुनि सो पद सहज परकास होत ।

तुलसी-दास इन में निष्पाप वा निष्कलङ्क सब को भूषित करनेहारे वा सब-समर्थ चैतन्यरूप परमेश्वर को विशेष कर देखते हैं वह रामरूप वस्तु सद्गुरु के उपदेश से सहज ही में प्रकाशित होती है। जिस प्रकार सूर्य्य और चन्द्र में उष्णता और शीतता थी उसी रीत इन पदार्थों में भी पूर्वोक्त गुण हैं परन्तु उन गुणों का कारण केवल परमेश्वर हैं॥

दूसरे प्रकार से अन्वय और अर्थ।

इन महँ चेत न बिलखत तुलसी-दास (इन महँ) अमल परकास अल (होत) गुरु-उपदेस सुनि सो पद सहज होत ।

पृथ्वी जल तेज वायु आदि तत्वों में ज्ञान नहीं है और ये परस्पर (विलखाते हैं) दुखी होते हैं अर्थात् विरोध करते हैं अर्थात् जल आग को बुझाता है आग जल को जलाती है जल में मट्टी पड़ने से मलिनता आ जाती है अग्नि पृथ्वी को भस्म कर डालता है इत्यादि तो भी तुलसी-दास कहते हैं कि इन में मल रहित ज्योतिरूप समर्थ (परमेश्वर हैं) गुरु के उपदेश से वह परमेश्वर रूप वस्तु सहज हो जाती है॥ ४४ ॥

एहि बिधि तें बर बोध एह गुरु-प्रसाद कोउ पाव।
हैं ते अल तिहुँ.काल महँ तुलसी सहज प्रभाव॥ ४५ ॥

अन्वय। कोउ गुरु-प्रसाद एहि बिधि तें एह बर बोध पाव, तुलसी ते तिहुँ काल महँ सहज प्रभाव अस हैं॥

कोई कोई जन अपने सद्गुरु की दया से इस प्रकार यह सुन्दर ज्ञान पाते हैं तुलसी-दास कहते हैं कि वे ज्ञानी भूत वर्तमान और भविष्यत् तीनों काल में स्वाभाविक प्रतापवाले सज्जन और समर्थ बने रहते हैं।४५॥

काक-सुता-सुत वा सुता मिलत जननि-पितु धाय।
आदि-मध्य-अवसान गत चेतन सहज सुभाय॥४६॥

अन्वय। काक-सुता-सुत वा सुता धाय जननि-पितु मिलत चेतन आदि-मध्य-अवसान गत सहज सुभाय॥

कोइल का बच्चा चाहे नर अथवा नारी हो (बड़ा होने पर दौड़ कर अपने माता-पिता में मिल जाता है यही दशा (चेतन) ज्ञानयुक्त जीवों की है। वह (आदि) जन्म (मध्य) बीच के समय और (अवसान) अन्त तीनों कालों में अपने स्वभाव ही से (चेतन गत) सत्यज्ञानयुक्त परमेश्वर में मिला हुआ है उस की सत्ता से अलग इस की सत्ता नहीं है॥

अभिप्राय यह कि जैसे कौवा कोइल के अण्डे को सेता है परन्तु अण्डा फोर कर बच्चा होने और पर जनमने पर कोइल का बच्चा जा कर कोइलों में मिल जाता है वैसे ही सच्चिदानन्दमय परमेश्वर का अंश जीव जब तक इस को ज्ञानरूप पच्छ नहीं होता तब तक माया

के बन्धन में पड़ कर संसार में फसा रहता है। ज्ञान होते ही यह परमेश्वर में आ मिलता है॥ ४६॥

समता स्वा-ऽरथ-हीन तेँ होत सु-बिसद बिबेक।
तुलसी यह नित हीँ फबे जिनहिँ अनेक न एक॥४७॥

अन्वय। स्वा-ऽरथ-हीन तेँ समता सु-बिसद बिबेक होत। तुलसी यह नित हीँ फबे जिनहिँ अनेक न एक।

जो जन अपने सुख अर्थात् धन स्त्री आदि सांसारिक पदार्थों की इच्छा से हीन हैं उन में समता अर्थात् शत्रुमित्र आदि सब में समान भाव आता है तब निर्मल विचार वा सार असार पदार्थों का ज्ञान होता है। तुलसी-दास कहते हैं कि यह बात उन्हीं को सोभती है जिन को अनेक की आशा भरोसा नहीं है परन्तु एक परब्रह्म का अवलम्ब रहता है अथवा रामरूप सगुण ब्रह्म ही की आशा रहती है।

पहले मनुष्य को सांसारी वासना और सांसारिक पदार्थों की प्रीति त्याग करना चाहिये जब तक विषय की लालसा मन में बनी रहती है तब तक निर्मल ज्ञान नहीं हो सकता। सांसारिक सुखाभिलाष ही जीवों को संसार में बाँध रखता है जब मनुष्य सब की आशा छोड़ एक परमेश्वर के चरण में लगता है तब उस में समता और बिवेक आते हैं॥ ४७॥

सब स्वा-ऽरथ स्वा-ऽरथ रटत तुलसी घटत न एक।
ग्यान-रहित अग्यान-रत कठिन कु-मन कर टेक॥४८॥

सब लोग स्वारथ ही स्वारथ रट रहे हैं जिस को देखिये वह धनदारादि की सोच में बिकल है (परन्तु) तुलसी कहते हैं कि एक भी पूरा नहीं होता क्योंकि सांसारिक सुख मृगतृष्णा के समान है और नश्वर होने के कारण अन्त को दुखदाई ही होता है। यद्यपि पूरी रीत सांसारिक सुख नहीं मिलता तो भी (ज्ञान-रहित अज्ञान-रत कु-मन कर टेक कठिन) बिबेकहीन अबिचार लीन मलीन मन का हठ बहुत कठिन है। मन ऐसा चञ्चल है कि विषय सुख को दुखदाई जान कर भी उसी के पीछे दौड़ता रहता है॥ ४८॥

स्वा-ऽरथ सो जानहु सदा जा सोँ बिपति नसाय।
तुलसी गुरु-उपदेस बिनु सो किमु जानेउ जाय॥४६॥

सदा सो स्वा-ऽरथ जानहु जा सोँ बिपति नसाय तुलसी सो गुरु-उपदेस बिनु किमु जानेउ जाय।

सदा उसी वस्तु को स्वार्थ समझना चाहिये जिस से बिपत्ति दुख नाश हो जाय। यदि कहो कि संसार के पुत्र स्त्री आदि सब स्वार्थ के साधक हैं तो इन के रहते भी मनुष्य अनेक प्रकार का दुख भोगता है और ये उस के सब दुःखों की निवृत्ति नहीं कर सकते तो किस प्रकार ये स्वार्थ के साधक हुये?। सच्चा स्वार्थदाता श्रीरामचन्द्र को मानना चाहिये उन के विषय म. तुलसी-दास कहते हैं कि बिना सद्गुरु के उपदेश के किस प्रकार जाना जा सकता

है। जब अच्छे गुरु मिलें तब उन के उपदेश से राम पद में प्रीति जनमे जिस से आत्यन्तिक दुख की निवृत्ति हो ॥ ४९ ॥

कारज स्वा-ऽरथ-हित करै कारन करै न होय।
मनवा ऊख बिसेख तें तुलसी समझहु सोय ॥ ५० ॥

स्वा-ऽरथ हित कारज करै कारन न करै, मनवा ऊख बिसेख तें (कारन) होय तुलसी सोय समझहु।

संसार के मनुष्य अपनी भलाई और सुख के लिये कार्य की सेवा करते हैं। अच्छे अच्छे मीठे मीठे पदार्थ मिठाई आदि के खाने पीने और अच्छे अच्छे वस्त्र आदि के पहनने ओढ़ने का उपाय सब लोग करते हैं परन्तु मिठाई और वस्त्र के कारण ऊख और रुई को नहीं देखते। तुलसी-दास कहते हैं कि वस्त्र और मिठाई के विशेष कारण मनवा (कपास के पेड़) और ऊख हैं उन को समझो।

अभिप्राय यह कि जैसे मिठाई और वस्त्र विना ऊख और रुई के नहीं हो सकता वैसे ही ईश्वरभजन और सत्कर्म के विना सुख नहीं हो सकता सो इन दोनों से विमुख रह कर भी लोग सुख चाहते हैं सो किस प्रकार हो सकता है। दृष्टान्त अलङ्कार स्पष्ट है ॥ ५० ॥

कारन कारज जान तो सब काहू परमान।
तुलसी कारन कारजो सो तैं अपर न आन ॥ ५१ ॥

कारन कारज परमान तो सब काहू जान, तुलसी सो कारन तैं अपर न, कारजो आन न।

कारण से कार्य होता है इस का प्रमाण तो सब लोग जानते हैं। बिना कारण कभी भी कार्य नहीं होता यह वेद से प्रमाणित है और लोक में भी सब लोग जानते हैं कि ऊख मिठाई का और मनवा वस्त्र का कारण है। तुलसी-दास कहते हैं कि वह कारणरूप तू ही है और दूसरा नहीं है और कार्य भी दूसरा नहीं तू ही है। यद्यपि ऊख और मनवा मिठाई और वस्त्र के कारण हैं परन्तु ये दोनों पदार्थ विना किसान के उपजाये नहीं हो सकते इस कारण दोनों के मुख्य कारण किसान ही हैं। इसी प्रकार सुख दुखरूप कार्य के कारण भी भले बुरे काम हैं जिन के करनेहारे आप ही हैं तो बिचार कर देखने से निश्चय होता है कि सब के कारण करनेहारे मनुष्य ही हैं वे जब भला करते तो सुख और जब बुरा करते तो दुख पाते है।

किसी किसी पुस्तक में "कारज-कार जो सो तैं अपर न आन" पाठ मिलता है। तुलसी-दास कहते हैं कि कार्य का करनेहारा जो है सो तू ही है और कोई दूसरा नहीं है॥ ५१॥

बिन करता कारज नही जानत है सब कोइ।
गुरु-मुख स्रवन सुनत नही प्राप्ति कवन विधि होइ॥५२॥

सब कोइ जानत है बिन करता कारज नहीं स्रवन गुरु-मुख सुनत नहीं, कवन विधि प्राप्ति होइ।

सब लोग जानते हैं कि विना करनेवाले के कोई काम नहीं

हो सकता अर्थात् जो दुख मनुष्य को होता है उस का करनेवाला वह आप ही है परन्तु यह (गुरु-मुख) गुरु का शब्द (उपदेश) अपने कानों से नहीं सुनता तो इस के दुख की निवृत्ति और सुख की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है। यह जान बूझ कर संसार की जाल में फसता है। ध्रुव, नारद, प्रह्लाद आदि के समान ईश्वराराधन नहीं करता तो इसे सुख और मुक्ति कहाँ से मिल सके। मुख शब्द का अर्थ यहाँ शब्द है जिस से गुरु का शब्द अर्थात् उपदेश अर्थ हुआ॥ ५२॥

करता कारन कारज हु तुलसी गुरु परमान।
लोपत करता मोह-बस ऐसा अबुध मलान॥ ५३॥

करनेहारा, कारन और कार्य जो किया जाता है तीनों गुरु के उपदेश से प्रमाणित होते हैं अर्थात् गुरु सबों को लखा सकता है परन्तु (अबुध ऐसा मलान मोह-बस करता लोपत) अज्ञानी ऐसा मूर्ख और विषयासक्त है कि भ्रम में पड़ कर कर्ता ही का लोप कर देता है अर्थात् कर्ता को नहीं मानता परन्तु (अहङ्कारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते) आप अहङ्कार के वश हो कर अपने हीं को कर्ता मान लेता है इसी से जन्म मरण के महादुख को भोगा करता है और मुक्ति का भागी नहीं होता॥ ५३॥

अनिल सलिल बिधि जोग तेँ जथा बीचि बहु होय।
करत करावत नहिँ कछुक करता कारन सोय॥५४॥

जथा अनिल सलिल जोग बिधि तें बहु बीचि होय सोय करता कारन कछुक नहिँ करत करावत।

जिस प्रकार जल में बायु के योग होने से बहुतेरे तरङ्ग उत्पन्न होते हैं यद्यपि जल और बायु तरङ्ग के करता नहीं हैं और न इन को तरङ्ग उत्पन्न करने की कुछ इच्छा है उसी प्रकार (प्रकृतेः क्रियमाणानि स्वयं कर्म्माणि नित्यशः) स्वभाव ही से सदा कार्य उत्पन्न होते हैं परन्तु मनुष्य आप अपने को शुभाशुभ काम का कर्ता मानता है इस कारण उस के भोग में फसा रहता है पुण्य पाप का भागी होता है यदि वह अपने को कर्ता न माने और अपने मन इन्द्रिय को उस से अलग रक्खे तो न फसे।

कोई कोई टीकाकार इस प्रकार अर्थ करते कि जैसे वायु और जल के योग से पानी में तरङ्ग उठता है वैसे ही सत्सङ्ग के प्रभाव से बुरे मनुष्य भी अच्छे अच्छे काम करने लगते हैं यद्यपि साधु जन बुरों से भला काम कराने में निरुद्योग हों तो भी। बुद्धिमानों पर आप झलक जायगा कि कौन अर्थ बैटता है। यह अर्थ मूल से ठीक ठीक नहीं मिलता॥ ५४॥

छेम-धरन करतार कर तुलसी-पति पर-धाम।
सो बरतर ता सम न कोउ सब-बिधि पूरन-काम॥५५॥

करतार कर छेम-धरन पर-धाम तुलसी-पति, ता सम कोउ न सो बरतर सब-बिधि पूरन-काम।

१ कामकरनेहारे जीव के कल्याण को धारन करनेहारे बड़े

तेजस्वी तुलसी के स्वामी अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी हैं, उन के समान कोई नहीं है वे श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ हैं क्योंकि वे सब प्रकार से मनोरथ के पूर्ण करनेहारे हैं।

२ द्वितीयार्थ-भक्ति पक्ष। अन्वय।

तुलसी-पति पर-धाम कर (प्राप्ति) क्षेम-धरन (शेष पूर्ववत्)

श्रीरामचन्द्र के परम धाम की प्राप्ति ही जीव के कल्याण को बढ़ानेवाली है क्योंकि वह सर्वश्रेष्ठ और सब प्रकार से भक्त जीव की कामना को पूरा करनेवाला है जिस के पाने से और किसी वस्तु के पाने की इच्छा नहीं रहती ॥ ५५ ॥

करता कारन सार-पद अव्यय अमल अभेद।
करम घटत अपि बढ़त है तुलसी जानत वेद ॥ ५६ ॥

करता कारन अव्यय अमल अभेद पद तुलसी वेद जानत करम घटत अरु बढ़त है।

काम का करनेवाला करता और जिस से काम उत्पन्न होता वह कारण ये ही दोनों मुख्य हैं (इन से उत्पन्न कर्म्म वा कार्य्य मुख्य नहीं है) और ये दोनों अनश्वर मल-हीन और भेद-रहित है। तुलसी-दास कहते हैं कि वेद जानता है और प्रगट करता है कि कर्म घटता बढ़ता रहता है। कर्म करनेवाला जीव अमर है और शाक्त के मत से प्रेरक माया प्रकृति कार्य्यों के कारण की जननी भी अव्यय अमल है। कार्य घटता बढ़ता रहता है।

भक्तिपक्ष में लगाने से ऐसा अर्थ होगा।

करता और कारण ये दो मुख्य पदार्थ हैं। कर्ता की इच्छा से सत्सङ्गादि कार्य घटते बढ़ते हैं अर्थात् जब साधुओं की अधिक सङ्गति हुई तो भक्ति विवेक आदि कार्य बढ़े जिन के प्रभाव से अव्यय अमल अभेद ज्ञान हुआ और मुक्ति मिली और जो विषयी आदि बुरों का सङ्ग हुआ तो पाप के बढ़ने से पुन्य कर्म घट गया जिस से जन्म मरण आदि का दुख (अपि) निश्चयकर उत्पन्न हुआ इस को वेद जानता है॥ ५६॥

स्वेद-ज जौन प्रकार तें आप करै कोउ नाहिँ।
भयेउ प्रकट तेहिँ के सुनौ, कौन बिलोकत ताहिँ॥५७॥

सुनौ जौन प्रकार तें स्वेद-ज आप प्रकट भयेउ तेहिँ के कोउ करैं नाहिँ ताहि कौन बिलोकत।

सुनो जिस प्रकार पसीने से उत्पन्न होनेवाले जीव (ढील लीख चीलर आदि) आप ही से उत्पन्न होते हैं उन को कोई उत्पन्न नहीँ करता केवल शरीर का पसीना उन के उत्पन्न होने का कारण है। उन को कौन देखता है? अर्थात् कोई नहीँ देखता है। यह किसी पर विदित नहीँ होता कि ये कब जनमे और आप स्वभाव ही से वे उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार कर्म आप ही उत्पन्न होते हैं (प्रकृतेः क्रियमाणानि स्वयं कर्म्माणि नित्यशः अहङ्कार-विमूढ़ात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते) स्वभाव ही से प्रतिदिन किये जाते कर्म्म को यह जीव अपना किया समझ कर अहङ्कार करता

है और अपने को कर्ता समझता है इसी से शुभाऽशुभ कर्म्म की जाल से नहीं छूटता ॥ ५७ ॥

भयो बिखमता कर्म महँ समता किये न होय ।
तुलसी समता समुझ कर सकल मान मद धोय ॥५८॥

अन्वय। कर्म महँ बिखमता भयो किये समता न होय सकल मान मद धोय समुझ समता कर ।

जीवों के कर्म्म में (व्यभिचार लोभ क्रोध आदि के कारण) विरोध पड़ गया है अर्थात् कुकर्म्म जीवों से बन पड़ा है फिर उस को शुद्ध बनाना चाहते हैं सो शीघ्र नहीं सुधरता है। तुलसी-दास कहते हैं कि विषमता के बीज अहङ्कार और मत्तता कामादि से मोहित होने को छोड़ कर और ज्ञान को बढ़ा कर सब जीवों में समता करो। सब जीवों को अपने समान समझ कर किसी पर क्रोध किसी के धन का लोभ न करो तो भला होगा ॥ ५८ ॥

सम-हित सहित समस्त जग सुह्रिद जानु सब काहु ।
तुलसी यह मत धारु उर दिन प्रति अति सुख लाहु ॥ ५९ ॥

अन्वय। समस्त जग सब काहु सम-हित सहित सुह्रिद जानु यह मत उर धारु तुलसी प्रतिदिन अति सुख लाहु ।

संसार में के सब लोगों को समान भलाई के साथ अपना मित्र समझो और किसी से शत्रुता न करो यह सिद्धान्त अपने हृदय

में धारण करो तो तुलसी-दास कहते हैं कि सब दिन अत्यन्त आनन्द का लाभ होता है।

संसार में अपने शत्रु से सब लोग दुख पाते हैं जब तेरा कोई शत्रु ही न रहा तो तुझे क्योंकर दुःख हो सकता है। "सिया राममय सब जग जानी" सब संसार के लोगों को सीताराम समान जान कर सब से प्रेम करो जिस से सदा सुखी रहो ॥ ५९ ॥

यह मन महँ निश्चय धरहु है कोउ अपर न आन।
का सन करत बिरोध हठि तुलसी समुझ प्रमान ॥६०॥

अन्वय। मन महँ यह निश्चय धरऊ आन कोउ अपर न है तुलसी प्रमान समुझ हठि का सन बिरोध करत।

अपने मन में यह निश्चय रक्खो और कोई लोग दूसरे नहीं हैं (जब सब संसार राममय है तो दूसरा कोई कहाँ से आवेगा) तुलसी-दास के कहने को प्रमाण मानो। हठ कर के किस के साथ बिरोध करता है सब तेरे मित्र ही हैं। सब तेरे मित्र हैं इस कारण किसी के साथ बिरोध उचित नहीं है। यदि तू किसी से बैर न करेगा तो कोई तेरा शत्रु न बनेगा। तेरी ही करनी से शत्रु होते हैं। समता और मित्रता तेरा मुख्य कर्तव्य है ॥ ६० ॥

महि जल अनल सो अनिल नभ तहाँ प्रगट तव रूप।
जानि जाय बर बोध तें अति सुभ अमल अनूप ॥६१॥

अन्वय। तव सो रूप (जहाँ) महि जल अनल अनिल नभ तहाँ प्रगट, अमल अनूप अति सुभ (सो) बर बोध तें जानि जाय।

तेरा वह रूप जहाँ पृथ्वी जल वायु अग्नि और आकाश हैं तहाँ प्रत्यक्ष ही है। इन पाँचों तत्त्वों से यह संसार बना है और तेरा शरीर भी इन्हीं से बना है तो दोनों पदार्थ एक ही हैं उन्ही पञ्च तत्त्वों से रचित शरीर में जिन से समस्त ब्रह्माण्ड बना है तेरा जीवात्मा बास करता है। यह जीवात्मा परमात्मा का अंश होने के कारण निष्पाप वा निर्लेप निरुपम और परम कल्याणरूप है और सुन्दर ज्ञान से जाना जाता है। ब्रह्मज्ञान होने पर सब मायाकृत भेद नष्ट हो जाता है तब समदृष्टि होती है और सब प्रकार का विरोध दूर हो जाता है।

छिति जल पावक गगन समीरा। पञ्च रचित यह अधम सरीरा॥
ईश्वर अन्स जीव अविनासी। सत चेतन घन आनन्दरासी॥
सो मायावस भयो गोसाईं। बध्यौ कीर मर्कट की नाईं॥

इत्यादि चौपाइयों से रामायण में यह विषय वर्णित है॥ ६१॥

जो पै आकस्मात तें उपजै बुद्धि बिसाल।
ना तौ अति छल हीन ह्वै गुरु-सेवन कछु काल॥६२॥

अन्वय। पै जो बिसाल बुद्धि आकस्मात तें उपजै ना तौ कछु काल अति छल हीन ह्वै गुरुसेवन (तें उपजै)।

अब जो पहले दोहे में कह चुके हैं कि "बर बोध तें जान पड़े" सो बोध होने का उपाय कहते हैं। परन्तु यदि वह बड़ी बुद्धि

भगवत् कृपा से आप से आप हो जाय तो बहुत उत्तम है नहीं तो कुछ समय तक सब प्रकार के कपट से हीन हो कर गुरु की सेवा करने से अवश्य ज्ञान हो सकता है।

अकस्मात् ज्ञान होना परमेश्वर की दया वा पूर्व जन्म के संस्कार से सम्भव हो सकता है॥ ६२॥

कारज जुग जानहु हिये नित्य अनित्य समान।
गुरु-गम तेँ देखत सु-जन कह तुलसी परमान॥६३॥

अन्वय। हिये समान नित्य अनित्य जुग कारज जानहु, तुलसी परमान कह सु-जन गुरु-गम तेँ देखत।

अब जिन के बोध से कल्याण होता है उन का बर्णन करते हैं। अपने मन में नित्य अनित्य दोनों कामों को एक सा जानो अर्थात् जब तक सत् असत् का पहिचान न हो तब तक अज्ञानी के लिये दोनों समान है। कभी कभी भ्रम में पड़ कर लोग सत्य को असत्य और असत्य को सत्य जान उसी की सेवा करते हैं। संसार में स्त्री पुत्र धन धाम विषयसुख पुरुष को बाँध रखनेवाले हैं उन्ही को लोग हित समझते हैं और सब को समान समझना परोपकार सत्सङ्ग साधुसेवा ईश्वरभक्ति जो परम उपकारी वस्तु हैं उन्ही में लोगों का कम अनुराग होता है। तुलसी-दास प्रमान के साथ कहते हैं कि सज्जन लोग गुरु की दी हुयी ज्ञानदृष्टि से देखते हैं॥ ६३॥

महि मयङ्क ग्रह-नाथ को आदि ज्ञान भव भेद।
ता विधि तेई जीव कहँ होत समुझ बिनु खेद॥ ६४॥

अन्वय। ग्रह-नाथ मयङ्क महि आदि ज्ञान भेद भव। तेई जीव कहँ समुझ बिनु ता विधि खेद होत।

सूर्य उदय के पहले पृथ्वी पर के सब पदार्थ अन्धकार में एक से जान पड़ते हैं परन्तु सूर्य और चन्द्रमा के उदय होने पर पृथ्वी आदि पदार्थों के ज्ञान का भेद होता है अर्थात् यह भूमि है यह जल और यह पर्वत है इत्यादि भिन्न भिन्न प्रकार का ज्ञान होता है। उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म के अंश इस जीव को ज्ञान के विना दुःख होता है। जब तक अज्ञानरूपी अन्धकार से इस का मन ढ़का रहता है इसे सत्य असत्य नहीं जान पड़ते परन्तु जब ज्ञानरूपी नेत्र खुल जाता है तो सुखदायक और दुखदायक पदार्थ देख पड़ते हैं। जब तक इसे ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता इस के दुख की आत्यन्तिक निवृत्ति (मोक्ष) नहीं होती (ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः)॥ ६४॥

परो फेर निज करम महँ भ्रम भव को प्रद हेत।
तुलसी कहत सु-जन सुनहु चेतन समुझ अचेत॥ ६५॥

अन्वय। निज करम महँ फेर परो भव भ्रम को प्रद हेत। तुलसी कहत (हे) सु-जन सुनहु चेतन अचेत समझ।

अपने ही किये कर्म में भेद पड़ गया है यही जन्म पाने और

भ्रम होने का कारण हुआ। तुलसी-दास कहते हैं कि हे सत्पुरुषो! सुनिये (अपने कर्म के हेरफेर हो जाने के कारण) चेतन बुद्धिमान जन भी अचेतन अज्ञानी समझे जाते हैं। शुभ अशुभ दोनों प्रकार के कर्म पुरुष को संसार में बांधनेवाले होते हैं। कभी कभी शुभ कर्म करने में अशुभ और अशुभ करते समय भी शुभ कर्म हो जाते हैं जैसे राजा नृग ने एक गौ दो ब्राह्मण को संकल्प दी। अजामिल ने अपने पुत्र में ममता मोह के कारण उसे नारायण कह पुकार मुक्ति पायी। इस कारण दोनों कर्मों को छोड़ हरिभक्ति सत्सङ्गति आदि करना उचित है॥ ६५॥

नाम-कार दूखन नही तुलसी किये बिचार।
करमन की घटना समुझि ऐसे बरन उचार॥ ६६॥

अन्वय। नाम-कार दूखन (परन्तु) तुलसी ऐसे बिचार करमन की घटना समुझि बरण उचार (किये दूषन) नहीं।

केवल नाम के लिये अहङ्कार के साथ जो जो कर्म किये जाते हैं वे दोषकारी होते हैं। परन्तु तुलसी-दास ऐसा विचारते हैं कि कर्म की भवितव्यता समझ कर जो (काम करते) और वाक्य उच्चारण करते हैं उन का कर्म वा और वाक्य दूषणकारी नहीं होता। जैसे राजा दशरथ ने कर्म की घटना को विना सोचे विचारे कैकेयी को बर-दान दिया पीछे से पछतावा किया और दुःख पाया। यदि पहले से सोच विचार के वाक्य उच्चारण किये होते तो कभी भी दुःख भोगना न पड़ता।

दूसरे प्रकार अन्वय और अर्थ।

करमन की घटना समुझि ऐसे बरन नाम उचार किये (कि) तुलसी बिचारे दूखनकार नहीँ ।

सब के अपने अपने कर्म का होना समझ कर इस प्रकार उन के (नाम के) वर्णाँ का उच्चारण किया गया है कि तुलसी-दास के बिचार में नाम रखनेवाले का कुछ दोष नहीँ हो सकता। जैसे सूर्य्य के नाम "दिवाकर और 'तिग्मरश्मि" इस कारण रक्खे कि उन के उगने से दिन होता है और उन की किरणेँ बड़ी तीखी हैँ। चन्द्रमा के नाम "निशाकर हिमकर" इस कारण रक्खे गये कि उन के उदय से रात की शोभा होती और उन की किरणेँ ठण्ढी हैँ इत्यादि। जिस प्रकार का इन का कर्म देखा गया उसी प्रकार का नाम रक्खा गया तो इस में कोई बात दूषण की नहीँ है।

अभिप्राय यह कि यद्यपि सूर्य्य और चन्द्रमा दोनोँ तेजरूप हैँ परन्तु गुणोँ के अनुसार उन के नाम भिन्न२ ऊये हैँ ॥ ६६ ॥

सु-जन कु-जन महि-गत जथा तथा भानु ससि माँहि।
तुलसी जानत ही सुखी होत समुझ बिन नाहि ॥६७॥

अन्वय। (जथा) भानु ससि माँहि तथा महि-गत सु-जन कु-जन। तुलसी जानत ही (सु-जन) सुखी होत (परन्तु) समुझ बिन नाहिँ (सुखी) होत।

जैसे जब सूर्य चन्द्रमा में मिलते हैँ तो चन्द्रमा की कला

क्षीण हो जाती है वैसे ही पृथ्वी पर जब साधु जन और दुष्ट एकत्र होते हैं तो साधु जन की साधुता को विनाश कर उन्हे दुखी करते हैं। तुलसी-दास कहते हैं कि ज्यों ही साधु जन दुष्ट को पहचान लेते हैं और उन का सङ्ग छोड़ देते हैं वैसे ही सुखी होने लगते हैं परन्तु जब तक उन्हे नहीं पहचानते तब तक उन के सङ्ग से दुःखी बने रहते हैं। यहाँ सूर्य्य के सङ्ग से चन्द्रमा के क्षीण होने ही भर का दृष्टान्त दिया है और उतने ही अंश में सादृश्य है इस से कवि ने सूर्य्य की निन्दा की यह अभिप्राय नहीं निकलता है।

अमावास्या को चन्द्रमा सूर्य्य एकत्र होते हैं द्वितीया से ज्यों ज्यों अलग अलग होते हैं त्यों त्यों उन की कला बढ़ती है॥ ६७॥

मातु*-तात भव-रीति जिमि तिमि तुलसी गति तोरि।
मातु न तात न जानु तब है तोहि समुझ बहोरि॥६८॥

अन्वय। जिमि मातु-तात भव-रीति तिमि तोरि गति। तुलसी मातु न बहोरि तात न तब समझ है।

जिस प्रकार माता पिता के जनमने की रीत है अर्थात् जैसे तेरे माता पिता अपने अपने माता पिता के रजबीज से उत्पन्न हुये थे वैसे ही तू अपने उत्पन्न होने की रीत को भी जाने। अर्थात्

---

* न माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति। सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्?

श्रीभगवच्छङ्कराचार्यकृतनिर्वाणदशकम्।

माता के उदर में पिता के अंश के आने से शुक्रशोणित के मेल से जैसे सन्तान होता है सो जैसे अपने मा-बाप से भिन्न नहीं है क्यों कि "आत्मैव जायते" आप ही पुरुष पुत्र हो कर उत्पन्न होता है उसी प्रकार (हे जीव!) तेरी भी उत्पत्ति ब्रह्म और माया के योग से होती है। तू ईश्वर का अंश है माया के वश हो कर अपने को स्वतन्त्र समझता है इसी से संसार में बाँधा है।

तुलसी-दास कहते हैं कि तेरी मा कोई नहीं पुनः तेरा पिता भी नहीं केवल तेरा ज्ञान ही जो कुछ है सो है। जब तुझे आत्मज्ञान होगा तो माता पिता सब छूट जायँगे तू सच्चिदानन्दरूप हो जायगा ॥ ६८ ॥

सरब सकल तै है सदा बिसलेखित सब ठौर।
तुलसी जानहिँ सुह्रिद ए ते अति मति सिर मौर॥६९॥

अन्वय। तै सरब (है) सदा सब ठौर (है) सकल बिसलेखित है तुलसी ए सुह्रिद जानहिँ ते अति मति सिर मौर।

तू सर्वरूप है सर्वदा सब स्थानों में व्याप्त रहता है और सब से अलग भी है। तुलसी-दास कहते हैं कि विद्वान इस बात को जानते हैं वे अति बुद्धिमानों में भी श्रेष्ठ हैं।

जो सब ठौर है वह सब से अलग क्यों कर हो सकता है इस में विरोधाभास अलङ्कार हुआ ॥ ६९ ॥

अलङ्कार घटना कनक रूप नाम गुन तीन।
तुलसी राम-प्रसाद तें परखहिँ परम प्रबीन ॥ ७० ॥

ऊपर के दोहों में परमात्मा के अंश जीवात्मा का सब स्थान में व्याप्त रह कर भी सब से अलग होना कहा था उसी अर्थ को अब दृष्टान्त दे कर प्रमाणित करते हैं॥

अन्वय। कनक अलङ्कार घटना तीन नाम रूप गुन। तुलसी परम प्रबीन राम प्रसाद तें परखहिं॥

सोने से अलङ्कारों की रचना होती है उन के तीन नाम रूप और गुण होते हैं परन्तु सोना एक ही है और सब अलङ्कारों में व्याप्त है। कङ्कन कुण्डल और बिजायठ तीन गहने एक ही सोने से बनायिये तो तीनों के नाम रूप और गुण (अर्थात् कङ्कन हाथ को शोभित कुण्डल कान को और बिजायठ बाँह को भूषित करता है) भिन्न २ हुए परन्तु सोना सब में एक ही है। उसी प्रकार सत्त्व रज तम तीनों गुण और भूमि जल तेज वायु और आकाश इन पाँचों भूतों से यह संसार और संसारी सब पदार्थ बने हैं, सब में आत्म-तत्त्व एक ही है परन्तु पदार्थ भिन्न २ नाम से पुकारे जाते हैं। तुलसी-दास कहते हैं कि यह बात बड़े ज्ञानी लोग राम चन्द्र की दया से जानते हैं॥ ७०॥

एक पदारथ बिबिध गुन सञ्ज्ञा अगम अपार।
तुलसी सु-गुरु प्रसाद तें पाये पद निरधार॥ ७१॥

अन्वय। एक पदारथ गुन बिबिध अगम अपार सञ्ज्ञा तुलसी सु-गुरु प्रसाद तें निरधार पद पाये॥

सोना एक ही वस्तु है परन्तु उस के गुण अनेक हैं और नाम इतने अधिक हैं कि जिस को न कोई जान सके न गन सके।

अभिप्राय यह कि एक ही सोना है जिस की अनेक प्रकार की औषधियाँ बनती है जिस के असङ्ख्य गुण होते हैं। भूषण आदि से शोभा दानादि से पुण्य भक्षणादि से पुष्टि होती है। सोने की मुद्राओं और भूषणों के नाम इतने अधिक हैं जिन को गिन कर कोई पार नहीं पा सकता है। उसी प्रकार एक ही आत्मा है जिस के अंश से चौरासी लाख जीवें की सृष्टि हुई है।

तुलसी-दास कहते हैं कि उत्तम गुरु की दया से निश्चयात्मक वस्तु अर्थात् परमात्मा को पाते हैं। गुरु कृपा कर ज्ञान देवें तो परमात्मा का पहचान होवे॥ ७१॥

गन्धन मूल उपाधि बहु भूखन तन गन जान।
सोभा गुन तुलसी कहँहिँ समुझहिँ सुमति-निधान॥७२॥

अन्वय। मूल गन्धन, तन भूखन गन बहु उपाधि जान तुलसी गुन शोभा कहँहिँ सुमति-निधान समुझहिँ॥

एक मल कारण केवल (गन्धन) सोना है शरीर के अनेक प्रकार के भूषणों के समूह जो सोने से बनते हैं उन्हें उपाधि जानना चाहिये। तुलसी-दास कहते हैं कि इन का गुण शोभा का बढ़ाना है और वस्तु सब में एक ही है। इस बात को बुद्धिमान लोग समझते हैं।

जिस प्रकार सब भूषणों की जड़ केवल एक सोना है उसी प्रकार सब पदार्थों का मूल केवल एक परमात्मा है। जिस प्रकार सोने से चाहे जितने प्रकार के भूषन बनाओ परन्तु सोना सब में एक ही है सब का आकार भिन्न हो गया है, उसी प्रकार सोनारूप आत्मा सब में एक है। संसारी पदार्थ चाहे जितने प्रकार के हों एक आत्मतत्त्व सब में है॥

जो बात ऊपर कह चुके हैं उसी को दृढ़ करने के लिये इस दोहे में फिर कहा ॥ ७२ ॥

जैसे जहाँ उपाधि तहँ घटित पदारथ रूप।
तैसो वहाँ प्रभास मन गुन गन सुमति अनूप ॥ ७३ ॥

अन्वय। जहाँ जैसो उपाधि तहं तैसो पदारथ रूप प्रभास (तथा) गुन गन घटित अनूप सुमति मन (गुन) ॥

जहाँ पदार्थ में जिस प्रकार की उपाधि लगाई जाती है वहाँ वैसा ही उस पदार्थ का रूप शोभा और गुण बन जाता है। जिन सज्जनों के उपमा रहित सुबुद्धि है उन के मन इस को जानते हैं ॥

जिस प्रकार उपाधि के अनुसार सोने के रूप गुन आदि बदल जाते हैं वैसे ही आत्मा की जैसी उपाधि हुई वहाँ वैसा ही देव मनुष्य पशु आदि रूप और तदनुसारी गुन हो जाते है और उन की शोभा भी अपनी उपाधि के समान होती है। सोने के भूषणों में जैसे मैल लगने से उस की शोभा बिगड़ जाती है उसी रीत पापरूप मैल आत्मा के सद्गुण को नष्ट कर देती है। अग्नि संयोग से धातु की मैल जल जाती है वैसे ही ज्ञानाग्नि वा भक्ति के द्वारा आत्मा का मल नष्ट हो जाता है। इस बात को सत्सङ्ग और राम की दया से बुद्धिमान लोग भली भाँत समझते हैं। इस दोहे में भी पूर्व कथित अर्थ को दृढ़ किया है ॥ ७३ ॥

जासु वस्तु अस्थिर सदा मिटत मिटाये नाहि।
रूप नाम प्रगटत दुरत समुझि बिलोकहु ताहि ॥ ७४ ॥

अन्वय। वस्तु सदा अस्थिर जासु मिटाये नाहि मिटत रूप नाम दुरत प्रगटत ताहि समुझि बिलोकऊ॥

सोना सदृश आत्मारूप वस्तु सर्वदा स्थिर एकरूप एकरस रहती है ऐसा जानिये। उस का नाश करने से भी वह नष्ट नहीं होती, केवल जब २ उस का रूप बदलता है तो दूसरा नाम पड़ जाता है इस से रूप और नाम बार२ नष्ट होते और फिर प्रगटते हैं इन को भली भाँत समझ कर देखो। वस्तुओं का आकार मात्र बदल जाता है परन्तु आत्मतत्व सब में एक है। यह बात सोने के उदाहरण से सिद्ध कर दिखलाया है॥ ७४॥

पेखि रूप सञ्ज्ञा कहब गुन सु-बिबेक बिचार।
इतनोई उपदेस बर तुलसी किये बिचार॥ ७५॥

अन्वय। रूप पेखि (तथा) सु-बिबेक गुन बिचारि सञ्ज्ञा कहब। बर बिचार तुलसी इतनोई उपदेश किये।

स्वरूप को देख कर और अच्छे बिचार से गुन को सोच कर नाम रखना चाहिये। उत्तम बिबेक तुलसी-दास वा सुन्दर बिबेक युक्त इतने ही उपदेश को तुलसी-दास-जी ने किया है॥

अभिप्राय यह कि बिना सोचे विचारे अपना इष्टदेव कर लेना अच्छा नहीं होता। गुण आदि सब सोच विचार के अपना इष्टदेव बना के तब देवताओं की सेवा करनी चाहिये। योगी लोग जिस का ध्यान करते हैं उस मनोहर-रूप-वाले प्रभु को राम, मेघ के समान श्याम-वर्ण भक्त सुखदाई प्रभु को घनश्याम, फरसा धारण करनेवाले

को परशुराम, हल धारण करनेवाले को हलधर इत्यादि रूप के अनुसार संज्ञा के उदाहरण हैं। मछली के आकारवाले अवतार का नाम मत्स्य, कछुये के समान का कच्छप, शूकर के तुल्य का बराह, मनुष्य और सिंह के सदृश रूप नृसिंह, और अति छोटे रूप के कारण बावन इत्यादि रूप को देख कर परमेश्वर के लीलावतारों के नाम पड़े हैं॥

पूजा करने योग्य मूर्तियों के पाँच भेद हैं अर्थात् १ आप से आप प्रगटे जैसे श्रीरङ्ग पद्मनाभ शङ्कर आदि, २ देवताओं के स्थापित यथा जगन्नाथ ब्रह्मेश्वर बुधेश्वर भुवेश्वर आदि, ३ सिद्धों के स्थापित पन्हरीनाथ गोरख-नाथ आदि, ४ मनुष्यों के स्थापित नगर और ग्राम में बहुतेरे पाये जाते हैं, और ५वाँ स्वयं प्रतिष्ठित जैसे शालिग्रामादि जानना चाहिये। रूपों के भेद को आगे के दोहे में कहेंगे॥ ७५॥

सदा स-गुन सीता-रमन सुख-सागर बल-धाम।
जन तुलसी परखे परम पाये पद बिस्राम॥ ७६॥

अन्वय। तुलसी-(जो) जन सदा सुख-सागर सगुन बल-धाम सीता-रमन परखे परम पद बिस्राम पाये॥

तुलसी-दास कहते हैं कि जिस मनुष्य ने सदा सच्चिदानन्द मूर्ति सगुण ब्रह्मस्वरूप बल के पुञ्ज सीता के पति श्रीरामचन्द्र को पहचाना उस ने सब से उत्तम वस्तु मोक्ष को पाया क्योंकि सौन्दर्य, माधुर्य, सुकुमारता, स्वच्छता, शुद्धता, उज्ज्वलता, प्रसन्नता, सुखमा, वात्सल्य, मधुरता, गाम्भीर्य्य, भक्तवत्सलता आदि गुण सब श्रीरामचन्द्र में थे।

महर्षी वाल्मिकि जी ने अपनी रामायण में रामचन्द्र जी का अपूर्व वर्णन* किया है ॥ ७६ ॥

स-गुन पदारथ एक नित निरगुन अमित उपाधि।
तुलसी कहहिँ बिसेख तेँ समुझ सु-गति सुठि साधि ॥ ७७ ॥

अन्वय। स-गुण पदारथ नित एक उपाधि 'निरगुन अमित उपाधि' (युक्त) तुलसी विसेख कहहिँ सुठि सु-गति साधि समुझ॥

सुन्दरता, क्षमा, दया, सुशीलता आदि गुणों से युक्त अर्थ धर्म काम मोक्ष सब के देनेहारे सगुन (पदार्थ) परमेश्वर श्रीरामचन्द्र हैँ (उन के पाने के लिये) सदा एक (उपाधि) धर्म की चिन्ता करनी होती है अर्थात् शरणागत हो कर सेवा करना परन्तु रूप गुण आदि से रहित पर-ब्रह्म असंख्य उपाधि बाधाओं से युक्त हैँ उन के पाने के लिये रूखे ज्ञान को प्राप्त करने में अत्यन्त परिश्रम और

---

* इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्य्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी ॥ १ ॥
बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥ २ ॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥ ३ ॥
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवान् शुभलक्षणः ॥ ४ ॥
(इत्यादि वाल्मिकीये रामायणे।)

असंख्य विघ्न होते है। इस लिये तुलसी-दास सगुन ब्रह्म रामचन्द्र को निर्गुण से (विसेख) सुखदाई कहते हैं इस कारण (समुझि) विचार कर के (सुठि सुगति साधि) सुन्दर सुगति को साधो अर्थात् उत्तम गति पाने के लिये रामचन्द्र की आराधना करो। इस में* सगुन ब्रह्म श्रीरामचन्द्र की भक्ति की ज्ञान से अधिक सुलभता दिखाई है ॥७७॥

यथा एक महँ बेद गुन ता महँ को कहु नाहिं।
तुलसी बरतत सकल है समुझत कोउ कोउ ताहि॥७८॥

अन्वय। यथा एक महँ बेद गुन कहु ता महँ को नाहिं तुलसी बरतत सकल है (परन्तु) ताहि कोउ कोउ समुझत।

जिस प्रकार एक रामरूप परमेश्वर में चार गुण हैं। ग्रन्थकार प्रश्न करते हैं कि कहो उन चारो गुणों में कौन नहीं है? अर्थात् सभी चर अचर जीव उन चारो के भीतर आ जाते हैं और सब इन्हीं में वर्तमान भी हैं अर्थात् सृष्टि पालन इन्ही के द्वारा होता है परन्तु इस के समझनेवाले विरले २ लोग हैं बहुत कम लोग समझते हैं।

संस्कृत ग्रन्थों में इन गुणों का बहुत प्रकार से वर्णन किया है। 'भगवत्-गुण-दर्पण' नाम ग्रन्थ में पहले, ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य्य, वीर्य्य,

---

* श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो!
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्।
(श्रीमद्भागवतम्)

और तेज ये छ गुण संसार के पालन आदि के उपयोगी हैं। दूसरे, सत्यता, ज्ञानिता, अनन्तता, एकता, व्यापकता, निर्मलता, स्वतन्त्रता, आनन्दिता आदि भजन के उपयोगी गुण हैं। तीसरे, दया, कृपा, अनुकम्पा, अनृशंसता, वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, कारुण्य, क्षमा, गाम्भीर्य्य, औदार्य्य, स्थैर्य्य, धैर्य्य, चातुर्य्य, कृतित्व, कृतज्ञत्व, आर्द्रता, ऋजुता, सुहृदता आदि गुण भगवान के सेवकों के लिये उपकारी हैं। चौथे, सुन्दरता, मधुरता, सुगन्धता, सुकुमारता, उज्ज्वलता, लावण्य, तारुण्य आदि शरीर के गुण हैं। इस प्रकार रामरूप भगवान के (भेद) चार प्रकार के गुण शास्त्रों में वर्णित हैं। संसार की उत्पत्ति, पालन, नाश आदि सब उन्ही गुणों से होते हैं इस से सब इन्ही में हैं और इन्ही को वरतते हैं ॥ ७८ ॥

तुलसी जानत साधु जन उदय-अस्त-गत भेद ।
बिन जाने कैसे मिटै बिबिध जनन मन-खेद ॥ ७९ ॥

अन्वय । साधु जन उदय-अस्त-गत भेद जानत, तुलसी बिन जाने बिबिध जनन मन-खेद कैसे मिटै ॥

हरिभक्त साधु लोग उदय से ले कर अस्त पर्य्यन्त सारी पृथ्वी का भेद जानते हैं। तुलसी-दास कहते हैं कि बिना जाने अनेक मनुष्यों के मनों का दुख किस प्रकार दूर हो सकता है ॥

अभिप्राय यह कि जगत् कोई सत्य पदार्थ नहीं केवल माया की शक्ति से सत्य-सा प्रतीत होता है इस बात को ज्ञानी साधु जन जानते हैं। विषयी संसारी, जीव जब तक उसे ब्रह्मज्ञान न हो, नहीं जान

सकता इसी कारण वह सुख दुख का भागी होता है। पूरा ज्ञान होने पर उसे भी इस जगत की चार दिन की चान्दनी ज्ञात हो जायगी तब वह दुखहीन हो जायगा ॥ ७९ ॥

सन्सय सोक स-मूल रुज देत अमित दुख ताहि ।
अहि अनुगत सपने बिबिध जाइ पराय न जाहि ॥८०॥

अन्वय । सन्सय समूल सोक रुज ताहि अमित दुख देत । जाहि सपने बिबिध अहि अनुगत पराय न जाइ ॥

ऊपर के दोहे में कही बात को अब दृष्टान्त दे कर स्पष्ट करते हैं। भ्रमरूप कारण से दृढ़ हो कर दुखरूपी रोग उसे अनन्त क्लेश दे रहा है जैसे किसी के पीछे सपने में अनेक साँप लगे हों और उस से भागा न जाय, अर्थात् उन के घेरे में पर कर वह बिचारा अत्यन्त दुखी हो।

अभिप्राय यह कि सपने के साँप और उन से दुख पाना सब मिथ्या ही है परन्तु सपना देखनेवाले को उन से सचा क्लेश होता है उसी प्रकार इस संसार के विषय सब झूठे हैं और उन के द्वारा विषयी लोगों को जो सुख होता है सो भी झूठा है क्योंकि अन्त को उन से दुख ही मिलता है ॥ ८० ॥

तुलसी साँचो साँप है जब लगि खुलैं न नैन ।
सो तब लगि जब लगि नहीं सुनै सु-गुरु-बर-बैन ॥८१॥

अन्वय । जब लगि नैन न खुलैं (तब लगि) साँचो साँप है सो तब लगि जब लगि सु-गुरु-बर-बैन नहीं सुनै ॥

स्वप्न में जब तक आँखे न खुलैं तब तक साँप सच्चे से जान पड़ते हैं और ज्ञानरूपी आखों का खुलना तब तक नहीं हो सकता जब तक अच्छे-गुरु के सुन्दर वाक्यों को न सुनें ।

जब तक आखें न खुलें स्वप्न का दुख किसी प्रकार दूर नहीं होता और स्वप्न देखनेहारा महादुख में पड़ा ही रहता है जब कोई उसे जगा देता है और उस की आँखें खुल जाती हैं उस का क्लेश सब झूठा और व्यर्थ जान पड़ता है उसी प्रकार जगानेहारा गुरु जब ज्ञानरूपी नेत्र खोल देता है तो यह जगत सपने की सम्पत सा जान पड़ता है ॥ ८१ ॥

पूरन परमा-ऽरथ दरस परस न जौ लगि आस ।
तौ लगि खन न,उघात नर जौ लगि जल न प्रगास॥८२॥

अन्वय । जौ लगि आस परसत (तौ लगि) पूरन परमा-ऽरथ दरस न जौ लगि जल न प्रगास (तौ लगि) नर खन न अघात ।

जब तक जीव को विषय सुख की आशा स्पर्श करती है अर्थात् जीवों के मनसे विषय का अभिलाष भलीभाँत नष्ट नहीं हो जाता तब तक पूरी मुक्ति का दर्शन नहीं होता । जब तक विषय की आश तब तक संसार की फाँस । इस में दृष्टान्त देते हैं कि जब तक जल न प्रगटे तब तक मनुष्य एक चण भी तृप्त नहीं होता संसार के खेती-

करनेहारे देखा करते हैं कि कब जल बरसता है जब तक जल नहीं होता उन के मन को आनन्द नहीं मिलता परन्तु जल पड़ते ही वे आनन्द से भर जाते हैं वही दशा संसारी जीव की है कि विषय सुख की आशा मिटते ही उन के मन में ज्ञान उपजता है ॥

किसी किसी पुस्तकों में "तौ लगि खन उप्यान नर" किसी में "खरज उघान नर" पाठ है। उप्यान शब्द का अर्थ जो सुखना करें तो वह असङ्गत सा जान पड़ता है क्योंकि ओप्याय धातु संस्कृत भाषा में बढ़ती वा परिपूर्णता का अर्थ देता है इस कारण "उघान" को अघान का अपभ्रंश मान कर अघाना अर्थ किया गया है। यदि "तौ लगि खन नर न उद्यान" अन्वय कीजिये तो पहले पाठ का अर्थ "तब तक एक क्षण भी मनुष्य नहीं बढ़ता वा तृप्त होता" होगा। इस प्रकार दोनो पाठ ठीक हो सकते हैं ॥

तब लगि हम तेँ सब बड़ो जैा लगि है कछु चाह।
चाह-रहित कहु को अधिक पाय परम-पद थाह॥८३॥

अन्वय। जब लगि कछु चाह है तब लगि हम तेँ सब बड़ो, चाह-रहित कहँ को अधिक (तिन) परम-पद थाह पाये।

जब तक मनुष्य के मन में किसी वस्तु की इच्छा बनी है तब तक ही (उसे समझना चाहिये) कि हम से सब लोग बड़े हैं क्योंकि आशा-हीन के निकट कौन बड़ा है? अर्थात् कोई भी बड़ा नहीं है। जिस ने आशा छोड़ी उस ने परम पद मुक्ति का थाह (पता)

पया। आशा ही दुखदाई* बन्धन है जिस ने सब प्रकार की आशा त्यागी वह सुखी हुआ॥ ८३॥

कारन करता है अचल अपि अनादि अज-रूप।
तातेँ कारज बिपुल-तर तुलसी अमल अनूप॥ ८४॥

अन्वय। कारन करता अपि अचल अनादि अज-रूप है तुलसी अमल अनूप तातेँ बिपुल-तर कारज।

जिस से कार्य उत्पन्न होता है वह कारण और कार्य करनेवाला जीव भी दोनोँ स्थिर अनादि और जन्म-हीन हैँ तुलसी-दास कहते हैँ कि मल-हीन उपमा रहित अर्थात् निर्मल और निरुपम उस कारण से (बिपुल-तर) बहुत से कार्य होते हैँ॥

द्वितीयार्थ। कारण अर्थात् सब जीवोँ को उत्पन्न करनेहारा परमात्मा अथवा कारण का भी कर्ता अर्थात् कारणोँ का भी कारण परमेश्वर और कर्ता अर्थात् उसी परमात्मा का अंश जीव जो सब कार्य्योँ को करता है दोनोँ ही (अपि) निश्चय कर अचल अनादि और ब्रह्म के रूप हैँ इन निर्मल निरुपम पदार्थोँ से अनेक प्रकार कार्य होते हैँ॥ ८४॥

करता जानि न परत है बिन गुरु-बर-परसाद।
तुलसी निज सुख बिधि-रहित केहि बिधि-मिटै बिखाद॥ ८५॥

---

* आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।
आशापाशस्य ये दासास्ते दासा जगतामपि।
आशा दासीकृता येन तस्य दासायते जगत्॥

अन्वय । बिन गुरु-बर परसाद करता (निज-रूप) न जान परत है तुलसी निज सुख बिधि-रहित बिखाद केहि बिधि मिटै ।

बिना किसी उत्तम गुरु की कृपा के जीव को अपना रूप नहीं जान पड़ता इस कारण यह जीव अपने सुख के उपायों के ज्ञान से हीन है तो उस का दुख किस प्रकार मिट सकता है अर्थात् किसी भाँति नहीं मिट सकता । जब तक जीव अपने परमात्मा के रूप को भली भाँत न पहचाने और ईर्षाद्वेष मद मत्सर आदि को छोड़ श्रीराम-चन्द्र की शरण में न जाय और किसी हरि-भक्त का उपदेश इसे न मिले तब तक किस प्रकार इस का सब क्लेश दूर हो सकता है ? ॥ ८५ ॥

म्रित-मय घट जानत जगत बिन कुलाल नहिँ होय ।
तिमि तुलसी करता रहित करम करै कहु कोय॥८६॥

जगत जानत म्रित-मय घट कुलाल बिन नहिँ होय तिमि तुलसी कहु करता रहित कोय करम करै ।

संसार भर जानता है कि मट्टी का घड़ा बिना कोँहार के नहीँ हो सकता अर्थात् सुन्दर चिकना घड़ा बिना बनानेवाले के कभी नहीँ बन सकता उसी प्रकार तुलसी-दास पूछते हैँ कि कहो बिना कर्ता के कौन काम (करता) होता है अर्थात् कोई भी काम बिना करने-वाले के कभी भी नहीँ हो सकता है । जो जो काम देख पड़ता है सब के कोई न कोई करनेवाले अवश्य ही रहे हैँ । वही दशा इस जगत की भी है। ऐसा बड़ा ब्रह्माण्ड बिना किसी कर्ता के कभी नहीँ

हो सकता और इस जगत का एक अंश हम लोगों का शरीर भी बिना किसी कर्ता के कभी नहीँ हो सकता इस हेतु इन का कर्ता अवश्य मानना पड़ा वह कर्ता श्रीपरमेश्वर के अवतार रामचन्द्र को छोड़ और कौन हो सकता है। अब अपने कर्ता परमेश्वर को पहचानना और उस की आराधना करना सब जीवोँ का मुख्य कर्तव्य है ॥ ८६ ॥

ता तेँ करता-ग्यान कह जा तेँ करम प्रधान।
तुलसी ना लखि पाइहै किये अमित अनुमान॥ ८७॥

ता तेँ करता-ग्यान कह जा तेँ करम प्रधान तुलसी अमित अनुमान किये ना लखि पाइहै।

इस कारण कर्ता ही का ज्ञान करो अर्थात् पहले कर्ता को भली भाँत पहचानो क्योँकि उसी से मुख्य कर्म उत्पन्न होता है तो कर्ता न हो तो कर्म कौन करे और जब कर्म ही न होगा तो उस का बन्धन भी कहाँ से आवेगा इस कारण कर्ता का जानना बहुत आवश्यक है। कर्ता के पहचानने के लिये ऊपर कई एक दोहोँ में अनेक उपाय बता चुके हैं जिन में गुरु सेवा सत्सङ्गति आदि मुख्य हैं। तुलसी-दास कहते हैं कि नहीँ तो असङ्ख्य अनुमान भी करते रहोगे तो भी नहीँ जान सकोगे। कर्म के उत्पन्न करने का मुख्य कारण कर्ता ही है तो इस को बिना जाने जो कर्म्म के जानने के लिये अनेक उपाय भी चाहे करे पर ज्ञान होना कठिन हो जाता है इस कारण कर्ता ही के जानने में यत्न करो जिस से आत्मज्ञान अवश्य होगा॥ ८७ ॥

अनूमान साछी रहित होत नहीँ परमान।
कह तुलसी परतच्छ जो सो कहु अपर को आन॥ ८८॥

अन्वय। साछी रहित अनूमान परमान नहीँ होत तुलसी कह जो परतच्छ सो कछु अपर आन न।

सत्तासी के दोहे में कह चुके हैं कि बिना कर्ता के ज्ञान अनेक अनुमान से कार्य सिद्धि न होगी उसी को और दृढ़ करते हैं॥

साची के बिना अनुमान प्रमाणित नहीँ होता इस कारण तुलसी-दास उपदेश देते हैं कि जो प्रत्यच है उसी को कहो और करो और दूसरे को मत करो।

अभिप्राय यह कि अपने मनसे अनुमान करके अनेक प्रकार का कर्म जो तूं करता है बिना साची के वह सब कुछ काम न देगा इस कारण अपने कार्य का साची रखना तेरे लिये बहुत आवश्यक है वह साची तेरा गुरु वा साधु जन हो सकते हैं इस हेतु गुरु के उपदेश और सज्जनोँ की सम्मति से काम किया कर तो अवश्य तेरा मनोरथ सिद्ध होगा॥ ८८॥

***सिद्द कारन करता सहित कारज किये अनेक।**
जौ करता जाने नहीँ तौ कहु कवन बिबेक॥ ८९॥

करता सिद्द कारन सहित अनेक कारज किये जौ करता नहीँ जाने तौ कछु कवन बिबेक किये।

---

* किसी किसी पुस्तक में "तिमि कारन" आदि पाठ है वहाँ उसी प्रकार कारन आदि अर्थ होगा॥

कर्ता (बनानेहारा) कोँहार मृत्तिकारूप कारन ले कर अनेक कार्य (घट आदि) बना चुका है तो केवल घट के कारन मृत्तिका को जान कर सन्तुष्ट हो रहा और यह न बिचारा कि मट्टी से बिना किसी कर्ता के ऐसा सुन्दर घट किस प्रकार हुआ। तुलसी-दास कहते हैं कि जो तूने कर्ता को न पहचाना तो कह तेरा बिबेक किस काम का हुआ केवल अधूरा रह गया।

अभिप्राय यह कि इस शरीर और जगत के बनने के अनेक कारणों को जान कर भी जो तू ने इस के मुख्य कर्ता श्रीराम को भली भाँत न पहचाना तो तेरा सब ज्ञान धर में मिल गया। सब कारणों के भी कारण श्रीराम का जानना बहुत आवश्यक है ॥८९॥

स्वरन-कार करता कनक कारन प्रगट लखाय।
अलङ्कार कारज सुख-द गुन सोभा सरसाय ॥ ९० ॥

ऊपर के दोहे में घट का उदाहरण दिखा कर अब स्वर्ण का उदाहरण दिखाते हैं॥

अन्वय। स्वरन-कार करता कनक कारन सुख-द अलङ्कार कारज लखाय शोभा गुन सरसाय॥

सोनार कर्ता सोना कारण और सुखदायी आभूषण वा गहना कार्य देख पड़ता है और अलङ्कार पहनने से जो शोभा होती है वह गुण है। सोने का स्वामी वा बनानेवाला इन सभों का मुख्य स्वामी है॥

यह दृष्टान्त देह वा संसार पर घट सकता है। देह और संसार को फैलानेहारा जीव सोनार है वही जीव कर्ता है। हरिभक्ति, ज्ञान सत्सङ्ग आदि सोना (इस जीवरूप सोनार के मुक्त वा बद्ध होने के) कारण हैं। संसार से मुक्ति वा उस में बन्धना अलङ्काररूप कार्य है। जो जीव शरीररूपी अलङ्कार को पा कर हरिभक्ति, सत्सङ्ग, ज्ञान उपार्जन आदि भले २ कामों को करता है वह मुक्त हो सकता है और जो बुरा काम करता है सो संसार की जाल में बाँधा जाता है जैसे शुद्ध सोना में पीतल आदि खाद मिलानेवाला सोनार सोने के स्वामी के पास दण्ड पाता है उसी प्रकार यह जीव यदि सोनारूप देह को भले कार्य में न लगा कर बुरे कार्यरूपी मल से दूषित करे तो वह सब के स्वामी रामचन्द्र के पास दण्ड पाने के योग्य होता है ऊपर के कई एक दोहों में रूपक अलङ्कार स्पष्ट है ॥९०॥

चामीकर भूखन अमित करता करतब भेद।
तुलसी ये गुरु-गम-रहित ताहि रमित अति-खेद॥९१॥

चामीकर (एक) करता करतब भूखण अमित भेद जे गुरु-गम-रहित (ते) ताहि रमित (ताहि) अतिखेद।

सोना तो एक ही है परन्तु (कर्ता) सोनार के करतव्य वा करनी से उस सोने का (कुण्डल, विजायठ, वाला कङ्गन आदि) गहने असङ्ख्य प्रकार के होते हैं। तुलसी-दास कहते हैं कि जो जन गुरु के दिये ज्ञान से हीन हैं वे उन्हीं गहनों में भूले रहते और सुख पाते हैं। ऐसे लोगों को बड़ा दुख होता है॥

अभिप्राय यह कि सोनाररूप जीव भोग की इच्छा से नाम धर२ के अनेक प्रकार के कर्मों को करता है वही अनेक भूषण हैं। यदि जीव इन कर्मों का कर्ता अपने को न माने तो न बाँधे परन्तु भूषणरूप उन कर्मों का कर्ता अपने को मान कर उन्हीं में लिप्त रहता है इस कारण संसार से मुक्त नहीं होता। जो लोग गुरु के उपदेश को पाये हैं वे कर्मों में लिप्त न रहने के कारण बद्ध नहीं होते परन्तु जो गुरु-ज्ञान हीन हैं वे कर्म में लिप्त होने के कारण बद्ध होते हैं। जिस प्रकार एक ही सोने से सोनार भला बुरा सब प्रकार का भूसन बनाता है उसी प्रकार यह जीव एक ही मनुष्यदेह से सब प्रकार का कर्म करता है जिन के अनुसार फल पाता है ॥ ९१ ॥

तन निमित्त जहँ जो भयो तहँ सोई परमान।
जिन जाने माने तहाँ तुलसी कहहिं सु-जान॥ ९२॥

तन निमित्त जहँ जो भयो तहँ सोई परमान। सु-जान तुलसी कहहिं जिन जहाँ जाने तहाँ माने॥

परमात्मा का अंश यह जीव अपनी शरीर के पुन्यपाप के कारण स्वर्ग मर्त्य पाताल आदि स्थान में देवता मनुष्य सर्प आदि जो कुछ हुआ अर्थात् जिस योनि में जन्म पाया वहाँ उसी को ठीक समझ लिया और उसी के अनुसार अपना काम करने लगा। ज्ञानी तुलसीदास कहते हैं कि जिन महात्माओं ने जहाँ यह बात भली भाँत जाना कि देवता आदि योनि और स्वर्ग आदि लोक इस आत्मा के लिये केवल एक खेल के समान हैं कर्म के अनुसार अदला बदला

करते हैं यह जीव परमात्मा का अंश अजर अमर है—वे ही ठीक २ सत्य को माने हुए हैं ॥ ९१ ॥

म्रिन्मय भाजन बिबिधि-बिध करता मन भव-रूप ।
तुलसी जाने ते सुख-द गुरु-गम ग्यान अनूप ॥ ९३ ॥

म्रिन्मय बिबिधि-बिध भाजन करता (कुम्भकार तथा) भव-रूप (बिबिधि-बिध भाजन) करता मन। तुलसी (ये अनप) गुरु-गम जाने ते सुख-द ॥

जसे एक मट्टीरूप कारण से अनेक प्रकार के घड़े हाँड़ी कसोरे आदि बरतन बनते हैं जिनका कर्ता कुम्हार है उसी प्रकार अनेक प्रकार के जन्म के रूप को पाने का कर्ता मन है। (मनमेव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः) मन को अन्त में जैसी बासना हुई तैसी योनि उस को दूसरे जन्म में मिली। तुलसी-दास कहते हैं कि जो लोग इस सिद्धान्त को गुरु के दिये हुये अतुल ग्यान से जानते हैं वे (दूसरों के लिये भी) सुखदाई हो जाते हैं और आप तो आनन्द-मय ही है ॥

जिस प्रकार मट्टी में पाँचो तत्त्वोंके गुन हैं उसी रीत शरीर में भी सब तत्त्व हैं । परमात्मा का अंश जीव अनेक प्रकार की वासनाओं में पड़ कर ईश्वर की माया से भूल अपने रूप का बिस्मरण कर देता है और मरने के समय में भी उस की इच्छा इन्हीं झूटे पदार्थों में लिप्त रहती है इस कारण संसार चक्र में घूमा करता है यदि गुरु की

कृपा से अन्त समय में उसका मन परमेश्वर में लगे तो वह भी सच्चिदानन्द परमेश्वरमय हो जायगा ॥ ६३ ॥

सब देखत छित भाजन हिँ कोउ कोउ लखत कुलाल।
जा के मन के रूप बहु भाजन बिलघु बिसाल ॥ ६४ ॥

सब छित भाजन हिँ देखत कोउ कोउ कुलाल लखत जा के मनरूप बहु भाजन बिलघु बिसाल।

सब लोग मट्टी के बरतनों को देखते हैं परन्तु कोई कोई (उन के बनानेवाले) कुम्हार को देखते हैं जिस के अनुरूप बहुतेरे बरतन छोटे और बड़े बने है। संसार के मनुष्य लोग "बाज़ार" में फैलाये हुये छोटे बड़े बरतनों को देखते हैं और उन की अत्यन्त सुन्दरता पर मोहित होते है और उस कुम्हार को जिस ने अपने मन की इच्छा के अनुसार इन बरतनों को बनाया था सराहते हैं परन्तु उन मनुष्यों में से बहुत थोड़े से मनुष्य उन बरतनों के बनानेहारे कुम्हार के जान-पहचानवाले हैं ॥

दूसरा अर्थ शरीर और परमात्मपक्ष में।

सब लोग पञ्चभूत रचित शरीर को देखते हैं परन्तु इस शरीर के धारण करनेहारे जीवात्मा को (जो परब्रह्म परमात्मा का एक अंश हो कर भी माया को जाल में फसने के कारण मट्टी के घड़े रूप शरीर को धारण किये हुये है) बहुत कम लोग पहचानते हैं। जिस की इच्छा के अनुसार अनेक प्रकार की योनि वा शरीर छोटी बड़ी हुई है अर्थात् जिस प्रकार का इस का कर्म

और वासना हुई है वैसी ही शरीर इस ने पाई है। कहने का यह अभिप्राय कि विविध योनि में घूम कर सुख दुख का भोगना केवल जीवों की निज वासना और करनी से हुआ है यदि ये सर्व वासनाहीन हो परमेश्वर में लीन होवें अवश्य जन्म मरण के क्लेश से छूट जावें ॥ ९४ ॥

एकै रूप कुलाल को माटी एक अनूप ।
भाजन अमित बिसाल लघु तो करता मनु-रूप ॥९५॥

अनूप कुलाल माटी एकै रूप अमित भाजन विसाल लघु तो (अवश्य) करता मनु-रूप ।

पहले कह चुके हैं कि कार्य अपने कारण के अनुसार होता है। उसी नियम से अब अनुमान प्रमाण के द्वारा वासना को अनेक जन्म के होने का कारण सिद्ध करते हैं।

अतुल कुम्हार और मट्टी दोनों एक ही प्रकार के हैं परन्तु इन कर्ता और कारणों से असङ्ख्य बरतन बड़े छोटे होते हैं तो इन के बड़े छोटे होने का कारण अवश्य कुम्हार का मन होगा। क्योंकि (कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्ते) जो २ गुण कारण में रहते हैं वे कार्य्य में भी अवश्य पाये जाते हैं। तो यदि केवल कुम्हार और मट्टी को अनेक प्रकार के घटों का कारण मानिये तो ठीक नहीं होगा क्योंकि एक प्रकार के कारण से अनेक प्रकार का कार्य्य नहीं हो सकता इस हेतु घटों के रूप रङ्ग में भेद होने का कारण कुम्हार का मन है यह सिद्ध हुआ।

यह कुम्हार माटी और घड़े का दृष्टान्त जीव और उस के शरीर धारण पर घटता है। परब्रह्म परमात्मा का अंश जीव माया की जाल में फस कर अनेक शरीर को धारण कर सुख दुख भोगता है सो यह इस जीवरूप कुम्हार कर्ता और माटीरूप माया ही के कारण से नहीं होता बरन इस जीव के अनेक योनि में जाने का मुख्य कारण इस की इच्छा वा कर्म करने और भोगने की बासना है। यह जिस प्रकार का कर्म करता है और उन का कर्ता अपने को मान कर उन के फल भोगने का अभिलाषी होता है उसी प्रकार की योनि में जन्म पा कर सुख दुख पाता है। इस जन्मरूपी जाल से यह तभी छूट सकता है जब गुरु की कृपा से या तो इसे पूरा ज्ञान हो, नहीं तो पूरी भक्ति हो कि सब कर्म का करानेहारा परमेश्वर को समझे और आप उन का दास बन के काम करे। ये ही दो उपाय इस जीव की मुक्ति के हैं दूसरे नहीं॥ ६५॥

जहाँ रहत बरतन तहाँ तुलसी नित्य स्वरूप।
भूत न भावी ताहि कह अतिसय अमल अनूप॥ ६६॥

जहाँ बरतन (रहत) तहाँ नित्य स्वरूप (आत्मा) रहत तुलसी ताहि न भूत न भावी (किन्तु) अनूप अतिसय अमल कह॥

जहाँ बर्तन (जीवात्मा के रहने का पात्र) शरीर रहता है नित्य सदा बर्तमान रहनेवाला यह जीवात्मा भी वहाँ ही रहता है अर्थात् निर्विकार परमेश्वर का अंश हो कर भी यह जीव माया के वश होने के कारण जहाँ जिस योनि में पड़ा उस योनि के शरीर के अधीन

हो कर वहाँ ही रहने लगता है। तुलसी-दास इसे न भूत जन्मा हुआ वा शरीर के साथ नष्ट हो गया न भावी शरीर के साथ होने-वाला कहते परन्तु अत्यन्त निर्मल अर्थात् सब प्रकार के दोषों से रहित इसी कारण उपमा रहित कहते हैं। परमात्मा का अंश होने के कारण यह जीव सदा अजर अमर है और चाहे जिस योनि में यह जाय पर नष्ट नहीं होता। तुलसी-दास जी इस दोहे में प्राण की अमरता और अन्य२ शरीरों में उत्पन्न होना प्रमाणित करते हैं ॥ ९६ ॥

स्वास समीर प्रतच्छ अप स्वच्छाऽऽदर्स लखात।
तुलसी राम-प्रसाद बिन अविगति जानि न जात॥९७॥

ऊपर कह चुके हैं कि यह जीवात्मा परमात्मा का रूप (अतिशय अमल) बड़ा निर्मल है। उस में यह शङ्का हो सकती है कि निर्मल है तो यह क्यों नहीं देख पड़ता है। उसी पर कहते हैं कि वह देख भी पड़ता पर बिना राम की दया लोग उसे पहचान नहीं सकते॥

अन्वय। स्वच्छाऽऽदर्स (इव) स्वास समीर अप प्रतच्छ लखात तुलसी राम-प्रसाद बिनु अविगति न जानि जात॥

निर्मल आरसी के समान स्वास वायु और जल साक्षात् देख पड़ता है अर्थात् जैसे मलहीन सीसे में मुख देख पड़े वैसे ही शरीर में जब तक वायु और जल है इस में चैतन्यता देख पड़ती है जब तक स्वासा रहती है यह शरीर चलता फिरता बोलता चालता

समझता बूझता है परन्तु स्वास के निकल जाने पर चैतन्यता चली जाती है तो यह चैतन्यता अवश्य परमेश्वर का अंश है। उसी प्रकार अप जो है जल उस के संयोग से अर्थात् माता पिता के रजबीज के योग से शरीर की उत्पत्ति होती है इस प्रकार जल वायु इस शरीर की रक्षा के मुख्य कारण हैं और इन में की चैतन्यता परमात्मा का अंश है तुलसी-दास कहते हैं कि यह जीवात्मा परमात्मा ही है। यह बात बिना राम की दया नहीं जानी जाती इसी से (अविगति) मनुष्य की पहुँच से बाहर है मनुष्य की गति वहाँ तक नहीं है॥

द्वितीयार्थ और अन्वय।

स्वास-समीर-अप स्वच्छऽऽदर्श प्रतच्छ लखात, राम-प्रसाद बिनु अविगति न जानि जात।

जिस प्रकार स्वास वायु में का जल निर्मल दर्पण में प्रत्यक्ष देख पड़ता है अर्थात् सीसे पर नाक से फूकने से उस में छोटे २ बूँद देख पड़ते हैं, वैसे ही राम के दयारूपी सीसे के बिना आत्मा (अविगति) अगम्य है नहीं जाना जाता इस कारण राम सेवा सर्वोपरि आवश्यक है॥ ९७॥

तुलसी तुल रहि जात है जुग-तन अचल उपाधि।
यह गति तेहि लखि परत जेहि भई सुमति सुटि साधि॥ ९८॥

अन्वय। तुलसी जुग-तन अचल उपाधि तिल रहि जात है तुलसी जेहि सुटि साधि सुमति भई तेहि यह गति लखि परत है॥

तुलसी-दास कहते हैं कि सूक्ष्म और स्थूल दोनों शरीरों में अटल (उपाधि) दोष तिल थोड़ा सा अवश्य ही रह जाता है। तुलसी-दास कहते हैं कि जिस को सुन्दर (साधि साध्वी) साधुओं की सी सुबुद्धि हुई उसे यह अवस्था अर्थात् उपाधि का रहना देख पड़ता है। मन लगा कर साधुओं की सेवा करने से उन के दिये ज्ञान के द्वारा उस उपाधि का सूक्ष्म भेद जान पड़ता है। उपाधि शब्द से यहाँ माया कृत दूसरे गुण का दूसरे में देख पड़ना है जैसे नीले रङ्ग के दर्पण में मुख देखने से मुख भी नीला देख पड़ता है वा स्वच्छ स्फटिक में लाल फूल का प्रतिबिम्ब पड़ने से स्फटिक लाल देख पड़ता है तो मुख की नीलिमा और स्फटिक की लाली का होना उपाधि कृत है क्योंकि यह उन का स्वाभाविक धर्म नहीं है॥

स्थूल और सूक्ष्म शरीर शब्द द्वितीय सर्ग के ६४वें और पञ्चम सर्ग के २२वें दोहों में आ चुके है। इस सर्ग के २२वें दोहे में इस का थोड़ा सा बर्णन कर चुके है। यदि सूक्ष्म शरीर न मानिये तो संसारी स्थूल देह के किये कर्म का भोग किस प्रकार हो सकता है इस हेतु एक स्थूल शरीर कल्पना करना अत्यावश्यक है।

*प्राण वायु, मन, बुद्धि १० इन्द्रिय और अपञ्चीकृत ५ महा भूत से बना सूक्ष्म शरीर होता है। कलकत्ते की छपी पुस्तक में तस

वेदान्तमत से इतने पदार्थों से सूक्ष्म शरीर बनता है।

* पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्॥

पाठ है इस कारण मैं समझता हूँ कि यह तिल का अपभ्रंश है जिस का अर्थ हिन्दी में थोड़ा है। तुल पाठ भ्रम जान पड़ता है॥९८॥

करता कारन काल के जोग करम मत जान।
पुनः काल करता दुरत कारन रहत प्रमान॥ ९९॥

इति श्रीगोस्वामितुलसीदासविरचितायां सप्तसतिकायां कर्म-सिद्धान्तयोगो नाम पञ्चमः सर्गः समाप्तः॥

करता काल के जोग करम (करत यह) मत जान पुनः काल दुरत (तब) कारन करता दुरत कारन प्रमान रहत।

कर्ता समय के योग से अर्थात् समय के अनुसार शुभ अशुभ कामों को करता है यह सिद्धान्त जानना। और फिर जब समय बदल जाता है तब उसी के कारण करता भी बदल जाता है (परन्तु) कारण जैसे का तैसा ही प्रमाणयुक्त रहता है।

इस का अभिप्राय यह है कि कुण्डल आदि का बनानेवाला सोनार वा घट आदि का बनानेवाला कुम्हार जिस प्रकार समय और अपने साथ के लोगों की रुचि के अनुसार आभूषण और बरतन को बनाया करता है उसी प्रकार कुम्भकाररूप जीव भले समय और सत्सङ्ग के होने से भला और बुरे समय और कुसङ्ग से बुरा काम करता है। समय का उदाहरण जैसे सत्य युग में सब जीव धर्म ही करते थे और कलि युग में अधिकांश लोग पाप ही करते हैं इस मत को ठीक समझना चाहिये॥

फिर समय बीतता है अर्थात् कलियुग के अनन्तर सत्ययुग आता है तब फिर (कारण) समय के कारण लोग धर्म करते हैं इस प्रकार (करता दुरत) कर्म के करनेवाले भी समय और सङ्ग के अनुसार (दुरत) बदलते रहते हैं अर्थात् बुरे भले और भले भी बुरे बन जाते हैं परन्तु मट्टी सोना आदि कारण एक ही रहता है और इन्ही के समान मायारूप कारण भी एक सा रहता है। अब बुरों को अपने कर्म से छूटने के लिये सत्सङ्ग करना अवश्य चाहिये उसी प्रकार भलों को कुसङ्ग से बचना आवश्यक है क्योंकि काल समय और सङ्ग के अनुसार कर्म और कर्ता दोनो में भेद होता है। इस कारण सब वस्तुओं के कर्ता धर्त्ता संहर्ता परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान और आराधना करना चाहिये जिस से सर्वत्र सुख मिले ॥ ९९ ॥

॥०॥ इति विहारिकृत संक्षिप्तटीकायां पञ्चमः सर्गः ॥०॥

अथ षष्ठ सर्ग।

जल थल तन गत है सदा तैं तुलसी तिहुँ काल।
जनम मरन समुझे बिना भासत समन विसाल ॥ १ ॥

तुलसी-दास (अपने मन वा किसी भक्त से) कहते हैं कि (तैं) तू जल पानी और थल पृथ्वी में है, और तेरा तन शरीर त्रिकाल भी इन्ही में (गत) लीन हो जाता है केवल जब तक तू जन्म और मरण को नहीं समझता तभी तक (समन) जमराज तुझे बहुत बड़े जान पड़ते हैं। अर्थात् जब तक भूत वर्तमान और भविष्य तीनों काल में भूमि और जल वर्तमान हैं तब तक तेरा शरीर भी इन में है और तेरा तो किसी काल में नाश नहीं है॥

दूसरा अर्थ। हे मन तू सर्वव्यापी परमेश्वर का रूप है भूत वर्तमान भविष्यत् तीनों कालों में तू जल भूमि शरीर सब स्थान में वर्तमान है। बिना समझे वा ज्ञान पाये तुझे मरना जीना (सम न बिसाल भासत) सम एक प्रकार का न जान पड़ कर मरना बड़ा नाशकारी जान पड़ता है और दुखदाई समझा जाता है और जीना भला समझ पड़ता है। जब तुझे ज्ञान हो जायगा तो सब दुख दूर हो जायगा ॥ १ ॥

तैं तुलसी करता सदा कारन सब्द न आन।
कारज सञ्ज्ञा सुख-दुख-द बिनु गुरु तोहि किमि जान॥२॥

तुलसी कहते हैं कि तू ही सर्वदा कर्ता है और जो तू काम करता

है वही शब्द रूप तेरे बन्धन का कारण हो जाता है और दूसरा कोई नहीं। तुझ से जो कार्य हुआ और उस की जो संज्ञा अर्थात् नाम पड़ा वही सुख दुख का देनेहारा हुआ सो बिना गुरु के उपदेश के उसे कोई किस प्रकार जान सकता है अर्थात् नहीं जान सकता है। वेदान्त के मत से जगत् केवल भ्रम मात्र है सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर का अंश जीव मारे अहङ्कार के अपना किया कार्य समझ कर इस में फस कर दुख भोगता है ॥ २ ॥

कारज रत करता समुझि सुख दुख भोगत सोइ ।
तुलसी स्री-गुरु-देव बिनु दुख-प्रद दूरि न होइ ॥ ३ ॥

सो कर्ता स्वरूप तू अपने को कार्य रत (जगत के काम में लीन) जान कर दुख और सुख का भोगनेवाला होता है और यह (दुख-प्रद) दुखदेनेहारा तेरा कार्य वा विषयबासना में लवलीन रहना बिना श्रीगुरु देव के उपदेश दूर नहीं हो सकता।

जब सद्गुरु के उपदेश से तुझे निर्मल ज्ञान हो और तू अपने को पहचान तो शुभ अशुभ दोनों प्रकार के कामों को छोड़ कर दुःख से मुक्त हो जायगा ॥ ३ ॥

कारन सब्द स्वरूप है सञ्ज्ञा गुन भव जान ।
करता सुर-गुरु ते सुखद तुलसी अपर न आन ॥ ४ ॥

(कारन स्वरूप शब्द भौ) शब्द ही कारण स्वरूप है (गुणभव संज्ञा जान) और गुण से संज्ञा अर्थात् नाम की उत्पत्ति हुई ऐसा जानना चाहिये यदि केवल मनुष्य कहो तो किसी व्यक्ति विशेष का बोध न

होगा परन्तु यदि कुछ विशेषण लगा कर और उस के गुणों को बता कर कहो तो व्यक्ति विशेष जाना जायगा और इस संज्ञा का कर्ता (सुर-गुरु बृहस्पति अर्थात् जीव) जीव आप है और वही जीव सुख देनेहारा है। तुलसी कहते हैं कि और कोई इस का सुख देनेहारा नहीं है। अभिप्राय यह कि शब्द रूप ब्रह्म तो इस संसार का कारण है परन्तु वह संज्ञा और गुनहीन है। नाम और संज्ञा सत्व रज और तम इन तीनों गुणों के योग से ऊई हैं और इन्ही के कारण ब्रह्म का अंश जीव अपने को कर्ता मान कर सुख दुःख का भागी होता है॥४॥

गन्ध विभावरि नीर रस सलिल अनल गत ग्यान।
वायु बेग कँहँ बिनु लखे बुध-जन कहँहिँ प्रमान॥ ५॥

(विभावरि गन्ध) पृथ्वी को गन्धवती कहते हैं परन्तु गन्ध जिस का ज्ञान नाक से होता है उस के रूप को किसी ने नहीँ देखा है और जल रसवान है और उस में शीतलता गण है और शीतलता के रूप का भी प्रत्यक्ष नहीँ होता उसी प्रकार अग्नि की उष्णता वायु में का वेग आदि भी आखोँ से किसी को नहीँ देख पड़ता परन्तु पण्डित लोग उन वस्तुओँ का लक्षण कह के उन को प्रमाणित करते हैं। पृथ्वी गुण गन्ध नाक से जल की शीतलता अग्नि उष्णता और वायु का वेग भी त्वक इन्द्रिय से जाने जाते हैं। इन सब गुणोँ का ग्रहण करनेहारा परमात्मा का अंश जीव इन सवोँ में फसा है॥ ५॥

अनुस्वार अक्षर रहित जानत हैं सब कोइ।
कह तुलसी जहँ.लगि बरन तासु रहित नहिँ होइ॥ ६॥

यह बात सब लोग जानते हैं कि अनुस्वार अक्षर रहित है परन्तु तुलसी कहते है कि जितने बरण हैं सब अनुस्वारमय हैं अर्थात् पहले कलम से अनुस्वार वा बिन्दु ही निकला है फिर अक्षर होते हैं इस प्रकार सब अक्षरों का वह कारण ठहरता है उसी प्रकार परमात्मा सब गुण और अवस्थाओं से रहित होकर भी सर्वमय है कोई वस्तु उस से रहित नहीं है सब में उस की सत्ता है ॥ ६ ॥

आदि हु अन्त हुँ है सोइ तुलसी और न आन ।
बिनु देखे समुझे बिना किमि कोउ करै प्रमान ॥ ७ ॥

आदि में और अन्त में दोनों ठौर अनुस्वार है और बर्ण के रूप में दूसरा कुछ नहीं है परन्तु इस बात को बिना देखे और समझे कौन प्रमाणित कर सकता है पहले जब कलम रक्खो और पीछे जब उठाओ तो अनुस्वार बनता है पर इस बात पर कम लोग ध्यान देते हैं । उसी प्रकार आदि अन्त में आत्मा वर्तमान है परन्तु माया-बश हो कर अपनेरूप को भूल कर विषय में लीन होने के कारण जीव बन गया । बिना ज्ञान के कोई उसे जान नहीं सकता ॥ ७ ॥

रहित बिन्दु सब बरन तें रेफ रहित सब जान ।
तुलसी स्वर सञ्जोग तें होत बरन पद मान ॥ ८ ॥

बिन्दु और रेफ सब बर्णों से रहित हैं अर्थात् ये अकेले स्वतः अक्षर नहीं कहाते परन्तु जब स्वर में मिलते हैं तो बर्ण की पदवी पाते हैं बिना किसी बर्ण के एक बिन्दु देने से शून्य ही रहता है

तुलसी-दास कहते हैं कि (सुत भव जोग बिनु) पुत्ररूपी संसार वा कर्म के बिना पिता को यह नाम नहीं मिलता। जब परमेश्वर अपनी मया को प्रेरण कर के संसार को बनवाता है तो वह पिता कहाता है अर्थात् जब उसे पिता कहाने और बहुत होने की इच्छा होती है तब वह जीव बनता है॥ ११॥

सञ्ज्ञा कह तब गुन समुझ सुनब सब्द परमान।
देखब रूप बिसेख है तुलसी बेद बखान॥ १२॥

संज्ञा वा नाम का गुण कहना वा उच्चारण करना है शब्द का गुण सुनना और देखने का गुण रूप है इन तीन प्रकारों को अर्थात् सुनने कहने और देखने को वेदों ने बखाना है। अभिप्राय यह कि मनुष्य के सुनने बोलने और देखने से सब कामों की उत्पत्ति होती है यदि कोई जीभ कान और आँख मूद कर बैठे तो कुछ भी नहीं है।

संज्ञा अर्थात् पिता पुत्र ब्रह्म जीव माया ईश्वर ये सब कहतब मात्र हैं अथवा पहले संज्ञा नाम के कहने पर गुणों का स्मरण होता है यथा ब्रह्म कहने से सच्चिदानन्दमय परमेश्वर और जीव कहने से माया मोह में बद्ध संसारी प्राणी आदि जाने जाते हैं॥ १२

होत पिता तें पुत्र जिमि जानत को कहु नाहिं।
जौ लगि सुत परसो नहीं पितु पद लहइ न ताहि॥१३॥

पिता से पुत्र होता है इस को कौन नहीं जानता अर्थात् सब

जाने जानते हैं परन्तु जब तक (सुत परसो नहीं) लड़के का जन्म नहीं होता तब तक पिता यह पदवी कोई नहीं पाता। अर्थात् यद्यपि पिता पुत्र में कुछ भेद नहीं है तो भी पुत्र होने पर पिता संज्ञा पड़ती है उसी प्रकार यदि जीवों की सृष्टि न होती तो ईश्वर जीवों का कर्ता ब्रह्म किस प्रकार कहाता। पिता कहलाने की इच्छा सृष्टि बनाने का कारण हुई ॥ १३ ॥

***तिमि बरन हि ते बरन कर सञ्ज्ञा बरन सँजोग।**
तुलसी होई न बरन कर जौ लगि बरन बियोग॥१४॥

उसी प्रकार अक्षर के संयोग अर्थात् अनुस्वार आदि के मिलने से (बरन कर बरन होत) एक अक्षर दूसरे अक्षर का बनानेहारा होता है (जौ लगि बरन बियोग) परन्तु जब तक अक्षर अलग२ नहीं होते (तब लगि बरन कर सञ्ज्ञा न होत) तब तक उस अक्षर की दूसरी संज्ञा नहीं होती।

इन दोहों में अक्षर का दृष्टान्त दे कर ईश्वर और उस से उत्पन्न संसार वा कर्म और उस के अनुसार उत्पन्न होनेवाले जीव और पिता पुत्र का अभेद दिखलाया है। वेद में भी लिखा है कि (आत्मैव जायते पुत्रः) पुरुष आप ही पुत्ररूप से उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

---

* जहाँ "तिमि बरनन बरनन करै सञ्ज्ञा बरन सँजोग" पाठ हो वहाँ तिमि उसी प्रकार (बरनन बरनन करै) अक्षरों की उत्पत्ति को वर्णन करना चाहिये और बरणों के संयोग से (सञ्ज्ञा) नाम होता है अर्थात् जब कई अक्षर मिलते हैं तब शब्द बनता है यथा रा और म के मिलने से राम बना।

तुलसी देखहु सकल कँहँ एहि विधि सुत आधीन।
पितु-पद परखि सु-द्रिढ़ भयेउ कोउ कोउ परम प्रबीन
॥ १५ ॥

तुलसी कहते हैं कि देखो इस प्रकार सब लोग सुत अपने पुत्र वा कर्म (कर्म अपने से उत्पन्न होता है इस से उसे सुत कहते हैं) के अधीन वा वश में रहते हैं (कोउ २ परम प्रबीन) कोई २ जो बड़े ज्ञानी हैं (पितु-पद परखि सु-द्रिढ़ भयेउ) पिता परमेश्वर के पद को ज्ञान दृष्टि से देख कर दृढ़ अर्थात् आवागवन से रहित हुये हैं। कर्म की फाँस और माया के ग्रास से कौन बच सकता है ॥ १५ ॥

जँहँ देखो सुत-पद सकल भयेउ पिता-पद लोप।
तुलसी सो जानै सोइ जासु अमोलिक चोप ॥ १६ ॥

जहाँ देखो वहाँ सुत पद जीव का कर्म वा पुत्र ईश्वर से उत्पन्न जगत् (सकल) सब कुछ है अर्थात् इन्ही के अधीन सब लोग हैं परन्तु पिता के स्थान में रहनेहारे परमेश्वर को वही जानता है जिस को अनमोल (चोप) अभिलाष वा बुद्धि है ॥ १६ ॥

ख्यात सुअन तिहु लोक मँहँ महा-प्रबल अति सोइ।
जौं कोउ तेहि पाछे करै सो पुनि आगे होइ ॥ १७ ॥

सुअन मनुष्य का कर्मरूपी पुत्र तीनों लोक में प्रसिद्ध है और बड़ा बलवान है यदि कोई उसे पीछे छोड़ना चाहे अर्थात् कर्म को संसार में छोड़ना चाहे तो वह आगे दौड़ता है अर्थात् उसी के अनुसार मनुष्य को संसार में जन्म ले कर फल भोगना पड़ता है ॥ १७ ॥

द्वितीयार्थ। ईश्वर कृत जगत् की रचना अति प्रसिद्ध और बलवान है यदि कोई उसे जीतना चाहे तो माया के द्वारा संसार ही उसे जीत कर आगे हो जाता है ॥ १७ ॥

तुलसी होत नहीँ कछुक सुअन रहित व्यवहारं।
ताही तेँ अगरज भयेउ सब बिधि तेहि प्रचार॥ १८॥

तुलसी कहते हैँ कि (सुअन रहित) बिना कर्मरूपी पुत्र के कुछ भी व्यवहार नहीँ होता इसी से सब रीत कर्म का प्रचार आगे हुआ अर्थात् कर्म ही मुख्य समझा गया।

दूसरा अर्थ। बिना माया की प्रेरणा जीव किसी संसारी काम व्यवहार को नहीँ करता इसी लिये सब प्रकार से (ईश्वर ने) सब के पहले माया कृत कर्म को उत्पन्न किया कि उस से मोहित जीव संसार मेँ लगेँ॥

कर्म ही मेँ फस कर जन्ममृत्यु के बस हो कर जीव संसार मेँ बँध जाता है॥ १८॥

सुअन देखि भूले सकल भए अति परम अधीन।
तुलसी जेहि समुझाइये सो मन करत मलीन॥ १९॥

माया के कारण संसाररूपी पुत्र को देख कर सब लोग भूले है और उसी के वश मेँ सब प्रकार से हो रहे हैँ। तुलसी कहते हैँ कि जिस को समझाओ वह उलटे अपना मन मोटा कर लेता है अर्थात् संसार मेँ ऐसा लिप्त हुआ है कि जो उसे उपदेश दे उस को अपना शत्रु समझता है।

द्वितीयार्थ । अपने पुत्र वा कर्म आदि व्यवहार में सब भूले हैं जिस को समझाइये कि जगत् के व्यवहार पुत्र स्त्री धनादि व्यर्थ हैं वही मुझ से (यह समझ कि मुझे मेरे परिवार से अलग करते हैं) अपना मन मोटा कर लेता है ॥ १९ ॥

मानत सो साचो हिए सुनत सुनावत बादि ।
तुलसी ते समझत नहीं जो पद अमल अनादि ॥२०॥

मन से उसी मायारूपी पुत्र वा संसार के धन धाम को सचा समझते और झगड़ा कर के उसे सुनते सुनाते हैं और (ते) वे संसार में फसे मनुष्य निर्मल और अनादि (पद) परमेश्वर को नहीं समझते हैं ॥ २० ॥

जाहि कहत हैं सकल सो जेहि कहतब सो ऐन ।
तुलसी ताहि समुझि हिये अज हु करहु चित चैन॥२१॥

जिस को तू सब कुछ कहता है सो (कहतब) बाणी है अर्थात् शब्दरूप भगवान है और वही (ऐन) घर है उस को मन ऽ समझ कर अब भी प्रसन्न हो ।

द्वितीयार्थ । सकल जाहि कहत हैं सो कहतब (सकल) ऐन सो समुझि तुलसी अज ऊ ताहि हिये करऊ जेहि चित चैन (होय)। जिस *परब्रह्मरूप राम को सनकादि सब मुनिगण कहते हैं वही

---

* सः श्रीरामः सवितारो सर्वेषामीश्वरः यमेवेषः वृणुते सपुमानस्तु यमवैदस्मद्भूर्भुवः स्वः त्रिगुणमयो बभूव इतीयं नरहरिः स्तौतीयं गन्धमादनः स्तौतीयं यज्ञतनुः स्तौतीयं महाविष्णुः स्तौतीयं महाशम्भुः स्तौतीयं द्वैतं मण्डलं नयति यत्पुरुषं दक्षिणास्तं मण्डलोवैमण्डलोऽध्यः मण्डलस्थमिति ॥ (सामवेदे तैतरीयशाखायाम् ।)

परमेश्वर सब का (ऐन) आश्रय है उन्हे समझ कर तुलसी-दास कहते हैं कि आज भी उन्हें अपने मन में धारण करो जिस से तुम्हारे मन में शान्ति और आनन्द होवे। द्वितीयार्थ उत्तम है॥२१॥

तुलसी जो है सो नहीं कहत आन सब कोइ।
एहि बिधि परम बिडम्बना कहहु न का को होइ॥२२॥

तुलसी कहते हैं कि जो जिस प्रकार के श्रीरामचन्द्र हैं ठीक ठीक सो नहीं कहते परन्तु और का तौर ही कहते हैं अर्थात् आत्मीरूप अपने राम को नहीं समझते हैं परन्तु कोई उन्हे मनुष्य समझते कोई केवल एक राजा समझ लेते हैं। इस प्रकार की बिडम्बना कहो किस को नहीं होती अर्थात् सब को होती है॥२२॥

गुरु करिबो सिद्धान्त यह होइ यथारथ बोध।
अनुचित उचित लखाइ उर तुलसी मिटइ बिरोध॥२३॥

जब मनुष्य गुरु करे तो उस के उपदेश से इस सिद्धान्त का कि संसार असार और राम सच्चे बोध हो और उचित अनुचित जाना जाय और हृदय से बिरोध दूर हो जाय ऐसा तुलसी-दास का मत है बिना गुरु के सच्चे मार्ग के दिखलानेवाले नहीं मिल सकते इस कारण गुरु करना मूल सिद्धान्त हुआ॥ २३॥

सत-सङ्गति को फल यही सन्सय रहइ न लेस।
है अस्थिर सुचि सरल चित पावै पुनि न कलेस॥२४॥

सत्सङ्गति का यही फल है कि सन्देह का थोड़ा भी अंश नहीं

रहना और सब सन्देहों के दूर हो जाने से मन शान्त पवित्र और सीधा हो जाता है जिस से फिर मनुष्य दुख नहीं पाता। भ्रम के दूर होने का प्रथम उपाय गुरु उपदेश और दूसरा उपाय सत्सङ्ग है। सत्सङ्ग में रहने से सब प्रकार का भ्रम दूर हो जा सकता है और मन शान्त हो कर परमेश्वर को पहचान सकता है ॥ २४ ॥

जो मरिबो पद सभनि को जहँ लगि साधु असाधु।
कवन हेतु उपदेस गुरु सत-सङ्गति भव बाधु ॥ २५ ॥

नास्तिक कहते हैं कि मरना अवश्य ही है तो खूब खा पी लो। गुरु और साधुओं के सङ्ग से क्या लाभ होगा। इन मतों का वर्णन कर के खण्डन करेंगे। जो मरना साधु भले और असाधु बुरे सब के लिये अवश्य है तो किस लिये लोग गुरु से उपदेश लेते हैं और संसार के सुख विलास को रोकनेवाले सत्सङ्ग को भी किस लिये करते हैं अर्थात् यदि इन से कुछ उपकार नहीं है तो क्यों दुःख उठाना ॥२५॥

जो भावी कछु है नहीं झूठो गुरु सत-सङ्ग।
ऐसि कुमति तेँ छूट गुरु सन्तन को पर-सङ्ग ॥ २६ ॥

जो किसी बात की भावी नहीं है तो गुरु और साधुओं की सङ्गति से क्या लाभ है ऐसी ही कुबद्धि (और २५वें दोहे में कही कुबुद्धि) से लोगों से सद्गुरु और साधुओं की सङ्गति छूट जाती है क्योंकि उन को केवल भाग्य का भरोसा रहता है परन्तु वे यह नहीं समझते कि भाग्य क्या वस्तु है। यदि विचार करो तो यह बात

प्रमाणित होती है कि जो कर्म्म पहले किये गये हैं उन्हीं के फल को भाग्य कहते हैं इस प्रकार कर्म्म ही प्रधान ठहरा तब तो गुरु और साधुसङ्ग रूप कर्म अवश्य करने योग्य हैं। जब लोगों को पूर्व्वोक्त बुद्धि आती है तब वे भला काम करते हैं और जब नहीं आती तो उत्तम कर्म छोड़ केवल इन्द्रिय सुख के अधीन हो जाते हैं ॥ २६ ॥

जौ लौं लखि नाहीं पड़त तुलसी पर-पद आप।
तौ लगि मोह-बिबस सकल कहत पुत्र कँहँ बाप ॥२७॥

जब तक मनुष्य को (पर-पद) श्रेष्ठ परब्रह्म और आप इन दोनों का भेद (द्वैतमत), अथवा पर-पद परब्रह्मरूप आप (अद्वैतमत) नहीं जान पड़ता, तभी तक मोह माया के अधीन हो कर सब लोग (पुत्र कँहँ) अपने किये हुये कर्म वा बेटे को (बाप) पितास्वरूप अर्थात् सब सुख का कारण समझते हैं *।

अभिप्राय यह कि जब जीव और ब्रह्म का भेद, अथवा ब्रह्म और जीव का अभेद भली भाँत नहीं जान पड़ता तभी तक जीव संसार मे बद्ध रहते हैं।

द्वितीयार्थ। जब तक जीवों को परब्रह्म परमेश्वर नहीं समझ पड़ता तभी तक वह माया के अधीन हो कर अपने लड़के वाले को बाबा मानता है। ज्ञानी और भक्तों के लिये पुत्रादि संसार में फसानेवाले होने के कारण शत्रुवत् जान पड़ते हैं ॥ २७ ॥

* (इस दोहे को चतुर्थ सर्ग के ७६ और ७७ के दोहों से मिला कर विचारना चाहिये।)

जहँ लगि सञ्ज्ञा *बरन-भौ जासु कहें तें होइ ।
तै तुलसी सो है स-बल आन कहाँ कहु कोइ ॥ २८ ॥

जहाँ तक संज्ञा (अर्थात् नाम है) सब (वरन-भव) अक्षर से उत्पन्न होती हैं सो वर्ण और संज्ञा भी इसी के मनुष्य ही के कहने अर्थात् उच्चारण करने से होती है। तुलसी कहते हैं कि वही यह पुरुष (स-बल) बलवान है और दूसरा कहाँ से हो सकता है अर्थात् दूसरा नहीं है।

अभिप्राय यह कि सब कुछ इसी पुरुष के कहने करने से होता है यह अपने हाथ से जाल बिनता है और आप ही उस में फस जाता है (अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतं कर्म शुभाशुभम्) जो कुछ भला बुरा काम किया जाता उसे अवश्य भोगना पड़ता है ॥ २८ ॥

अपने नैननि देखि जे चलहिँ सु-मति बर लोग ।
तिनहिँ न बिपति बिखाद रुज तुलसी सु-मति-सु-जोग ॥ २९ ॥

तुलसी-दास कहते हैं कि (जे सु-मति बर लोग) जो २ सुबुद्धि श्रेष्ठ लोग अपनी आँख से देख कर अर्थात् आत्मज्ञान और बुद्धि से बिचार कर चलते वा व्यवहार करते हैं उन को न बिपत न दुख और न पीड़ा होती है क्योंकि उन को (सु-मति-सु-जोग) अपनी उत्तम बुद्धि का बड़ा सहारा रहता है ॥ २९ ॥

म्रिगा गगन-चर ग्यान बिनु करत नहीं पहिचान ।
पर बस सठ हठि तजत सुख तुलसी फिरत भुलान ॥ ३० ॥

मृगा पशु और आकाश में उड़नेवाले पक्षी ज्ञान हीन हो कर न जान सकते हैं और न यह बिचार करते कि आकाश में जल कहाँ से हो सकता है परन्तु अज्ञान और लोभ के वश में हो कर सुख छोड़ कर मूर्ख हठपूर्वक इधर से उधर भटकते फिरते हैं ॥

ग्रीष्म ऋतु में जैसे तृष्णा के मारे दुपहरिये की धूप मृगे को जल-सी जान पड़ती है और वह उस के पीछे दौड़ता है ऐसी ही कुछ दशा संसारी जीव की है। भ्रमरूप संसार को सत्य समझ इस में फस कर दुख उठाता है ॥ ३० ॥

कहा कहौं तेहि तोहि को जेहि उपदेसहु तात ।
तुलसी कहत सु-दुख सहत समुझ रहित हित बात ॥ ३१ ॥

(तात तेहि कहा कहौं) हे प्यारे उस को क्या हम कहैं (जेहि तोहि को उपदेसऊ) जिस ने तुम को (संसार में फसने का) उपदेश दिया। (हित बात समुझ रहित) हित अर्थात् हितकारी साधुओं की बात की समझ से रहित हो के बड़े दुख को सहते हो। अथवा (हित समुझ रहित) कल्याण की बुद्धि से हीन अर्थात् मृगतृष्णा में पड़े रहने की बात को तुम से कह कर जिस ने तुम्हे सिखलाया उस को मै क्या कहूँ। जिस गुरू के उपदेश से विषय तृष्णा में डूबा है उस उपदेश देने और तेरे से उपदेश लेनेहारे दोनों को मैं क्या कहूँ। तुम दोनों धन्य हो ॥ ३१ ॥

बिनु काटे तरु-बर जथा मिटै कौन बिधि छाहिँ ।
त्यौँ तुलसी उपदेस बिनु निह सन्सय कोउ नाहिँ॥३२॥

जिस प्रकार बिना वृक्ष के काटे उस की छाया किसी प्रकार नहीं मिट सकती उसी रीत सद्गुरु के उपदेश के बिना कोई निःसंशय अर्थात् सन्देह रहित नहीं हो सकता। संशयरूपी राक्षसी सब को खवश किये है बिना भले गुरु के उपदेश के वह क्यों कर दूर हो सकती है इस कारण भले के उपदेश की आवश्यकता सब को है ॥३२॥

अपनो करतब आपु लखि सुनि गुनि आपु बिचार।
तौ तोहि को दुख-दा कहा सुख-दा सु-मति अधार॥ ३३॥

अपने किये को तू आप बिचारे और उसे सुन विचार कर सोचे तो तुझे दुख कहाँ हो सकता है अच्छी बुद्धि ही सुख की खान है। जो कोई सुबुद्धि से सोच विचार कर काम करता है उस को कोई दुख नहीं हो सकता यहाँ वहाँ दोनों ठौर सुख ही सुख मिलता है। केवल सुकर्म कर के ईश्वरार्पण कर देना चाहिये फिर तो राम जी आप ही तेरी सहायता करेंगे ॥ ३३ ॥

ब्राह्मन बर बिद्या-बिनय-सुरुति-बिबेक-निधान।
पथ-रति अनय-अतीत मति सहित दया स्रुति-मान ॥ ३४ ॥

३३वें दोहे में कर्म की महिमा दिखा कर अब प्रत्येक वर्ण का कर्म कहते हैं॥

ब्राह्मण (बर) वर्णों में श्रेष्ठ है उस को विद्वान नम्र और वेद के ज्ञान से पूर्ण होना चाहिये। सत्पथ में प्रीति रक्खे और अनीति से अपनी बद्धि को दूर किये रहे और दया युक्त हो कर वेद को माने।

अथवा जो ब्राह्मण विद्या, नम्रता, विवेक और सत्पथ में प्रीति रक्खे अनीति से बुद्धि को दूर रक्खे और वेद प्रमाण सहित दया का करनेवाला हो वह श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥

बिनय छत्र सिर जासु के प्रति पद पर-उपकार।
तुलसी सो छत्री सही रहित सकल-व्यभिचार ॥३५॥

क्षत्री का कर्म कहते हैं। नम्र हो और छत्र अर्थात् प्रजाओं को दुख से बचानेहारा राज छत्र जिस के शिर पर विराजे और सदा दूसरों की भलाई करे और सब प्रकार के व्यभिचार, ब्राह्मण को दी भूमि छीनना, परस्त्रीगमन आदि दोष से रहित हो, वही ठीकर क्षत्री है ॥ ३५ ॥

बैश्य बिनय मगु पगु धरै हरै कटुक बर बैन।
स-दय सदा सुचि रुचि सरल ताहि अचल सुख ऐन ॥
३६ ॥

वैश्य नम्र रहे अपने मग गौ की सेवा व्यापार आदि में चले और कटुवाक्य छोड़ मधुर भाषण करे। सदा दयावान् पवित्रता में प्रीति रक्खे और सीधा व्यवहार करनेहारा हो उसे अचल सुख की खान जानना चाहिये जहाँ "सुचि सरलता हिये सदा सुख ऐन" पाठ हो वहाँ उस के हृदय में सब प्रकार की पवित्रता सीधापन हो और सदा आनन्द में रहे ऐसा अर्थ करना चाहिये ॥ ३६ ॥

सूद्र छुद्र पथ परिहरै हिदय बिप्र-पद मान।
तुलसी मम समता सु-मति सकल जीव सम जान॥३७॥

शूद्र नीचे मार्ग चोरी चमारी बुरा काम वा थोड़े धन से मत-वाला होना आदि पाप युक्त मार्ग को छोड़ देवे हृदय से ब्राह्मण के चरण में अत्यन्त प्रेम करे । अपने मनसे सब जीओं को समान समझ कर सब में सम बुद्धि रक्खे और आप भी बुद्धिमान हो ॥ ३७ ॥

हेतु बरण बर सुचि रहनि रस निरास सुख-सार ।
चाह न काम-सुरा न रम तुलसी सुद्रिढ़ बिचार ॥३८॥

(बर) श्रेष्ठ बरण के जो २ कारण कहे हैं उन में और पवित्रता में बसे अर्थात् तदनुसार व्यवहार करे और रस अर्थात् १ काम २ क्रोध ३ लोभ ४ मद ५ मत्सर ६ मोह इन छओ शत्रुओं को निरास करे अर्थात् त्याग देवे और काम कामनारूपी मदिरा में रमण न कर चाह को छोड़े और अपने बिचार को दृढ़ रक्खे तो (सुख-सार) सुखी होने की मुख्य बस्तु (सार) को पा चुका, ऐसा कह सकते हैं ॥ ३८ ॥

जथा-लाभ सन्तोख-रत ग्रिह मग बन सम रीति ।
ते तुलसी सुख-मय सदा जिन तन बिभव बिनीति ॥३९॥

जो कुछ मिले उसी में सन्तोष रक्खे और घर में रह कर भी बन बासी साधु समान रीत-नीति से चले अथवा गृह में गृहस्थ के नियम और बन में बानप्रस्थ आश्रम की रीत से व्यवहार करे, वे ही सदा सुखमय सुखरूप हैं और ऐश्वर्य और नम्रता उन्ही की शरीर में बिराजती हैं ॥ ३९ ॥

रहै जहाँ बिचरे तहाँ कमी कहूँ कछु नाहिँ।
तुलसी तहँ आनन्द सँग जात जथा सँग छाँह ॥४०॥

ऊपर के दोहे में कहे लक्षण का मनुष्य जहाँ रहे वहाँ ही सुख से बिहार करे किसी स्थान में उस के लिये किसी बात की कमती नहीँ। तुलसी कहते हैं यद्यपि उसे सुख की अधिक इच्छा नहीँ तो भी उस के संग २ आनन्द परछाही के समान घूमा करता है। सदा आनन्दस्वरूप होने के कारण सब स्थान में वह सुखी रहता है ॥४०॥

करत तरक जेहि की सदा सो मन दुख दातार।
तुलसी जैाँ समुझै नहीँ तै। तेहि तजइ बिचार ॥४१॥

केवल तर्क वा अनुमान से दुख मान लिया है इसी से मन में दुख होता है मन जिस २ विषय पर धावता है यदि उसे उन्ही पर जाने दीजिये तो दुख की सीमा न रहेगी सदा दुख बढ़ता ही जायगा। यदि दुख को विचार पूर्व्वक दुख न समझे तो दुख अवश्य इसे छोड़ देवे ॥

दूसरा अर्थ। (जेहि की) जिस वस्तु की (तरक) कामना सदा करता है वही मन को दुख देती है तो जो इस के मन में किसी बात की कामना ही नहीँ तो क्योँ कर दुख हो सकता है। जो मन में समझ कर बिचार करै तो कामना को त्याग कर दे फिर कुछ दुख नहीँ ॥ ४१ ॥

कहत सुनत समुझत लखत तेहि तेँ बिपति न जाइ।
तुलसी सब तेँ बिलग है जैा लगि नहिँ ठहराइ ॥४२॥

जब तक विषय सुख की बात कहता सुनता समझता और देखता है और जब तक उस से अलग हो कर नहीँ ठहराता है तब तक इस का दुख दूर नहीँ हो सकता ॥

दूसरा अर्थ। जब तक इन सब संसारी जालोँ से अलग हो कर परम तत्व को नहीँ ठहराता है (तब तक) कहने पुराणादि बाँचने सुनने समझने और देखने से इस का दुख नहीँ दूर हो सकता।

अभिप्राय यह कि सदा संसार ही की चिन्ता आदि मेँ लीन रहने आदि कारणोँ से जीवात्मा इन्ही मेँ फसा रहता है ॥ ४२ ॥

सुनत कोटि कोटिन कहत कौड़ी हाथ न एक ।
देखत सकल पुरान स्रुति ता पर रहित बिबेक ॥ ४३ ॥

कड़ोरो ग्रन्थ सुनता और कहता है परन्तु एक कौड़ी भर ज्ञान हाथ नहीँ लगता। सब पुराण और वेद को देखता फिरता है तो भी बिबेक तत्व ज्ञान-हीन ही बना है।

बिना हरिभक्ति वा तत्वज्ञान के सब सुनना कहना लाभदायक नहीँ होता जैसे बिना व्यापारादि किये कहने सुनने से धनवान नहीँ हो सकता वही दशा जीव की है ॥ ४३ ॥

समुझत है सन्तोख धन या तेँ अधिक न आन ।
गहत नहीँ ता ते कहत तुलसी अबुध मलान ॥ ४४ ॥

समझता है कि सन्तोष सर्वोत्तम धन है इस से अधिक और कोई धन संसार मेँ सुखदाई नहीँ परन्तु उसे (सन्तोष को) ग्रहन

नहीँ करता इसी से तुलसी कहते हैँ कि मनुष्य अज्ञानी और दुखी बना रहता है। कैसा भी धनी क्योँ न हो जब तक उसे सन्तोष न होवे वह अधिक धन लाभ के लिये दुखी ही बना रहता है, वही दशा जीवात्मा की है॥ ४४॥

कहा होत देखे सुने सुनि समुझे सब रीति।
तुलसी जौ लगि होत नहिँ सुख-द राम-पद-प्रीति॥४५॥

सब रीतोँ को देखने सुनने और सुन कर समझने से क्या होता है। जब तक श्रीरामचन्द्र के सुखदाई पद में प्रेम न हो, सब पुराण शास्त्र आदि का देखना समझना विना भक्ति के व्यर्थ है॥ ४५॥

कोटिन साधन के किये अन्तर मल नहिँ जाइ।
तुलसी जौ लगि सकल गुन सहित न करम नसाइ॥४६॥

कड़ोरोँ उपाय करने से भी भीतर का मल नहीँ जाता है जब तक सब (तीनोँ) गुणोँ के सहित कर्म नष्ट न हो। कर्म की फाँस में पड़ कर मनुष्य जनमता मरता है और दुख सुख का भागी होता है, इसके नष्ट हो जाने से जड़ टूट जाती है। ज्ञान और भक्तिरूपी अग्नि से जब जीव सब कर्मोँ के फलोँ को जला देता है तो वह मुक्त होता है, नहीँ तो इसे भले बुरे कर्मोँ का फल भोगने के लिये जनमना ही पड़ता है॥ ४६॥

चाह बनी जौ लगि सकल तब लगि साधन सार।
ता महँ अमित कलेस कर तुलसी देखु बिचार॥४७॥

जब तक इस जीव को चाह स्त्री पुत्रादि की कामना बनी है तब तक सकल साधन पुराण पाठादि तीर्थ ब्रतादि इसे मुख्य जान पड़ते हैं और उसी चाह में अनेक बड़े२ दुख भरे हैं अर्थात् यज्ञ-क्रिया से स्वर्ग होता है परन्तु भोग इच्छा पूर्ण होने के पहले ही वहाँ से गिरना पड़ता है। तुलसी दास कहते हैं कि इस को खूब विचार कर देख लो ॥ ४७ ॥

चाह किये दुखिया सकल ब्रह्माऽऽदिक सब कोइ ।
निश्चलता तुलसी कठिन राम क्रिपा बस होइ ॥४८॥

इसी चाह के वश हो कर सब लोग दुखी हैं और किस की कहिये ब्रह्मादि देवता भी इस के अधीन होने से दुख पाते हैं। तुलसी कहते हैं निश्चलचित्त वा कामना-हीन-होना अत्यन्त कठिन है, रामचन्द्र की दया से होता है ॥ ४८ ॥

अपनो करम न आपु कँहँ भलो मन्द जेहि काल ।
तब जानब तुलसी भई अतिसय बुद्धि बिसाल ॥४९॥

जिस समय अपना काम अपने से भला बुरा न जाना जाय अर्थात् कामना-हीन होने के कारण अपने करतब की भलाई बुराई का फल अपने को न मिले तब जानना चाहिये कि अपनी बुद्धि बहुत बड़ी हुई क्योंकि अपने करतब की बुराई भलाई का भोक्ता यह न होगा तो इस का अवश्य कल्याण होगा ॥ ४९ ॥

तुलसी जैा लैाँ लखि परत देह प्रान को भेद ।
तैा लगि कैसे कै मिटइ करम जनित बहु खेद ॥५०॥

तुलसी-दास कहते हैं कि जब तक (देह प्रान को भेद) देह को भी यह प्राण ही का एक भेद अर्थात् प्राण ही का एक अङ्ग समझता है (वस्तुत: देह क्षेत्र है और आत्मा क्षेत्रज्ञ है देह जड़ है आत्मा चैतन्य है जब तक प्राणवायु देह में है तभी तक इसे सुख दु:ख का ज्ञान होता है प्राण के निकल जाने पर देह में कुछ भी ज्ञान नहीँ रहता इस कारण देह और प्राण दोनों भिन्न२ पदार्थ हैं, सो न समझ देह ही को प्राण का एक भेद समझता है) तब तक कर्म से उत्पन्न अनेक प्रकार का दुख किस प्रकार मिट सकता है? अर्थात् कभी नहीँ मिट सकता ॥ ५० ॥

जोइ प्रान सो देह है प्रान देह नहि दोइ।
तुलसी जो लखि पाइ है सो निरदय नहिँ होय॥ ५१॥

अन्वय। जोइ प्राण देह सो न है (हि) प्राण देह दोइ। तुलसी जो (यह) लखि पाइ हैं सो नहि निरदय होय।

जो प्राण हैं सो देह नहीँ है प्राण और देह निश्चय कर दो हैं इस भेद को जो कोई समझेगा तुलसी कहते हैं कि वह क्रूर नहीँ होगा।

प्राण और देह दोनों भिन्न२ पदार्थ हैं ये कभी भी एक नहीँ हैं यदि कोई एक देह से पाप करेगा तो उसे दूसरे देह पाने पर भी अवश्य भोगना होगा क्योंकि देह के साथ प्राण और कर्म कभी भी नष्ट नहीँ होते ऐसा जो समझेगा वह कभी क्रूर न होगा। क्योंकि तब उस को डर बना रहेगा कि यदि हम इस देह से किसी के साथ

क्रूरता करेंगे तो वह दूसरे देह में मुझसे भी क्रूरता कर बदला लेवेगा॥ दूसरी २ टीकाओं में जो देह और प्राण को एक होने का अर्थ किया गया है सो बहुत ही असङ्गत जान पड़ता है क्योंकि तुलसी-दास ऐसी शास्त्रविरुद्ध बात नहीं कहेंगे॥ ५१॥

तुलसी तै झूठो भयो करि झूठे सँग प्रीति।
है साचो है साँच जब गहै राम की रीति॥५२॥

तू (परमेश्वर का रूप हो कर) झूठों में अपनी प्रीति लगाने के कारण अर्थात् झूठे शरीर को भी प्राण सम सत्य जानने के कारण झूठा होगया है, सो जब (साँच है) सच्चा हो कर रामचन्द्र की रीत अर्थात् सब को समभाव से देखना ग्रहण करे तो तू भी सच्चा हो जाय। अथवा तुलसी अपने मन को समझा रहे हैं कि हे मन! तू अपने शरीर अपने परिवार के शरीर आदि अनेक झूठे पदार्थों के साथ प्रेम करके झूठा बन गया है। तू केवल अपने अंश राम से स्नेह कर तो सच्चा हो जावेगा॥ ५२॥

झूठी रचना साच है रचत नहीं अलसात।
बरजत हूँ झगरत बिहठि नेकु न बूझत बात॥ ५३॥

तू सच्चा हो कर झूठी रचना रचता फिरता है और इस काम में आलस्य नहीं करता। जो कोई तुझे मना करता है तो उस से उलटे तर्क वितर्क कर बाद बिवाद करता है और बात को कुछ भी नहीं समझता॥

अभिप्राय यह कि झूठे शरीर को सच्चा समझ चौरासी योनि में घूमा करता है, और इन शरीरों को कोई झूठा कहे तो उस से झगड़ने को तैयार हो जाता है ॥ ५३ ॥

करम खरी कर मोह थल अङ्क चराचर जाल।
भरत हरत भरि हरि गनत जगत ज्योतिसी काल ॥ ५४ ॥

जगत में समय जो है वही एक ज्योतिषी है वह कर्मरूपी खरी को अपने हाथ में लिये है और मोहरूपी भूमि पर चराचर जीव-रूपी अङ्क को (भरत) बढ़ाता है (हरत) घटाता है (हरि भरत) फिर घटाकर बढ़ाता है ॥

अर्थात् जीव लोग अपने कर्म के अधीन हो कर इस समय के द्वारा बार२ जनमते मरते रहते हैं। जिस प्रकार कोई ज्योतिषी किसी अङ्क वा हिसाब को खरी से लिखता है फिर मिटाता है फिर लिखता है और जब तक वह हिसाब खूब ठीक नहीं हो जाता तब तक लिखता मिटाता रहता है, वही दशा इस जीव की है यह समयरूपी ज्योतिषी के वश में तब तक जनमा मरा करता है जब तक इस की कर्मरूपी खरी नष्ट नहीं हो जाती ॥ ५४ ॥

कहत काल कलि सकल बुध ता कर यह व्यवहार।
उतपति-थिति-लय होत है सकल तासु अनुहार ॥ ५५॥

वृक्ष पक्ष। (अङ्कुर मूल) कालरूपी वृक्ष कोई बीज से अङ्कुर

निकल कर कोई (मूल) केवल सोर ही रोपने आदि से सब समय के अनुसार फूलते फलते हैं और फल कर नष्ट हो जाते हैं ॥

द्वितीयार्थ। (सकल बुध) सब ज्ञानी लोग कहते हैं कि (किल) निश्चयकर (ता काल कर यह व्यवहार) उसी काल का यह सब प्रपञ्च है कि (तासु अनुहार) उस के अनुसार (उतपति-थिति-लय होत है) इस जगत की उत्पत्ति, पालन और नाश होता है। अर्थात् उत्पत्ति के समय में ईश्वर ब्रह्मा हो कर सृष्टि करता है फिर बिष्णु हो कर पालन करता और (समय पा कर) अन्त में रुद्र हो कर संहार करता है। सब कुछ समय के अनुसार होता है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग भी अपने २ अवसर के अनुसार आते रहते हैं ॥ ५५ ॥

अङ्कुर किसलय दलबिपुल साखा-युत बर मूल।
फूलि फरत रितु अनुहरत तुलसी सकल सतूल ॥ ५६ ॥

प्रथम (बर मूल) उत्तम दृढ़ कर्मरूपी मूल वा जड़ पड़ती है तब उस में से अङ्कुर निकलता तब पत्ता (विपुल किसलय युत शाखा) फिर पूरे पल्लव के सहित शाखा उत्पन्न होती है जो अपने (रितु अनुहरत) ऋतु के अनुसार फूल कर फल उत्पन्न करती है (इस प्रकार कर्म की कहानी) (सकल सतूल) सब प्रकार वृक्ष के तुल्य है। जब कर्मरूपी वृक्ष का मूल एक वार अङ्कुरित हुआ तो जिस प्रकार एक वृक्ष वा एक बीज से अनेक बीज और वृक्ष फैल जाते है और उस का नाश करना कठिन हो जाता है उसी प्रकार कर्म का बन्धन है जिस से छूटना अति कठिन हो जाता है ॥ ५६ ॥

कहतब करतब सकल तेहि जाहि रहित नहिँ आन।
जान न मान न आन बिधि अनूमान अभिमान॥५७॥

कहना करना सब समय के अनुसार होता है जिस के बिना और कुछ नहीँ है अर्थात् समय ही पा कर कर्मरूपी वृक्ष फलता है और दूसरे प्रकार न जानना और न मानना चाहिये क्योँकि इस विषय मेँ दूसरा अनुमान करना केवल अभिमान है। काल सब कर्म का आधार है इस मेँ सब पदार्थ उत्पन्न होते स्थिर रहते और नष्ट हो जाते हैँ॥

द्वितीयार्थ आत्मपक्ष। (जाहि रहित आन नहिँ) जिस से हीन और कोई वस्तु नहीँ है (सकल तेहि कहतब करतब) सब उसी का कहना करना है वही शरीर मेँ रह कर कहता और कर्म करता है जब शरीर आत्मा से हीन हो जाता है तो इस मेँ कहने और करने का सामर्थ्य नहीँ रहता इस कारण सब करने धरनेवाला वही है परन्तु देहाभिमानी जीव (अभिमान) अभिमान करके (आन बिधि अनूमान न जान न मान) दूसरे प्रकार अनुमान करता अर्थात् अपने देह ही को कर्ता मान लेता है और मुख्य कर्ता को न जानता और न मानता है॥ ५७॥

हानि लाभ जय बिजय बिधि ग्यान दान सनमान।
खान पान सुचि रुचि अरुचि तुलसी बिदित बिधान॥
५८॥

हानि, लाभ, जीत, हार, विद्या, दान, आदर, खाने पीने का आनन्द, पवित्रता रुचि अरुचि सब काल पा कर अपने कर्म के अनुसार

होता है और इसी प्रकार (विधान) सब की विधि होने का प्रकार जाना गया है ॥ ५८ ॥

सा[1]लक पालक सम विखम भरम मगन गति ग्यान।
[2]अट घ[3]ट ल[4]ट नटनादि जहँ तुलसी रहित न जा[5]न ॥ ५९ ॥

अन्वय। सालक पालक सम बिसम भर्म मगन ज्ञान गति अट लट घट नटनादि जहँ (लगि) तुलसी (काल) रहित न जान।

दुख देनेहारा पालनेहारा, साधु और कठोर, भ्रम में गिरने वा ज्ञानगति में पड़नेहारा ज्ञानी होना (अट) सब योनि में घूमनेहारा, (घट) घट कर एक योनि में रहनेहारा, (लट) वर्तमान हीं जन्म में स्थिर अर्थात् उसी में फिर जन्म पानेहारा, और (नटनादि) नट आदि की योनि में पड़ कर नाटक करने और नाचनेहारा, यह सब जहाँ तक हैं तुलसी कहते हैं कि इन से रहित जीव को नहीं जानना चाहिये अर्थात् जीव इन सब योनि और अवस्थाओं को अपने कर्म के वशीभूत काल के अधीन हो कर भोगता है काल के अनुकूल ये सब होते हैं॥ जहाँ "रम भ्रम गम गति ग्यान अट लट नट नादि जट" पाठ हो, वहाँ नीचे लिखे प्रकार अन्वय और अर्थ करना चाहिये।

---

१ दुःखद। २ योनि जन्म। ३ छोटा होना। ४ वर्तमान जन्म में रहना। ५ अपने से रहित न समझ।

अन्वय। बालक पालक सम विखम रम (आदि) नादि न जान (अर्थात् नान्त जान।) रमन, भ्रमन, गमन, ग्यान गति, अटन, घटन, लटन, नटन, जटन।

दुखदाई, सुखदाई, साधु, दुष्ट अर्थात् (जीव) कभी दुखदाई कभी सुखदाई कभी भला कभी बुरा होता है। रम आदि शब्दों को (नादि न जान) नकारादि न समझो अर्थात् नकारान्त जानो जैसे (रमन) कभी क्रीड़ा करता, घूमता फिरता, चलता, तीर्थों में घूमता कम होता छोटा बन जाता एक ही योनि में वर्तमान रहता, वा रोग से लटकर दुबला पतला हो जाता नाचता दूसरी वस्तु में जड़ा जाता इत्यादि अवस्थाओं से रहित जीव को न जानना चाहिये अर्थात् काल और कर्म के अधीन जीव इन सब अवस्थाओं को भी भोगता है।

किसी किसी टीकाकारों ने जो "नकार के आदि लगा के" कह-के आदि शब्द का अन्त अर्थ समझा है वह असङ्गत जान पड़ता है और दूसरे अर्थ में कल्पना का गौरव भी है अभिप्राय दोनों का एक ही है॥ ५९॥

कठिन-करम-करनी-कथन करता कारक काम।
काय-कष्ट-कारन करम होत काल सह साम॥ ६०॥

कर्म के कामों का वर्णन करना कठिन है (करता) करनेहारा (कारक) करानेहारा काम ही है। (काल सह) समय पा कर कर्म अर्थात् अपनी करनी ही (काय कष्ट कारन) शरीर के क्लेश को करनेहारी अर्थात् दुखदाई और (साम कारन) शान्ति करने-

वाली अर्थात् क्लेश को दूर करनेहारी भी होती है। अपनी करनी मुख्य है पुन्य करते समय पाप और पाप करते समय पुन्य हो जाता है जैसे राजा दक्ष ने शुभ यज्ञ में शिव का अपमान किया, राजा नृग ने गोदान करते समय दूसरे ब्राह्मण की गौ दूसरे को दे दी, अजामिल अपने पुत्र को पुकारते समय तर गया इत्यादि।

अभिप्राय यह कि कर्मों का जाल बड़ा भयङ्कर है इस से छूटना कठिन है इस कारण सर्व कर्म त्याग उत्तम है। इस दोहे में ककार की आवृत्ति अनेकवार होने के कारण वृत्यनुप्रास स्पष्ट झलकता है॥६०॥

चित रत बित बेओहार बिधि अगम सुगम जय मीच।
धीर धरम धारन हरन तुलसी परत न बीच॥ ६१॥

अन्वय। चित वितरत, वेओहार विधि (रत), सुगमजय (रत), अगम मीच (रत), धीर धरम धारन (रत), हरन (रत), तुलसी बीच न परत।

कर्म की प्रेरना के अनुसार (चित्त) मन (कभी) (वितरत) धन के कमाने में लगता है। (कभी) अनेक प्रकार के संसारी व्यवहार में फिर (सुगम जय) अच्छे प्रकार लोगों को जीत कर अपने अधीन करने में तत्पर होता और कभी (अगम मीच) अनजानी मृत्यु को पाता है। कभी धीरता और धर्म्म को धारन करता है कभी (हरण) उन्हें छोड़ देता है अर्थात् अधीर और अधर्म्मी हो जाता है (बीच न परत) और कुछ अन्तर नहीं पड़ता, इन अवस्थाओं में किसी न किसी के बीच मन अवश्य रहता है और ये सब दशा कर्म के कारण काल पा कर मनुष्यों में प्रगट होती रहती हैं।

द्वितीयार्थ। मन धन में लीन रहने के कारण अनेक प्रकार के व्यवहार में लगता है जिन में जय होना कठिन परन्तु पराजय सुगम है। जो लोग धैर्य्य धर्म्म आदि के धारण करते हैं उन के जय में और जो लोग धैर्य्य धर्म्म को हरण करते उन के पराजय में बीच नहीँ पड़ता है अर्थात् धीर का जय अधीर का पराजय अवश्य होता है।

जहाँ अगम निगम जय मोच पाठ हो वहां (अगम निगम पद से) मन वेद पुराण के विचारने में लगता है ऐसा अर्थ करना चाहिये॥ ६१॥

खरब आतमा-बोध बर खर बिनु कब हुँ न होइ।
तुलसी खसम बिहीन जे ते खर-तर नहिँ सोइ॥६२॥

(बर आतमा-बोध खरब) उत्तम आत्म ज्ञान अति सूक्ष्म है (खर बिनु कब ऊँ न होइ) जब तक मनुष्य अति (खर) ज्ञानाग्नि द्वारा पापरूप सब मल जलाकर निर्मल न हो तब तक आत्मज्ञान उसे नहीँ हो सकता। तुलसी कहते हैं कि जो लोग (खसम) राम वा गुरु स्वामी से रहित हैँ वे (खर-तर) अति सूक्ष्म बुद्धि नहीँ हो सकते अर्थात् सद्गुरु जब तक न मिलें तब तक आत्मज्ञान का होना बड़ा कठिन है।

अभिप्राय यह कि या तो ज्ञानाग्नि द्वारा सर्व विध कर्म्म को जला डाले (जो अति कठिन है ऐसा आगे कहेंगे) अथवा श्रीरामरूप प्रभु की दया से सर्व पाप मुक्त हो तब मुक्ति का भागी हो सकता है॥ ६२॥

सबद रूप बि-बरन बिसद तासु योग भव नाम।
करता नर बहु जाति तेहि सञ्ज्ञा सब गुन-धाम॥६३॥

शब्द का रूप विशेष (बरन) अक्षर हैं सो निर्मल हैं और उन्हीं के योग से नर ऐसा कर्ता नाम बना है सो नर अनेक जाति के हैं और वही नर सञ्ज्ञा सब गुणों का घर है अर्थात् नर ही अपने कर्म से भला बुरा कहाता है।

द्वितीयार्थ। शब्दब्रह्म का रूप वर्णहीन है अर्थात् उस का कोई रूप नहीं और रूप रहित हो कर भी वह शब्द निर्मल है उसी बाणी के योग से संसार का नाम भव हुआ सो इस संसार का कर्ता नर ही है इसी की करनी से यह संसार में बन्धता है और अनेक जाति वा योनि में भरमता है और नाम पा कर सब गुणों का आश्रय होता है।

तृतीयार्थ। अन्वय। सब्दरूप बिबरन नर बिसद तासु योग भव नाम, कर्ता सब गुणधाम (नर) संग्या तेहिँ बहु जाति। सब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श के रूप से बिबरन भिन्न जन रहता है सो निर्मल है और इन के योग में जब रहता वा इन से मिल जाता तो (भव) उत्पत्ति होती है अर्थात् जीव नाना योनि में घूमता है। कर्ता जीवात्मा है और अनेक गुणों के आश्रय मनुष्य की अनेक जात होती है॥६३॥

नाम जाति गुन देखि कै भयउ प्रबल उर भर्म।
तुलसी गुरु उपदेस बिनु जानि सकै को मर्म॥६४॥

नाम सुन कर और जाति तथा गण को देख कर इस के मन में

(अपने ही कर्म में) बहुत बड़ा भ्रम हुआ है सो तुलसी कहते कि बिना सद्गुरु के उपदेश के इस का भेद कौन पा सकता है अर्थात् बिना भले गुरु के मिले इस भ्रम से कोई भी नहीं छूट सकता।

अभिप्राय यह कि कहीं २ भला नाम उत्तम जाति ब्राह्मण आदि गुण सुशीलता उदारता आदि को देख कर पदार्थों में जीव को भ्रम हो जाता है जैसे हनुमान जी को हुआ था परन्तु जब गुरु शिक्षा देते हैं तो उस का ठीक २ मर्म जाना जाता है जैसे "मुनि न होइ यह निसिचर घोरा" यह वाक्य सुन कर हनुमान जी को राक्षस का ठीक २ ज्ञान हुआ॥ ६४॥

अपन करम बर मानि कै आपु बँधेउ सब कोइ।
कारज रत करता भएउ आपु न समुझत सोइ॥६५॥

सब लोग अपने कर्म को (बर) अच्छा समझ कर आप से आप बन्ध गये हैं अर्थात् कर्म की फाँस में पड़े हैं। (करता कारन रत भएउ) करनेवाला जीव अपने कर्म के अधीन हो गया है और वह अपने मुख्य रूप परमेश्वर को नहीं समझता है। अर्थात् जीव ऐसा कर्म के वशीभूत हो गया है कि इस को यह ज्ञान नहीं है कि मैं परमेश्वर का एक अंश हूँ परन्तु कर्ममय हो रहा है॥ ६५॥

करता कारन को लखै कारज अगम प्रभाव।
जो जहँ सो तहँ तहँ हरख तुलसी सहज सुभाव॥६६॥

कर्ता जो है वही सब कर्म का कारण है क्योंकि इस के बिना किये कोई काम नहीं होता इस बात को (को लखै) कौन बिचारता है?

अर्थात् कोई नहीँ सोचता परन्तु कार्य का प्रताप बड़ा भारी हो रहा है क्योँकि जो जहाँ है सो वहीँ अपने साथ उत्पन्न स्वभाव से (हरख) प्रसन्न है। कर्म की फाँस मेँ ऐसा मग्न है कि जिस अवस्था मेँ है उसी मेँ यह जीव अपने को सुखी मानता है।

अभिप्राय यह कि जीव कामना और बासना सहित हो कर सब काम मेँ हर्षित रहता है यदि बासना हीन हो कर काम करे तो बन्धन मेँ न पड़े इस के बिरुद्ध जिस योनि मेँ पड़ा उसी मेँ मग्न देख पड़ता है इसी लोक के दुख मेँ डूबा है परलोक की उसे कुछ भी सुध नहीँ है ॥ ६६ ॥

तुलसी बिनु गुरु को लखे बर्तमान बिपरीत।
कहु केहि कारन तेँ भएउ सूर उसिन ससि सीत॥६७॥

बिना सद्गुरु के बर्तमान समय की परस्पर बिरुद्ध बातोँ को कौन समझ सकता है। कहो किस कारण से सूर्य्य उष्ण और चन्द्र शीत हुये। जो २ बातेँ प्रतिदिन देख पड़ती हैँ उन के भी तत्त्व को समझना बिना गुरु कृपा के नहीँ हो सकता और बड़ी बातोँ के समझाने को कौन कहे जहाँ "बर्तमान बिधि रीत" पाठ हो तहाँ बर्तमान इस समय की क्या रीत है यह भी बिना उपदेश नहीँ जानी जाती ईश्वर ने जिस को जो गुण दे कर जैसे स्वभाव का कार्य करने को कहा वह वैसा ही करता है सूर्य उष्ण और चन्द्र शीत उसी के करने से हुये है यथा रामायण मेँ "अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। योग सिद्धि निगमागम गाई। करि बिचार जिव देखहु नीके। राम-रजाय शीश सब ही के" ॥ ६७॥

करता कारन करम तेँ पर परमा-ऽऽतम ग्यान।
होत न बिनु उपदेस गुरु जौ पढ़ बेद पुरान॥६८॥

कर्ता करनेहार, जीव। कारण मावाप और कर्म इन तीनोँ से (पर) परे (परमा-ऽऽतम ज्ञान) परब्रह्म परमेश्वर का ज्ञान है सो बिना गुरु के उपदेश के नहीँ हो सकता चाहे कोई कितना भी वेदोँ और पुरानोँ को पढ़े। पहले दोहे मेँ प्रत्यक्ष वस्तुओँ के तत्त्वज्ञान का होना गुरु उपदेश बिना असम्भव दिखा कर इस दोहे से ब्रह्मज्ञान के होने का अत्यन्त असम्भव दिखलाया॥ ६८॥

प्रथम ग्यान समुझे हिये बिधि निखेध बेओहार।
उचिता-ऽनुचितहिँ हेरि हिय करतब करइ सम्हार॥६९॥

(प्रथम बिधि निखेध बेओहार समझे) पहले किस काम करने की आज्ञा शास्त्र मेँ है और किस के करने का निषेध है इस व्यवहार को समझे (हिय उचिता-ऽनुचित हेरि) फिर अपने मन से उचित और अनुचित को देखे वा बिचारे (हिये ग्यान सम्हारि करतब करइ) तब ज्ञान को हृदय मेँ धारण कर के अथवा सम्भारि सावधान हो कर कर्म करे॥ ६९॥

जब मन महँ ठहराइ बिधि स्री-गुरु-बर-परसाद।
एहि बिधि परमा-ऽऽतम लखे तुलसी मिटइ बिखाद॥७०॥

(स्री-गुरु बर आदि) श्रीगुरुदेव की दया से जब (मन महँ एहि बिधि ठहराय) मन मेँ यह बिधि शास्त्रोक्त प्रकार स्थिर हो जाय तब श्रेष्ठ गुरु की कृपा से परमात्मा का ज्ञान होता है जिस से सब

(विषाद) दुःख का नाश हो जाता है। इन दोनों दोहों में कहे प्रकार से राजा जनक के समान ज्ञान दृष्टि से कर्म करे तो कर्म के बन्धन में न पड़े॥ ७० ॥

बरबस करति बिरोध हठि होन चहत अक-हीन।
गहि गति बक-हक-स्वान इव तुलसी परम प्रवीन॥७१॥

(तुलसी अपने मन से वा संसारी मनुष्य से कहते हैं कि ऊपर की रीत को छोड़ कर) (परम प्रवीन) तू ऐसा बुद्धिमान (व्यङ्ग अर्थात् अबुद्धिमान) है कि बकुला झण्डार और कुत्ते के समान चाल ग्रहण कर के (अर्थात् कपट, क्रूरता और लोभ के वशीभूत हो कर भी) व्यर्थ हठ कर के झगड़ता है और "अक-हीन" (न कं सुखं यस्य) दुःख से रहित अर्थात् सब दुःख से हीन हो मुक्ति पा ईश्वर में मिलना चाहता है यह असम्भव है। जहाँ (अँक-हीन अर्थात् देह रहित) पाठ हो वहाँ शरीर-हीन हो कर परब्रह्म का रूप होना चाहता है ऐसा अर्थ करना चाहिये॥ ७१ ॥

आक करम भेखज बिदित लखत नहो मति-हीन।
तुलसी सठ अक-बस बिहठि दिन दिन दीन मलीन॥७२

(करम) अपने किये कर्म के अनुसार जीव (आक) दुःखी है (भेखज बिदित) इस का औषध जाना हुआ है (मति-हीन) परन्तु बुद्धिहीन होने के कारण (लखत नहीं) पहचान नहीं सकता। तुलसी दास कहते हैं कि यह (सठ) मूर्ख हठ कर के (अक) दुःख के अधीन, वा यदि "अँक-बस हठि" पाठ हो तो भाग्य के अधीन, हो कर जन्म पाता है इसी से (दिन २) प्रति दिन कर्म के बढ़ने के कारण (दीन) दुःखी और मलीन होता जाता है॥

रामभजन सत्सङ्गति आदि उपाय प्रायः सभी जन जानते हैं परन्तु इस प्रकार माया की जाल में फसे हैं कि उन को न कर और और काम करते हैं और उन्ही (क्रियमाण) किये जाते कर्म के अनुसार अनन्त जन्म मरण के दुख में पड़े रहते हैं ॥ ७२ ॥

करता ही तें करम-जुग से। गुन-दोख सरूप।
करत भोग करतब जथा होइ रङ्क किन भूप ॥ ७३ ॥

(जुग कर्म) विहित शास्त्र में कहा और निषिद्ध शास्त्र में वर्जित दोनों कर्म (कर्ता ही तें) करनेवाले ही से किये जाते हैं अर्थात् दोनों को कर्ता ही करता है परन्तु वह कर्म (गुन-दोख सरूप) एक गुन कारक और दूसरा दोषकारी है। (तथा) सो जिस प्रकार के करतब को जो करता है उसी प्रकार का भोग उसे करना पड़ता है चाहे करनेहारा दरिद्र हो वा राजा हो। उस को अपने भले बुरे कर्म कें फल को बिना भोगे छुटकारा नहीं। अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतं कर्म शुभाशुभम्। भले बुरे कर्म का फल इस जीव को अवश्य ही भोगना पड़ता है ॥ ७३ ॥

बेद पुरान सास्त्र जत हु तत बुधि-बल अनुमान।
निज करि करि करिहै बहुरि कह तुलसी परिमान ॥ ७४ ॥

बेद पुराण और शास्त्र जितने हैं सब बुद्धि के बल से अनुमान करते हैं कि (निज करि करि बहुरि करिहै) जीव अपनी ही करनी कर के फिर करेगा अर्थात् जो कर्म इसने किया है उस का

फल भाग्य कहलाता है और उसी भाग्य के अनुसार वह दूसरे जन्म में फिर करता है इस प्रकार उसी की करनी उस से काम कराती है अर्थात् कर्म ही प्रधान है इसी को प्रमाण समझना चाहिये क्योंकि "कर्म प्रधान विश्वकरि राखा-जो जस करै सो तस फल चाखा।" जहाँ "निज निज करि करिहै" पाठ हो वहाँ अपना २ कर के (करिहै) संसार ही का काम करते हैं अर्थात् संसारी धन दारा में लीन रहते हैं पुराण आदि के कथन अनुसार नहीं चलते यह अर्थ करना चाहिये ॥ ७४ ॥

बिबिध प्रकार कथन करै जाहि जथा भै भान।
तुलसी सु-गुरु प्रसाद-बल कोइ कोइ कहइ प्रमान॥७५॥

(जाहि जथा भान भौ बिबिध प्रकार कथन करै) जिस को जैसा समझ पड़ा उस ने उस प्रकार कहा यही नाना प्रकार के मत का कारण है। परन्तु (सु-गुरु) सच्चे गुरु वा रामरूप गुरु की कृपा से जो कोई २ कहते हैं वही कहना प्रामाणिक है॥ ७५॥

उर डर अति-लघु होन को भै लघु-सुरति भुलानि।
स्वरन लाहु लखि परत नहिं लखत लोह की हानि॥७६॥

यह संसारी जीव (उर अति लघु होन को डर) मन में छोटा होने से बहुत डरता है परन्तु (लघु सुरति भौ भुलान) छोटे रूप वाले संसार की माया में भूला है इस पर एक दृष्टान्त देते हैं कि जैसे किसी मनुष्य को थोड़े दिन के लिये पारस मिला उस समय लोहा बड़ा मँहगा था सो वह लोहे के मँहगे होने के कारण अपने

अधिक दाम के लोभ में ऐसा डूब गया कि उस को (स्वर्ण-लाह नहिँ लखि परत) सोने के लाभ का कुछ भी ज्ञान वा बिचार नहीँ होता है परन्तु (लखत लोह की हानि) बार २ यही बिचारता है कि लोहा बड़ा मँहगा है किस प्रकार खरीदूँ। ऐसा बिचारते २ जिस का पारस था उस ने ले लिया। ऐसी ही दशा इस जीव की है कि यह पारस रूप आत्मा पाये है परन्तु संसार मायारूपी लोहे के मोह में पड़ा है संसार को अब छोड़ते हैं ऐसा बिचार करते २ अन्तसमय आ जाता है फिर इसी में पड़ा रह जाता है परमेश्वर के भजन में नहीँ लगता ॥ ७६ ॥

नयन-दोख निज कहत नहिँ बिबिध बनावत बात।
सहत जानि तुलसी बिपति तद्‌पि न नेक लजात ॥७७॥

अपने ज्ञानरूपी नेत्र का दोष तो यह जीव कहता नहीँ और अनेक प्रकार का तर्क बितर्क कर के बात बनाता है। जान बूझ कर बिपत और दुख में पड़ा हुआ भोग रहा है तो भी थोड़ा नहीँ लजाता ॥

जैसे किसी मनुष्य को आँख में रोग हुआ हो और वह मारे लाज के उस दोष को बैद्य से न कहे परन्तु जानता हो और उस के कारण अनेक दुख भोगता रहे वैसे ही यह देहाभिमानी जीव सब दुख सह कर संसारी जाल में फसा है ॥ ७७ ॥

करत चातुरी मोह-बस लखत न निज-हित-हान।
सुक मरकट इव गहत हठ तुलसी परम-सुजान ॥७८॥

माया के अधीन हो कर अपनी चतुराई प्रगट करता है परन्तु अपनी भलाई की हानि को नहीँ बिचारता। फसानेवालोँ के कम्पा और पिञ्जड़ा आदि मेँ बन्ध जानेहारे सूगे और बानर के समान हठ पकड़े हुये है और अपने को बड़ा ज्ञानी समझता है। यह जीव आप ही से अपने को संसारी माया मेँ लपेटे है और दैव का दोष देता है संसार के ऐश्वर्य को कमाने मेँ अपनी चतुराई कर के बड़ाई ज्योँ २ पाता है त्योँ २ और जाल मेँ फँसता है॥ ७८॥

दुखिया सकल प्रकार सठ समुझि पड़त तेहि नाहिँ।
लखत न कण्टक मीन जिमि असन भखत भ्रम माहिँ॥७९॥

यह जीव संसार मेँ फँसने के कारण सब प्रकार से दुखी है परन्तु यह पुत्र कलत्रादि की माया मेँ ऐसा लिप्त है कि इस को इस का दुख कुछ भी नहीँ समझ पड़ता है ठीक वैसे ही जैसे मछली जब बंसी के चारे को निगलती है तो उस को उस चारे मेँ सुखदाई भोजन का भ्रम हो जाता है और वह उस के भीतर के काटे को नहीँ देखती परन्तु उसी से वह मछली मारनेवाले के बन्धन मेँ पड़ जाती है। इसी प्रकार संसारी माया मनुष्य को दुखदाई नहीँ समझ पड़ती परन्तु इसी माया मेँ पड़कर यह जन्ममरण के महादुख मेँ पड़ता है॥ ७९॥

तुलसी निज मन-कामना चहत सून्य कहँ सेइ।
बचन गाय सब के बिबिध कहहु पयस केहि देइ॥८०॥

शून्य की सेवा कर के यह अपना मनोरथ पूरा करना चाहता है सो इस का होना असंभव है क्योंकि बातरूपी गौ सब के अनेक हैं परन्तु उन से किसी को दूध नहीं मिला ॥

तात्पर्य यह कि नश्वर संसार शून्य के सम है इस में लिप्त रह कर कोई परमारथ की इच्छा करे तो वह केवल बात की गाय का दूध चाहता है जो असम्भव है ॥ ८० ॥

बातहिँ बात हिँ बनि पड़े बातहिँ बात नसाय।
बातहिँ आदिहिँ दीप भौ बातहिँ अन्त बताय ॥८१॥

जीव को जड़ता दिखा कर अब ८१ के दोहे से बात की सामर्थ्य का वर्णन प्रारम्भ करते है ॥

बात ही से बात बनती है जो भली भाँत बात करते बने तो बात ठीक होती है और बात ही से बात नष्ट हो जाती है। अथवा एक बात साधु सेवा ईश्वर भजन है जिस से मनुष्य का परलोक बनता है दूसरी बात संसार में लिप्त होना और पाप करना है जिस से नरक में जाते हैं ईश्वर भजन से बहुतेरे तर गए हैं और संसार में लगने से बहुत से दुःखी हुए हैं। (दीप आदि हि बात हिँ भौ) दीया प्रथम बायु से ही उत्पन्न हुआ फिर अन्त को बायु ही के द्वारा नष्ट हो गया। निर्वायु स्थान में दीप नहीं बल सकता उसी प्रकार अधिक बायुयुक्त स्थान में बुझ जाता है अथवा एक बात शब्द का अर्थ (बाती समझ के) बत्ती किया तो बत्ती के रहने से दीपक बलता और बायु से बुझ जाता है ॥ ८१॥

बातहिँ तैँ बनि आवही बातहिँ तैँ बन जात।
बातहिँ तैँ बर बर मिलत बातहिँ तैँ बौरात॥ ८२॥

बात ही से (घर ही में) (बनि आवही) मनुष्य का परलोक बनता है अर्थात् घर रह कर भी अच्छा काम करे तो उस की बन जाती है और बात ही से मनुष्य बन में जाता है। बात ही से (बर) श्रेष्ठ (बर) बरदान मिलता है और बात ही से लोग बौरा जाते हैं अर्थात् बात ही भले बुरे का कारण है।

द्वितीयार्थ। भली बात कहने से लोग बहुत धन पाते और सुखी होते हैं और बात ही से बनी बनाई बात भी बिगड़ जाती है। वा बहुत बोलने से (बर-बर) बकवादी कहाता है। आधे का अर्थ जैसा का तैसा रहा॥ ८२॥

बात बिना अतिसय बिकल बातहिँ तैँ हरखात।
बनत बात बर बात तैँ करत बात बर घात॥८३॥

लोग बात (बचन वा बायु) के बिना बड़े दुख में रहते हैं और बात ही (बचन वा बायु) से बड़े सुखी होते हैं। (बर बात तैँ बात बनत) अच्छे बचन से (बात) काम बनता है और (बात बर घात करत) बात ही से (बर) अपनी इच्छा मनोरथ नष्ट हो जाता है अर्थात् काम बिगड़ जाता है। जैसे ब्राह्मण बालक की रक्षा रूप बात अर्जुन से न बनी इस कारण व्याकुल हुये शबरी जटायु आदि से बात बनी इस से राम प्रसन्न हुये इत्यादि अनेक उदाहरण हैं॥ ८३॥

तुलसी जाने बात बिनु बिगरत हर एक बात।
अनजाने दुख बात के जानि पड़े कुसलात ॥८४॥

बिना (बात) ठीक २ तत्त्व के जाने सब काम बिगड़ता है और जब तक वह तत्त्वरूपी वार्ता नहीं जानी गई तभी तक दुख है परन्तु जब वह जान पड़ी वा जानी गई तब अनेक प्रकार के आनन्द होते हैं॥

द्वितीयार्थ। तुलसी-दास कहते हैं कि बात को बिना समझे बूझे करने से सब बात बिगड़ जाती है जैसे राजा दशरथ ने बिना बिचारे ऋषिकुमार को मारा उस के मातापिता से शाप पाया बिभीषण ने समझ बूझ कर राम की शरण ली इस कारण उस की कुशल हुई॥

इन कई एक दोहों में बात २ बनि २ आदि पदों के अनेक बार आने से अनुप्रास अलङ्कार है॥ ८४॥

प्रेम बैर, अरु पुन्य अघ, जस अपजस, जय हान।
बात बीज इन सभन को तुलसी कहहिं सुजान ॥८५॥

(तुलसी सुजान कहहिं) कवि तुलसी दास वा तु० राम-लक्ष्मण और सी० सीता के जाननेहारे भक्तलोग कहते हैं। कि (प्रेमादि—इन सभन को बात बीज) प्रीति वा मित्रता बैर शत्रुता पुन्य धर्म अघ पाप यश-सुकीर्ति और कुकीर्ति जीत और हार इन सबों का कारण केवल बात है। इसी बात के कारण लोग भले बुरे सब होते हैं इस से मधुर सत्य आदि बचन बोलना चाहिये प्रीति का उदाहरण जैसे, बिभीषण सुग्रीवादि, बैर का रावण कुम्भकरण-

आदि पुन्य जैसे जटायु ने तिरियागुहार किया रावण ने परस्त्री हरण किया। यश अपयश रामचन्द्र ने पितृ आज्ञा पालनरूप महा यश पाया दशरथ ने स्त्री की बात पर उन्हे बन भेज कर दुर्यश फैलाया जीतने योग्य परशुराम और बालि से करते न बना हारगये। श्रीकृष्ण की दयासे महाराज युधिष्ठिर ने दुर्योधन आदि दुर्जय शत्रुओं को भी जीत लिया इत्यादि ॥ ८५ ॥

बञ्चक-बिधि-रत नय-रहित बिधि हिन्सा अति लीन।
तुलसी जग महँ बिहित बर नरक निसेनी तीन॥८६॥

(बञ्चक बिधि) दूसरे को ठगने की रीत (नय-रहित) परस्त्री गमन परनिन्दा आदि अनीत करनेवाले (हिन्सा बिधि अतिलीन) हिन्सा के काम में बहुत लवलीन रहनेहारे (ये तीन जग महँ बर नरक निसेनी बिदित) ये तीनों संसार में बड़े नरक का चिन्ह प्रसिद्ध हैं अर्थात् जिन लोगो में ये तीनो बातें पाईं जायँ उन को जानना चाहिये कि नरक में से आये हैं और मरने पर वहाँ ही जायँगे ॥ ८६ ॥

सदा भजन गुरु साधु द्विज जीउ-दया सम जान।
सुख-द सुनय-रत सत्य-ब्रत स्वरग सप्त सोपान ॥८७॥

गुरु[१] साधु[२] और ब्राह्मण[३] की भक्ति और सब जीवों को अपने समान जान कर उन पर दया[४] करना और सुख देनेहारी सुन्दर नीति में और सत्यता और ब्रत में प्रीति रखना ये सातो स्वर्ग की सीढ़ी हैं। अर्थात् जिनमें ये गुण है वे मरने पर अवश्य स्वर्ग में जायँगे॥ ८७॥

जे नर जग गुन-दोख-जुत तुलसी बदत बिचार।
कबहुँ सुखी कबहूँ दुखी उदय अस्त बेओहार॥ ८८॥

(उदय अस्त बेओहार) जब तक सूर्य्य उदय और अस्त होते हैं अथवा जब से संसार का उदय जन्म हुआ है और जब तक अस्त अर्थात् नाश होगा तब तक यही व्यवहार है कि जो मनुष्य संसार के गुण वा दोष में लगे रहते है अर्थात् बिधि निषेध का काम किया करते तुलसी-दास बिचार के कहते हैं वे कभी सुखी कभी दुखी हुआ करते हैं और जन्म मरन के फन्दे में पड़े रहते हैं।

द्वितीयार्थ। जग जे नर गुन-दोख-जुत तुलसी बदत ते कबहुँ सुखी कबहूँ दुखी यथा उदय अस्त बेओहार। पहले स्वर्ग और नरक का चिह्न बता कर अब दोनोँ का चिह्न कहते हैं कि संसार में जो लोग गुण और दोष दोनोँ से सहित हैं वे कभी२ सुखी कभी दुखी रहते हैं जैसे सूर्य्य के उदय के समय बहुतेरे सुखी और अस्त में दुखी होते वा दिन को भला और रात को बुरा काम करते हैं॥ ८८॥

कारज जुग के जुगल तम काल अचल बलवान।
त्रिबिध बिबल तें ते हठहि तुलसी कहहिँ प्रमान॥ ८९॥

(कारज जुग) दो काम हैं अर्थात् एक बिधि और दूसरा निषेध वा बिहित अबिहित (युगल के तम) सो दोनोँ तमरूपी हैं क्योँकि भले बुरे दोनोँ प्रकार के काम मनुष्य को भोगने पड़ते हैं (काल

अचल बलवान) समय बड़ा बली और अचल है क्योंकि काल पा कर दोनों कर्मों के फल का उदय होता है। (त्रिविध बिबल) तीन विशेष बल हैं अर्थात् सत्त्वगुण, रजोगुण, और तमोगुण जिन से (हठहि) अभिमानी हो कर जीव कर्मों को भोगता है यह प्रमाण है।

अथवा काल युग बलवान है सत्ययुग में सब लोग भला ही काम करते थे और कलि में बुरा काम करते हैं इस प्रकार दोनों युगों की प्रेरणा से भला बुरा कार्य हुआ करता है ॥ ८९ ॥

अनुभव अमल अनूप गुरु कछुक सास्त्र-गति होइ।
बचइ काल क्रम दोख तें कहहिं सु-बुध सब कोइ॥ ९०॥

जिस को (अमल अनुभव) निर्मल बिबेक हो और (अनुपम गुरु) अतुल्य गुरु उपदेश देनेहारे मिलें और कुछ २ शास्त्र का भी बोध हो वह काल समय और (क्रम) कर्म के दोष से बच सकता है ऐसा (सुबुध सब कोई कहहिं) सब अच्छे २ विद्वान लोग कहते हैं।

अभिप्राय यह कि बिरले विद्वान लोग जो बुरा काम सब रीत त्याग करते और भला काम कामना-हीन हो कर करते हैं वे ही संसार के बन्धन से छूटते हैं नहीं तो छूटना बड़ा कठिन है ॥ ९० ॥

सब बिधि पूरन धाम बर राम अपर नहिं आन।
जा की क्रिपा-कटाच्छ तें होत हिये द्रिढ़ ग्यान॥ ९१॥

सब प्रकार से पूर्ण अर्थात् सकल ऐश्वर्य सम्पन्न (बर धाम) अत्यन्त तेजस्वी (अपर) जिस से बड़ा और कोई नहीं ऐसे राम जी हैं

(ज्ञान नहिँ) और कोई नहीँ है अथवा (अपर ज्ञान नहिँ) और दूसरा कोई नहीँ । उन्ही की कृपा-दृष्टि से (हिये) मन में दृढ़ उत्तम ज्ञान होता है अर्थात् गुरु-भाव से उन की सेवा भक्ति करने से जीव ज्ञान पाता है तब कर्म और काल के बन्धन से छूटता है और किसी की सेवा से मुक्त होना कठिन है। पहले संसारी जाल से मुक्त होने की कठिनता दिखा कर अब अपने इष्ट देव श्रीरामरूप भगवान की सेवा का उपदेश किया है ॥ ९१॥

सो स्वामी सो तर सखा सो बरसुख-दातार ।
तात मात आपद्-हरन सो असमय-आधार ॥ ९२ ॥

वही राम स्वामी, बड़े मित्र, उत्तम सुख के देनेहारे, माता-पिता, बिपत के नाशक और कुसमय में रचा करने हारे हैं ॥ ९२ ॥

सुख-द दुख-द कारन कठिन जानत को तेहि नाहिँ ।
जाने हु पर बिनु गुरु-क्रिपा करतब बनत न काहि॥९३॥

सुखदुख का देनेवाला कारन जो कठिन कर्म है उसे कौन नहीँ जानता अर्थात् सभी जानते हैं परन्तु जान कर भी बिना गुरु-देव की कृपा से (काहि करतब न बनत) किसी से कम नहीँ बनता अर्थात् बिन सद्गुरु के मिले सत्कर्म को जो लोग जानते भी हों तो भी करते नहीँ बनता। इस हेतु सद्गुरु करना बहुत आवश्यक है। यज्ञ, तप, जप, तीर्थ भ्रमण, व्रताचरण, साधुसेवा, सत्सङ्ग, पात्र-दान, परोपकार आदि अनेक शुभ और परपीड़ा, छल, अनीति,

हिंसा, डाह आदि दुखदाई काम हैं इन को प्रायः सभी लोग जानते हैं। परन्तु कम लोग शुभ काम में लगते हैं अशुभ की ओर बहुतों की इच्छा दौड़ती है कभी २ शुभ काम करते अशुभ और अशुभ करते शुभ हो जाता है। इस कारण गुरु का लखाना आवश्यक है गुरु के लखाने से मनुष्य पहचान सकते हैं ॥ ९३ ॥

तुलसी सकल प्रधान है बेद-बिदित सुख-धाम।
ता महँ समुझब कठिन अति जुगल भेद गुन नाम॥९४॥

(तुलसी सुख-धाम सकल प्रधान है) तुलसी जी कहते हैं कि पूर्वोक्त शुभ कर्म्म सुख का मूल है सब वस्तुओं में प्रधान है वेदों ने भी शुभ कर्म्म की बड़ी प्रशंसा की है परन्तु उन का समझना इस कारण बहुत कठिन है कि उन के नाम और गुन में दो भेद हैं अर्थात् एक सकाम और दूसरा निष्काम शुभ कर्म्म भी यदि कामना सहित किया जाय तो करने हारे पुरुष को भोग में बाँधता हैं और निष्काम कर के ईश्वर को अर्पण करने से बन्धन नहीं होता इस प्रकार कर्म्म के नाम के गुणों में दो भेद है।

अथवा पदार्थ के नाम गुन के दो भेद होते हैं जैसे मिश्री बहुत उत्तम है तो भी कफवालों के लिये दुखदाई होती है ॥ ९४ ॥

नाम कहत सुख होत है नाम कहत दुख जात।
नाम कहत दुख जात दुरि नाम कहत सुख-खात॥९५॥

नाम के कहने से सुख आनन्द होता है और दुख चला जाता

अर्थात् नष्ट हो जाता है फिर नाम के कहने से तीनो प्रकार के दुख दूर होकर (सुख-खात) सुख के ह्रद में अर्थात् मुक्तिरूप आनन्द सरोवर को मनुष्य पाते हैं।

जहाँ (सुख जात दुरि दुख-खात) पाठ हो वहाँ संसारिक विषय सुख दूर हो जाता और दुख भाग कर (खात) अर्थात् कन्दरे में जा घुसता है ऐसा अर्थ करना चाहिये॥ ९५॥

नाम कहत बैकुण्ठ सुख नाम कहत अघ-खान।
तुलसी ता तेँ उर समुझि करहु नाम पहिचान॥९६॥

नाम ही के जपने से लोग बैकुण्ठ का सुख पाते और (अघ-खान) पाप के ढेर को नसाते हैं इस कारण तुलसी कहते हैं कि हे भक्तो! अपने मन में भली भाँत समझ के नाम को पहचानो।

अथवा अविधि-पूर्वक नाम लेने से पाप होता है। विधान के साथ नाम जपने के विषय में पद्मपुराण में लिखा है कि (दशापराधयुक्तानां न भवेत्सौख्यमुत्तमम्) दश अपराधों (अर्थात् १ साधुनिन्दा, २ शिव-रामभेद, ३ शास्त्रनिन्दा, ४ गुरु अनादर, ५ नाम की महिमा में तर्क वितर्क करना, ६ नाम को दूसरे कामों के करने का उपाय जनाना, ७ अभक्त को नाम का उपदेश, ८ नाममाहात्म्य सुन कर प्रसन्न न होना, ९ नाम जप के कामसिद्धि, १० नाम के बल से पापाचरण) से जो सहित हैं उन को नाम जप से उत्तम सुख नहीं मिलता॥९६॥

चारो चौदह अष्ट-दस रस समुझे भरि पूरि।
नाम भेद समझे बिना सकल समुझ महँ धूरि॥९७॥

(चारो) ऋग, यजुः, साम और अथर्व चारो वेद। (चौदह) ब्रह्म-ज्ञान, रसायन, राग, वेद, ज्योतिष, व्याकरण, धनुषविद्या, जलविद्या, पिङ्गल आदि छन्द, कोकसार, सालिहोत्र नृत्य, सामुद्रिक, और काव्य आदि बनाने में चतुरता ये चौदहो विद्या। मीन, भविष्यत्, वायु, वाराह, वामन, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, गरुड़, मार्कण्डेय, पद्म, विष्णु, नारदीय, लिङ्ग, ब्रह्मवैवर्त, अग्नि, कूर्म्म, स्कन्द और भागवत ये आठारहो पुराण और मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, साङ्ख्य, योग और वेदान्त ये छवो शास्त्रों को भली भाँत समझा अर्थात् वेदों के यज्ञ कर्मकाण्ड आदि सब विषय चौदहो विद्या की चातुरी और छवों दर्शनों की कल्पनाशक्ति और तर्क वितर्क करने की शक्ति आदि सब गुणों से भूषित हुआ तो भी नाम के भेद को बिना समझे उस का सब समझना व्यर्थ है क्योंकि सब वेद और विद्याओं का सारांश राम नाम है जिस के ग्रहण आदि से मुक्ति मिल सकती है।

चौथे सर्ग के आरम्भ में "चौदह चारि अठारहो" आदि पहले दोहे में चौदह बिद्या वेद और पुराण को गिना चुके हैं यहाँ चौदह विद्या से चौदह छोटी विद्या ली गईं "अङ्गानि" आदि स्लोक में कही चौदह विद्या नहीं बोधित हुईं।

इस दोहे को चतुर्थ सर्ग के प्रथम और पञ्चम सर्ग के भी प्रथम दोहों से मिला कर पढ़ना चाहिये जिस में इस दोहे और उन दोहों का परस्पर भेद समझ पड़े॥ ९७॥

बार दिवस निसि मास सित असित बरख परमान।
उत्तर दच्छिन आस रवि भेद सकल महँ जान॥९८॥

रवि, सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि ये सातो वार दिन और रात्रि, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रव, कुआर वा आश्विन, कार्तिक, अगहन, पौष, माघ, फाल्गुन ये बारह मास इन मासों के शुक्ल और कृष्ण पक्ष वर्ष (बारह महीनों का समय जिस में छ मास उत्तरायण और छ दक्षिणायन) में सूर्य जिस दिशा में रहते हैं वह अयन कहाती इस प्रकार सब वस्तुओं में भेद है। इन में भी कोई २ किसी २ काम के लिये शुभ कोई किसी के लिये अशुभ होते हैं।

यथा आदित्य सोम बुध बृहस्पति और शुक्र शुभ काम के लिये शुभ अशुभ के लिये अशुभ होते हैं मङ्गल और शनैश्चर अशुभ कार्य के लिये शुभ और शुभ के लिये अशुभ होते हैं। दिन को भले काम और रात को बुरे काम करने का समय है। अगहन फाल्गुन ज्येष्ठ और भाद्र शुभ और शेष अशुभ। शुक्ल पक्ष शुभ के लिये और कृष्ण अशुभ के लिये शुभ होते हैं। उत्तरायन शुभ काम के लिये और दक्षिणायन अशुभ काम को शुभ इत्यादि भेद सब पदार्थों में है॥ ९८॥

करम सुभा-ऽसुभ मित्र अरि रोदन हसन बखान।
और भेद अति अमित है कहँ लगि कहिय प्रमान॥९९॥

कर्म शुभ अशुभ के भेद से दो प्रकार के होते हैं शुभ कर्म मित्र है और अशुभ शत्रु होता है शुभ करने हारे सुख पा कर

हसते हैं और अशुभ कर्म के कर्ता दुख पा कर रोते हैं। कर्मों के और भी असङ्ख्य भेद हैं इन के प्रमाणों को मैं कहाँ तक वर्णन करूँ॥

कोई २ टीकाकार अर्थ करते हैं कि कर्म शुभ और अशुभ उन में शुभ कर्म दो प्रकार के हैं एक सकाम दूसरा निःकाम। निःकाम कर्म अति उत्तम है कर्ता कर्म कर के परमेश्वर को अर्पण कर दे और उस से किसी फल की वासना न रक्खे तो कर्म करने से कर्ता बद्ध नहीं होता। सकाम कर्म भी यदि श्रीरामचन्द्र की प्रसन्नता के लिये किया जाय तो उस का भी फल उत्तम ही होता है। मित्र और शत्रु में भी भेद है सज्जनों की मित्रता बड़ी सुखदाई और दुष्टों की दुखदाई होती है। रोने और हसने में भी भेद है। कोई रोना आनन्द से होता है जैसे पुत्र मित्र और स्त्री आदि के मिलन में अश्रुपात और रोमाञ्च होते हैं और इन्हीं के वियोग में दुखदाई अश्रुओं की धारा चलती है इस प्रकार सभी कामों में भेद होता है॥ ९९॥

जहँ लगि जन देखब सुनब समुझब कहब सु-रीत।
भेद बिना कछु है नहीं तुलसी बदहिँ बिनीत॥१००॥

अन्वय। जन देखब, सुनब, समुझब, कहब कछु जहँ लगि है भेद बिना नहिँ बिनीत तुलसी बदहिँ।

मनुष्यों का देखना, सुनना, समझना, कहना जो कुछ जहाँ तक है बिना भेद के कुछ भी नहीं है। नम्र तुलसी दास कहते हैं कि सब भेद युक्त है सब में कुछ न कुछ भेद है।

देखने में भेद यथा देवताओं का दर्शन पुन्यदाई और अपवित्र वस्तुओं का देखना वा परस्त्री को पापदृष्टि से देखना पापकारी होता है। वेद आदि का भक्ति से सुनना भला और ठट्ठा और द्वेष करने के लिये सुनना समझना बुरा है। भली बात को बुरी और बुरी को भली समझ लेना दुख सुख का कारण होता है। भली बात को भले मनोरथ से कहना और उसी को बुरी इच्छा से कहना वा शास्त्रादिक को अशुद्ध कहना दुखदाई शुद्ध सुखदाई होता है। इस प्रकार सब वस्तुओं में सुरीति और कुरीति हैं जिन में एक सुखदाई और दूसरी दुखदाई होती है मनुष्य को चाहिये कि सुखदाई रीत का ग्रहण करे जिस में सुखी बना रहे। यही गुसाईं जी का उपदेश है ॥ १०० ॥

भेद याहि बिधि नाम महँ बिनु गुरु जान न कोय।
तुलसी कहहिँ बिनीत बर जो बिरञ्चि सिव होय॥१०१॥

इति गोस्वामितुलसीदासकृत सप्तसतिकायां ज्ञानसिद्धान्त-
निरूपणन्नाम षष्ठः सर्गः ॥

अन्वय। बिनीत बर तुलसी याहि बिधि नाम मँह भेद कहहिँ जो बिरञ्चि सिव होय (तो भी) बिन गुरु कोय न जान।

इस प्रकार नम्रों में श्रेष्ठ तुलसी-दास नाम अर्थात् परमेश्वर के राम इस नाम में भेद कहते हैं जिन्हें यदि कोई ब्रह्मा और शिव के समान होय तो भी बिना गुरु के लखाये नहीं जान सकता अर्थात् गुरु का उपदेश भेदों को समझने के लिये अवश्य चाहिये ॥ १०१ ॥

॥०॥ इति विहारिकृत संक्षिप्तटीकायां षष्ठः सर्गः ॥०॥

अथ सप्तम सर्ग।

तिन हिँ पढ़े तिन हीँ सुने तिन हिँ सुमति-परगास।
जिन आसा पाछे करी गहि अवलम्ब निरास ॥ १ ॥

अन्वय। निरास अवलम्ब गहि जिन आसा पाछे करी तिन हिँ पढ़े तिन हिँ सुने तिन हिँ सुमति-परगास (भयो) ॥

जिस मनुष्य ने निराश हो केवल अपनी (अवलम्ब) आशा रख के (विषय सुख की) सब प्रकार की आशा को छोड़ दिया उसी ने पढ़ा उसी ने शास्त्र को सुना और उसी (के हृदय में) भले बुरे को विचारने की सुबुद्धि ऊई ॥

जिसने अच्छे २ लोगोँ से पढ़ सब धर्मशास्त्र पुराण आदि के उपदेशोँ को सुन कर भी विषय सुख की आशा को न छोड़ा वह व्यर्थ परिश्रम करनेवाला है, उस को उस के पढ़ने सुनने का कुछ भी फल न ऊआ।

द्वितीयार्थ और अन्वय। जिन निरास-अवलम्ब गहि आसा पाछे करी तिन हिँ पढ़ तिन हीँ सुने तिन हिँ सुमति-परगास (ऊआ)।

जिस मनुष्य ने (निरास) जिस को किसी की आशा नहीँ बरन जो आप ही सब की आशा का स्थान है उस परब्रह्म परमेश्वर की आशा (अर्थात्) भक्ति को दृढ़ता से पकड़ लिया और सब के आशा-भरोसे को त्याग कर दिया उसी ने सब शास्त्र पढ़ा सब बड़े ऋषियोँ

के उपदेश को सुना और उसी को (सुमति-परगास) उत्तम ज्ञान भी हुआ, क्योंकि रामायण में कहा है कि।

"आगम निगम पुरान अनेका।
पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पदपङ्कज प्रीत निरन्तर।
सब साधन कर यह फल सुन्दर"॥

सब पढ़ने लिखने का फल यही है कि परमेश्वर में भक्ति होवे। जब जिस के लिये लोग पढ़ते लिखते हैं वही न हुआ तो पढ़ना लिखना किस काम का?॥ १॥

तब लगि जोगी जगत-गुरु जब लगि रहै निरास।
जब आसा मन में जगी जग-गुरु जोगी दास॥ २॥

अन्वय। जब लगि निरास रहै तब लगि जोगी जगत गुरु (परन्तु) जब मन में आसा जगी (तब) जगत गुरु जोगी दास।

योगी जब तक विषय सुख वा धन आदि की आशा से दूर है अर्थात् उस के मन में किसी बात की चाह नहीं है तब तक सिद्ध जगत का गुरु (हित का उपदेश करनेवाला) वा (जगत गुरु) संसार से बड़ा है परन्तु जब विषय सुख वा धनलाभ आदि किसी विषय की आशा योगी के मन में उठी तो संसार अर्थात् संसारी मनुष्य ही गुरु "बाबाजी आप को लोभ न करना चाहिये इत्यादि कह के" उपदेश देनेवाला वा योगी के हित की बात कहने के

समय ज्ञानी होने के कारण योगी से भी श्रेष्ठ हुआ और योगी उस का दास हुआ।

अभिप्राय यह कि सब प्रकार के सुख को छोड़ कर एक परमेश्वर की चिन्ता में लगे हुये जन ऐसे योगी से जो गेरुआ धारण करने पर भी विषय के पीछे धौड़ा करता है बहुत अच्छे होते हैं। सब विषय त्याग ही योगी होने का फल है ॥ २ ॥

हित पुनीत स्वा-ऽरथ सबहिँ अहित असुचि बिनु चाड़।
निज मुख मानिक सम दसन भूमि परत भौ हाड़ ॥ ३ ॥

अन्वय। स्वा-ऽरथ असुचि अहित सब हिँ पूनीत हित बिनु चाड़ असुचि अहित, दसन निज मुख मानिक सम भूमि परत हाड़ भौ।

पहले के दो दोहोँ में संसारी विषयोँ में योगी को न लपटना चाहिये कह कर अब संसार के लोगोँ की स्वार्थ-परता आदि दिखा कर तीसरे दोहे में निराश रहने का कारण दिखाते हैं।

संसार की यह रीत है कि जब तक अपना प्रयोजन रहा तब तक अशुद्ध और अनुपकारी भी वस्तु पवित्र और हितकारी जान पड़ती है परन्तु (बिनु चाड़) प्रयोजन न रहने पर (असुचि अहित सुचि हित) अपवित्र अनुपकारी और पवित्र उपकारी जान पड़ती हैं। इस विषय में दृष्टान्त देते हैं कि दाँत जब तक मुख में रहता है लोग उसे मणि के समान जानते है परन्तु ज्योँ टूट कर भूमि पर गिरा लोग उसे हाड़ समझने लगे।

स्वारथी मनुष्योँ की दृष्टि अपने प्रयोजन पर अधिक रहती है

वस्तु के स्वाभाविक गुण दोष पर वे अल्प ध्यान देते हैं। इन्हीं कारणों से संसार में लिप्त होना और संसारी सुखों की आशा करना योगी के लिये उचित नहीं है ॥ ३ ॥

निज गुन घटत न नाग-नग हरखि परिहरत कोल।
गुञ्जा प्रभु भूखन करे ता तेँ बढ़इ न मोल ॥ ४ ॥

कोल नाग-नग हरखि परिहरत (ता तेँ) निज गुन घटत न प्रभु गुञ्जा भूखन करे (ता तेँ) मोल न बढ़इ ॥

अब यह शङ्का होती है कि यदि साधु संसार से कुछ भी सम्बन्ध न रक्खेगा तो कोई भी उस का आदर न करेगा, इस पर कहते हैं कि

कोल भिल्ल गजमुक्ता वा सर्पमणि को त्याग कर देते हैं अर्थात् जो पर्वत पर कोल के सन्मुख गजमुक्ता पड़ा रहता है परन्तु वह उस का गुण न जानने के कारण उसे नहीं उठाता प्रसन्नता से वहाँ छोड़ देता है, तो इस कारण मोती का मोल कुछ घट नहीं जाता। उसी रीत प्रभु श्रीकृष्ण भगवान ने घुँघुची को गहना के स्थान में धारण किया था इस से कुछ उस का मोल नहीं बढ़ गया। जो वस्तु स्वाभाविक जैसी है वह वैसी ही रहती है ॥

अभिप्राय यह कि साधु जन की उत्तमता जैसी की तैसी बनी रहेगी चाहे संसार के जन उन का आदर करेँ वा नहीँ ॥ जहाँ "हरखि न पहिरत" पाठ हो वहाँ आनन्द से नहीँ पहिनते ऐसा अर्थ करना चाहिये ॥ ४ ॥

देइ कुसुम करि बास तिल परिहरि खरि रस लेत।
स्वा-ऽरथ-हित भू-तल भरे मन मेचक तन सेत ॥ ५ ॥

अन्वय । (जन) कुसुम करि तिल बास देइ खरि परिहरि रस लेत भू-तल स्वा-ऽरथ-हित भरे (परन्तु) मन मेचक तन सेत ॥

यदि कहिये कि संसार में साधु के गुण को चाहे कोई समझे चाहे न समझे संसार में लीन रहने से साधु की कुछ हानि न होगी तिस पर कहते हैं कि संसार केवल स्वारथी है ॥

संसारी जीव (तेल बनानेहारे) पहले फूलों के द्वारा तिल को बास देते हैं जब उस में सुगन्ध भिन गया तो कोल्हू पर चढ़ा कर उसे पेर डालते हैं और उस में की खरी निकाल कर तेल को ले लेते हैं। संसार में ऐसे अपस्वार्थी लोग भरे हैं कि जिन का मन बड़ा मैला है परन्तु रूप सुन्दर देखने में स्वच्छ है ऐसे लोगों से दूर ही रहने में कुशल है जहाँ सुमन पाठ हो वहाँ भी यही अर्थ होगा ॥ ५ ॥

अँसुअन पथिक निरास तेँ तट भुइँ सजल सरूप ।
तुलसी किन बञ्चे नहीँ इन मरुथल के कूप ॥ ६ ॥

अन्वय । निरास पथिक अँसुअन तेँ तट भुइ सजल सरूप इन मरुथल के कूप (तुलसी) किन नहीँ बञ्चे ॥

जल पाने की अभिलाषा से समीप गये और जल न पाने के कारण निरास हुये पथिकों के आँसुओं से जिन के किनारे की भूमि जल के रूप देख पड़ती है ऐसे इन निर्जल स्थान (वा माड़वार देश) के कूपों ने तुलसी दास कहते हैं किन को नहीँ ठगा अर्थात् सभी को ठग लिया ।

माड़वार आदि निर्जल देशों में बड़े २ कूप देख पड़ते हैं परन्तु उन के भीतर पात्र डालने से पानी नहीं मिलता वहाँ जा कर निराश पथिक रोने लगते हैं और उन के नेत्र जल से कूओं के किनारे थोड़ा जल देख पड़ता है परन्तु भीतर खाली है। इन्ही कूपों के सदृश संसार के मनुष्य हैं कि ऊपर से देखने में बड़े अच्छे देख पड़ते हैं परन्तु भीतर मन में कपट भरे हैं। ऐसे लोगों को पहचानना बड़त कठिन है इस कारण इन से दूर ही रहना भला है।

द्वितीयार्थ। अन्वय। तट भूइँ सजल सरूप मरुथल के इन कूप किन बञ्चे नहीं ते पथिक अँसुअन निरास (भे)॥

(तट भूइँ) ऊपर की सोभा सुन्दर जल के रूपवाले इन विषय सुखरूपी मरुस्थल के कूपों ने किन्हे नही ठगा अर्थात् सभी को धोखा दिया क्योंकि वे पथिक जिन्हों ने इस विषय सुख को भला समझ कर सेवन किया अन्त में दुख पा कर निराश ड़ये और आँसू बहाया।

संसारी रूप रस आदि विषय कूप के समान हैं क्योंकि जिस प्रकार मरुस्थल के कूप के निकट पड़ँचने पर निर्जल देख के पथिक दुखी होते हैं वैसे ही अन्त में दुखदाई ये विषय सुख भी हैं। यदि संसार ही को कूप माने तो पुन्य भूमि होने के कारण सर्वथा संसार को मरुस्थल के कूप के समान नहीं कह सकते क्योंकि बड़े २ ऋषि-लोग भी संसार में आ कर पुन्य अर्जन करना चाहते हैं॥ ६॥

तुलसी मित्र महा सुख-द सब हिँ मित्र की·चाड़।
निकट भये बिलसत सकल एक छपा-कर छाड़॥ ७॥

छठे दोहे तक सत्सङ्गति और विशेष कर संसार के विषय और विषयी पुरुषोँ की सङ्गति का बर्णन कर के अब मित्रता का बर्णन प्रारम्भ करते हैँ॥

अर्थ। तुलसी दास जी कहते हैँ कि मित्र बड़ा सुख देनेहारा होता है और सब को मित्र बनाने की इच्छा रहती है और केवल (छपा, रात्रि कर) चन्द्रमा को छोड़ कर और सब लोग मित्र के निकट रहने से प्रसन्न होते हैँ। जब चन्द्रमा और सूर्य एक राशि पर आते हैँ तो चन्द्रमा की कला चीण हो जाती है इस कारण उस की अप्रसन्नता प्रगट होती है मित्र शब्द मेँ श्लेष है अर्थात् उस के अर्थ सखा और सूर्य दो हैँ॥

द्वितीयार्थ। तुलसी दास कहते हैँ कि (छपा रात मेँ है कर किरण वा हाथ जिस का अर्थात्) रात को काम करने हारोँ को छोड़ जितने लोग हैँ सब मित्र के निकट रहने से आनन्द करते और सुखी होते हैँ और सब को मित्र की आवश्यकता भी होती है परन्तु बुरे कर्म करनेहारे चोर और व्यभिचारी अपने कर्म को अपने भले मित्र के सन्मुख वा सूर्य के प्रकाश मेँ नहीँ कर सकते इस से रात ही उन को अच्छी लगती है कि अन्धकार मेँ अपना कार्य सिद्ध करेँ। जहाँ सुख-प पाठ हो वहाँ सुख पानेवाला अर्थ करना चाहिये॥७॥

मित्र-कोप बर-तर सुख-द अन-हित मृदुल कराल।
द्रुम-दल सिसिर सुखात सब सह निदाघ अति-लाल॥८॥

मित्र-कोप सुख-द बर-तर अन-हित मृदुल कराल सिसिर म-दलसुखात निदाघ सब अति-लाल।

मित्र का क्रोध हितकारी होने के कारण सुखदाई और अधिक प्यारा होता है परन्तु शत्रु का क्रोध कोमल वा थोड़ा भी हो तो भी बड़ा भयकारी है क्योंकि उस से बड़ी बुराई हो सकती है परन्तु मित्र के क्रोध से बुराई का डर नहीं रहता इस विषय में दृष्टान्त देते हैं कि हिम ऋतु में वृक्षों के पत्ते सूखते हैं परन्तु ग्रीष्म में उष्णता सह कर भी सुन्दर लाल लाल निकल आते हैं। यद्यपि माघ में शीत पड़ता है तो भी वृक्षों के लिये हित-कारी न होने के कारण पाले से सब बेलबूटे जलने लगते हैं और चैत्र में वसन्त ऋतु पाकर बैसाख जेठ में नये२ पतों से शोभित हो कर बड़े प्रसन्न से देख पड़ते हैं ॥ ८ ॥

खल नर गुन मानैं नहीं मेटहिं दाता-श्राप।
जिमि जल तुलसी देत रवि जलद करत तेहि लोप॥९॥

दुष्ट मनुष्य उपकार के गुन को नहीं मानते वरन दानी के प्रताप को क्षीण करते हैं इस विषय में कवि तुलसी-दास जी दृष्टान्त दिखाते हैं कि जैसे सूर्य अपने किरणों से मेघ के जल को बढ़ाते हैं और मेघ उन्हीं अपने सहायक का लोप करता है अर्थात् जब आकाश में मेघ अपनी घटा को फैलाता है तो सूर्य नारायण को छिपा देता है। सूर्य के प्रकाश को ऐसा ढाप लेता है कि अन्ध-कार हो आता है।

अभिप्राय यह कि दुष्टों के साथ भलाई करने से भी अपनी

बुराई होती है इस कारण दुर्जन को सर्वथा त्याग ही करना चाहिये ॥ ९ ॥

बरखत हरखत लोग सब करखत लखत न कोय।
तुलसी भूपति भानु-सम प्रजा-भाग-बस होय ॥१०॥

अब इस दोहे से राज-नीति का वर्णन करते हैं ॥

अन्वय। तुलसी बरखत सब लोग हरखत (परन्तु) करखत कोय न लखत प्रजा-भाग-वस भानु-सम भूपति होय।

तुलसी-दास कहते हैं कि जब सूर्य मेघों के द्वारा आकाश से पानी बरसाने लगते हैं तो मुसलधार वृष्टि को देख कर सब लोग बड़े प्रसन्न होते हैं परन्तु जब ग्रीष्म ऋतु में अपने प्रचण्ड घाम से अदृश्य वाष्प के द्वारा सब जल को सोख लेते हैं तो कोई नहीं देखता है तुलसी कहते हैं कि प्रजा के भाग्य से इसी प्रकार राजा सूर्य के समान होता है कि उस के किये प्रजा के उपकारी कामों को देख कर सब लोग प्रसन्न हों और जिस के ऊपर कोप करें उस के धन और सुख को ऐसी रीत हरण करे कि कोई यह न कह सके कि राजा ने अन्याय से यह काम किया वरन किसी को जान पड़े और किसी को जान भी न पड़े नहीं तो इस को अधिक दण्डदायी समझ के लोग भक्ति न करेंगे ॥ १० ॥

माली-भानु-कृसानु-सम नीति-निपुन महि-पाल।
प्रजा-भाग-बस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलि-काल ॥११॥

माली सूर्य और अग्नि के समान राज-नीति में निपुन राजा कलि-युग में प्रजा के भाग्य से किसी किसी समय में होंगे सब दिन इस प्रकार के राजाओं का होना अति कठिन है।

अभिप्राय यह कि जैसे माली समय पर अपने उद्यान में वृक्ष लगाता है और समय पर सींचता है और जब काटने छाँटने का काम पड़ता है तब काटता छाँटता है अपनी बाग को ऐसा ठीक रखता है कि अपने २ समय पर सब वृक्ष फलते फूलते हैं बेप्रयोजन कहीं घास पात काँटे झड़बेर नहीं लगने पाती इसी प्रकार राजा भी प्रजा का पालन पोषण रक्षा और दण्ड जिस समय जिस वस्तु की आवश्यकता देखता है उस समय वैसा करता है।

सूर्य के गुण को दशवें दोहे में कह चुके हैं।

अग्नि के समान तेजस्वी कि स्पर्श करने से जला डाले, सब लोग डरा करें, कोई मारे भय के पाप न कर सके और शत्रु समीप न आ-सकें। साम दान दण्ड भेद चारो उपायों से अपने शत्रु को वश में रक्खे। सूर्य के समान सब को निज निज काम में लगावे इत्यादि अनेक गुण राजा में होने चाहियें॥११॥

समय परे सु-पुरुख नरहिँ लघु करि गनिय न कोय।
नायक पीपर-बीज-सम बचै तो तरुवर होय॥१२॥

अन्वय। कोय समय परे सुपुरुख नरहिँ लघु करि न गनिय पीपर बीज सम नायक बचै तो तरुवर होय।

किसी मनुष्य को ऐसा न चाहिये कि बिपत्ति पड़ने पर भी

उत्तम वंशीय मनुष्य को छोटा समझे क्योंकि वह पुरुष पीपर को बीये के समान छोटा भी आपत्ति से बचने पर बड़े वृक्ष के समान हो सकता है।

अभिप्राय यह कि भले लोग बिपत के कारण हीन अवस्था में भी रहैं तो भी उन को छोटा न समझना चाहिये क्योंकि आपद से छूटने पर फिर भी वे बड़े हो जाते हैं इस पर दृष्टान्त दिया है कि जैसे पीपर को बीया बचते २ बची और उस में से अङ्कुर निकला तो उस से बड़ा भारी वृक्ष उत्पन्न होता है।

जहाँ "सुपुरुष नरन" और "नाजुक" पाठ हो वहाँ अच्छे लोगों की ओर बहुत छोटा अर्थ करना चाहिये॥ १२॥

बड़े राम-रत जगत मैं कै पर-हित चित जाहि।
प्रेम-पयज निबही जिन्हे बड़ो सो सब ही चाहि॥१३॥

जगत मैं राम-रत बड़े कै जाहि चित पर-हित (बड़े) प्रेम-पयज जिन्हैं निबही वड़ो सो सब ही चाहि।

संसार में राम के भक्त बड़े हैं अथवा जिस के मन में दूसरे की भलाई रहती है वे बड़े हैं परन्तु जिन की प्रेम की टेक निबही जाती है अर्थात् सदा राम के भक्ति में लौलीन रहते हैं और उन की प्रतिज्ञा पूरी होती है उन को सब से बड़ा मानना चाहिए।

अभिप्राय यह कि इस जगत में सब से उत्तम काम रामचन्द्र की

आराधना है और उसी के कुछ २ समान परोपकार भी है परन्तु प्रह्लाद के समान दृढ़ प्रतिज्ञा कर के परमेश्वर की भक्ति करना और संसार के सब कामों से इस काम को उत्तम समझना सब बातों से उत्तम गिना जाता है प्रह्लाद के समान दृढ़ भक्त ईश्वर को अत्यन्त प्यारे हैं॥ १३ ॥

तुलसी सन्तन तें सुने सन्तत यहै बिचार।
तन-धन चञ्चल अचल जग जुग जुग पर-उपकार॥१४॥

तुलसी सन्तन तें यहै बिचार सन्तत सुने जग जुग जुग तन-धन चञ्चल पर-उपकार अचल।

तुलसी-दास कहते है कि मैंने साधुओं से सदा यही बिचार सुना है कि प्रत्येक युग में शरीर और ऐश्वर्य अस्थिर हैं परन्तु दूसरों की भलाई करना स्थिर रहता है।

अभिप्राय यह कि स्त्री पुत्र, भाई बंधु, मित्र संगी, घर द्वार, हाथी घोड़ा, गहना कपड़ा, राज पाट जितने पदार्थ हैं सब थोड़े दिन में छूट जाते हैं कोई भी इस जीव के साथ नहीं जाता जब तक इन वस्तुओं के साथ इस जीव का सम्बन्ध है तभी तक ये सब उस के कहाते हैं परन्तु दूसरे की भलाई करने का यश जीव के न रहने पर भी बहुत दिन तक जगत में रह जाता है।

शिवि दधीचि हरिचन्द कहानी
एक एक सन कहहिं बखानी।

राजा शिवि हरिश्चन्द्र और दधीचि आदि बहुत दिन पहले इस संसार से उठ गये परन्तु उन के सुयश की कथा आज तक लोग कहते सुनते हैं॥ १४॥

ऊँचहिँ आपद बिभव बर नीचहिँ दत्त न होइ।
हानि ब्रिद्धि द्विज-राज कहँ नहिँ तारा-गन कोइ॥१५॥

ऊँचहिँ आपद नीचहिँ दत्त बिभव बर न होइ द्विज-राज कहँ हानि-ब्रिद्धि कोइ तारा-गन नहिँ।

बड़े लोगोँ की विपत्ति छोटे लोगोँ के दिये हुए ऐश्वर्य से दूर नहीँ होती चन्द्रमा के कृष्ण पक्ष में घटने और शुक्ल पक्ष में बढ़ने को कोई तारा बढ़ा नहीँ सकता।

द्वितीय अर्थ।

बड़े लोगोँ की बिपत्ति और सम्पत्ति छोटोँ को नहीँ मिलती अर्थात् यदि कोई छोटा बड़े के साथ रहे और बड़े के ऊपर कोई दुख आ पड़े तो छोटे को नहीँ लग सकता इस में दृष्टान्त देते हैं जैसे चन्द्रमा का शुक्ल-पक्ष में बढ़ना और कृष्ण-पक्ष में घटना तारा-गणोँ के विषय में सुखदाइ और दुखदाइ नहीँ होता अर्थात् चन्द्रमा के तेज की घटती बढ़ती से तारोँ के तेज की घटती बढ़ती नहीँ होती।

अभिप्राय यह कि बड़ोँ की संगत सदा करना चाहिए यह न डरना चाहिये कि उन के दुख सुख का धक्का मुझे लगेगा। बड़ोँ का दुख सुख छोटोँ से सम्हाला नहीँ जा सकता है बरन छोटोँ के दुख सुख

को बड़े लोग बैहज में घटा बढ़ा सकते हैं इस कारण सदा बड़ों की सङ्गति करनी चाहिए ॥ १५ ॥

**बड़े रतहिँ लघु के गुनहिँ तुलसी लघुहिँ न हेतु।
गुञ्जा तेँ मुक्ता अरुन गुञ्जा होत न स्वेत ॥ १६ ॥**

तुलसी लघु के गुनहिँ बड़े रतहिँ लघुहिँ हेत न मुक्ता गुञ्जा तेँ अरुन (होत) (परन्तु) गुञ्जा स्वेत न होत ॥

तुलसी-दास कहते हैं कि छोटोँ के गुणों से बड़े रङ्गे जाते हैं वा (रतहिँ) तत्पर होते हैं परन्तु छोटों में कुछ बड़ोँ के गुण के कारण अदल बदल नहीँ होता इस बात पर दृष्टान्त देते हैं कि मोती करजनी के साथ रख दीजिये तो गुञ्जा के रङ्ग से लाल हो जाता है परन्तु करजनी मोती के रङ्ग से उजला नहीँ होता। यहाँ मोती का दृष्टान्त दिखला कर बड़ों का छोटोँ के गुणोँ से लिप्त हो जाना प्रमाणित किया परन्तु करजनी के दृष्टान्त से छोटोँ का बड़ों के गुणें से न बदलना देखा कर प्रमाणित किया कि बड़ोँ के साथ से छोटों की कुछ भी हानि नहीँ होती चाहे बड़ोँ की कुछ हानि हो तो हो इस कारण छोटोँ को सदा बड़ोँ का सङ्ग करना चाहिये ॥ १६ ॥

**होहिँ बड़े लघु समय सह तौ लघु सकहिँ न काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो तऊ नखत तेँ बाढ़ि ॥१७॥**

(समय सह बड़े लघु होहि तौ लघु काढ़ि न सकहिँ)।

कुसमय आ जाने से बड़े लोग छोटे हो जाते हैं तौ भी छोटा बड़े की विपत्ति को दूर नहीं कर सकता है।

(दूबरो कूबरो चन्द्र तऊ नखत तें बाढ़ि)

द्वितीया का चन्द्रमा बहुत पतला और टेढ़ा होता है तौ भी नक्षत्र से अधिक है।

अभिप्राय यह कि कृष्ण-पक्ष-रूपी समय के अधीन हो कर चन्द्रमा बहुत कृश और वक्र हो जाता है परन्तु उस की महिमा कुछ कम नहीं होती और नक्षत्रों से कहीं बढ़ कर उस की प्रतिष्ठा समझी जाती है चन्द्र के उसी आकार को भगवान चन्द्रशेखर ने अपने शिर का भूषन बनाया है।

पन्द्रहवें दोहे से ले कर सत्रहवें तक बड़ों और छोटों के परस्पर सङ्ग का दृष्टान्त के सहित वर्णन है। इन दोहों में अन्योक्ति अलङ्कार मान कर यह उपदेश निकालना चाहिये कि छोटे लोगों के लिये बड़ों के साथ रहना सदा लाभदायक और उपकारी होता है। "सेवितव्यो महावृक्षः फलच्छायासमन्वितः। यदि दैवात् फलं न स्यात् छाया केन निवार्य्यते ॥ १७ ॥

उरग तुरग नारी नृपति नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित इन्हहिं न पलटत बार ॥१८॥

तुलसी-दास कहते हैं कि साँप, घोड़ा, स्त्री, राजा, छोटे जन और हथियार इन सब वस्तुओं को सदा देखना चाहिये क्योंकि इन के उलट जाने में देरी नहीं लगती।

अभिप्राय यह कि साँप उलट कर तुरन्त काट खाता है घोड़ा सवार को गिराता है स्त्री नीचा देखाती है राजा दण्ड देता है छोटे मनुष्य विश्वासघात आदि करते हैं और हथियार अपने शरीर ही को काट डालता है इस कारण मनुष्य को चाहिये कि पूर्वोक्त वस्तुओं से सदा सचेत रहे क्योंकि इन के बिगड़ते देर नहीं लगती।

द्वितीयार्थ। उरग अर्थात् हृदय में शीघ्र पसरनेवाला मोह, तुरग शीघ्र चलनेवाला मन, नारी स्त्रीलिङ्ग बुद्धि जिस के भ्रष्ट हो जाने से मनुष्य का तुरन्त नाश हो सकता है, नृपति राजा सर्व ऐश्वर्य-युक्त परमात्मा जिस के विरुद्ध होने से प्रलय हो सकता है, नीचो नर छोटा मनोरथ जिस के होने से मनुष्य नाना दुःख में पड़ते हैं और हथियार सत्य शील सन्तोष दया आदि जिन के द्वारा मनुष्य पाप को मार कर मुक्ति को पा सकता है इन सब वस्तुओं को सदा देख के करना चाहिये क्योंकि इन के बदल जाने में कुछ भी देर नहीं लगती। यह अर्थ लक्षणा द्वारा निकल सकता है ॥ १८ ॥

दुरजन आपु समान करि को राखइ हित-लागि।
तपत तोय सह जाहि पुनि पलटि बुतावत आगि॥१९॥

को आप समान करि हित लागि दुरजन राखइ, पुनि तोय जाहि सह तपत (ताहि) आगि पलटि बुतावत ॥

कौन अपने समान कर के भलाई की इच्छा से दुष्ट को अपने पास रख सकता है? अर्थात् कोई नहीं रख सकता है क्योंकि

जल जिस के योग से गर्म होता है फिर उलट के उसी आग को बुझा देता है॥

इस दोहे में दृष्टान्त के द्वारा यह देखलाया कि दुष्टों के सङ्ग से कभी किसी की भलाई नहीं हो सकती। चाहे कोई कैसे भी प्यार से दुष्टों को रक्खे और अपने साथ अपने समान पालन पोषण करे परन्तु वह अपने हितकारकों के साथ अवश्य ही बुराई करता है उक्त दृष्टान्त में जिस आग के साथ से जल उष्ण होता है उसी को बुझा कर राख बना देता है। मनुष्य को चाहिये कि दुष्टों का साथ कभी न करैं नहीं तो अवश्य दुःख भोगना पड़ेगा॥ १९॥

मन्त्र तन्त्र तन्त्री त्रिया पुरुख अस्त्र धन पाठ।
प्रति गुन जोग बियोग तें तुरत जाहिं ये आठ॥२०॥

मन्त्र, तन्त्र, तन्त्री, त्रिया, पुरुख, अस्त्र, धन, पाठ ये आठ जोग प्रति गुन बियोग तें तुरत जाहिं॥

(नमः शिवाय) आदि मन्त्र, विशेष विशेष नक्षत्र और मुहूर्तों में विशेष विशेष वस्तुओं को ला कर शास्त्र में लिखे उपाय से उन के द्वारा अपने काम को सिद्ध करना तन्त्र, तन्त्री बीणा वा सितार आदि, स्त्री, पुरुष, हथिआर, धन अर्थात् सोना चाँदी, पाठ अर्थात् व्याकरण आदि का पढ़ना ये आठ पदार्थ सदा साथ रखने से अधिक गुणयुक्त होते हैं और छोड़ देने से तुरन्त नष्ट हो जाते हैं॥

अभिप्राय यह है कि मन्त्र सर्वदा जपने से, तन्त्र आराधना करने से, वीणा बजाया करने से, स्त्री अपने साथ रखने से, पुरुष सेवा करने से, हथिआर सर्वदा अपने पास रखने से, धन भी पास रखने से, पाठ सदा पढ़ा करने से स्मरण रहता है और सब भी ऊपर कहे हुए प्रकार से बढ़ते हैं, परन्तु यदि मन्त्र का जपना छोड़ दीजिये तो उस में कुछ सिद्धि नहीं रहती, तन्त्र भी छोड़ने से निष्फल हो जाता है, स्त्री विगड़ जाती है, वीणा का बजाना भूल जाता है, पुरुष की प्रीति कम हो जाती है, हथिआर खराब हो जाता है वा दूसरा कोई ले लेता है, धन चोरी हो जाता है और पाठ भूल जाता है, कहावत प्रसिद्ध है कि "पर हथ विद्या पर हथ धन, न वह विद्या न वह धन" ॥ २० ॥

नीच निचाई नहिँ तजइ जउ पावहि सत-सङ्ग।
तुलसी चन्दन बिटप बसि बिनु बिख भइ न भुअङ्ग ॥२१॥

नीच जो सत-सङ्ग पावे (तऊ) निचाई नहिँ तजै तुलसी चन्दन बिटप बसि भुअङ्ग बिन बिख न भे (भये) ॥

नीचों को सत-सङ्ग मिले तो भी निचाई नहीं छोड़ते, तुलसी-दास कहते हैं कि चन्दन के वृक्ष पर रह कर भी साँप विष-हीन नहीं हुए ॥

इस दोहे में शीतल और सुगन्ध आदि उत्तम गुण-युक्त चन्दन के साथ बहुत दिन रह कर भी सर्प के विषहीन न होने के दृष्टान्त को देखला कर, दुर्जनों का सन्तो के साथ रहकर भी जैसे का तैसा

बना रहना प्रमाणित किया। इस से यह बात सिद्ध हुई कि दुष्टों के सुभाव का बदलना बहुत कठिन है। इस दोहे में सङ्गी के गुण को न ग्रहण करने के कारण अतद्गुण* अलङ्कार हुआ॥ २१॥

दुरजन दरपन सम सदा करि देखो हिय दैार।
सन्मुख की गति और है विमुख भये कछु और॥२२॥

हिय दौर करि देखो दुरजन सदा दरपन सम, सन्मुख की और गति विमुख भये कछु और गति है॥

मन में विचार कर के देखो तो दुष्ट मनुष्य की गति दर्पण के समान है जो सामने देखने से कुछ और ही प्रकार का और पीछे देखने से दूसरे प्रकार का देख पड़ता है॥

दर्पण के सन्मुख अपना मुख ले जाने से ठीक२ जैसी मुख की आकृति हो वैसी ही देख पड़ती है परन्तु उस के सामने से अलग होने पर कुछ भी नहीं देख पड़ता, यही दशा दुष्टों की है, जब तक अपने सामने हैं तब तक मीठी२ बातें बना कर मन मोहित कर लेते हैं परन्तु आड़ में गये तो कुछ भी स्नेह न रहा, बरन और भी निन्दा करते हैं। इस दोहे में दर्पण के दृष्टान्त से दुष्टों की दुष्टता दिखलाई गई जिस से यह बात सिद्ध हुई कि सामने दुष्ट लोग चाहें जितना प्रेम दिखलावें परन्तु विश्वास के योग्य नहीं हैं॥ २२॥

मित्र क अवगुन मित्र जो पर पहँ भाखत नाहिँ।
कूप छाहँ जिमि आपनी राखत आपुहिँ माहिँ॥२३॥

---

* "बिहारी तुलसीभूषण बोध" ४३वाँ दोहा देखो।

जो मित्र कैा अवगुन पर पहँ नाहिँ भाखत जिमि कूप आपनी छाहँ आपुहिँ माहिँ राखत ॥

२१ वें दोहे तक दुर्जनों की यह पहचान दिखला कर २३ वें से मित्र के पहचानने की रीत देखलाते हैं ॥

जो पुरुष अपने मित्र के अवगुण को दुसरों से नहीं कहता वही सच्चा मित्र है जैसे कूँआ अपनी छाया को अपने ही भीतर रखता है।

यहाँ कूआँ और छाया के दृष्टान्त से छाया रूप अपने, मित्र के दोषों को अपने पेट ही में रख छोड़े किसी से न कहे, अपने मित्र को सुमार्ग पर चलावे, उस के गुणों को सब स्थानों में फैलावे, उस के सुख को बढ़ावे और सदा हेलमेल रक्खे तो मित्र जानिये ॥ २३ ॥

तुलसी सो समरथ सु-मति सु-क्रिती साधु सु-जान।
सो विचारि बेओहरत जग खरच लाभ अनुमान॥२४॥

अन्वय। तुलसी जग सो समरथ सु-मती सु-क्रिती साधु और सु-जान जो लाभ अनुमान विचारि खरच बेओहरत ॥

तुलसी-दास कहते हैं कि संसार में वही मनुष्य शक्तिमान बुद्धिमान पुन्यवान सज्जन और विद्वान बना रहता है जो अपने आय (आमदनी) को समझ कर बिचार पूर्वक खर्च का बरताव करता है ॥

अभिप्राय यह कि मनुष्य को सदा अपनी आमदनी बिचार कर खर्च करना चाहिये जिस में वह दुःख न पावे, जो लोग बिना समझे

बूझे आमदनी से अधिक खर्च कर बैठते हैं वे पीछे से पछताते और बिपत भोगते हैं क्योंकि विशेष कर उन्हें ऋण ले कर वा किसी और बुरी उपाय से धन प्राप्त करना पड़ता है जिस के कारण उन्हें यहाँ वहाँ दोनों स्थानों में दुःख भोगना पड़ता है॥

लिखा है—कि "इदमेव हि पाण्डित्यं इयमेव विदग्धता।
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्ययः"॥

"यही पण्डिताई है यही चतुराई और यही परम धर्म है कि आय से व्यय अधिक न होने पावे"॥ २४॥

सिख्य सखा सेवक सचिव सु-तिय सिखावन साँच।
सुनि करिये पुनि परिहरिय पर-मन-रञ्जन पाँच॥२५॥

अन्वय। सिख्य सखा सेवक सचिव सु-तिय पर-मन-रञ्जन पाँच सिखावन साँच सुनि करिये पुनि (झूठ) परिहरिय॥

चेला मित्र चाकर वा दास और मन्त्री पतिव्रता स्त्री ये पाँचो अत्यन्त चित्त को प्रसन्न करने वाले हैं इन की दी हुई शिक्षा को सुनना चाहिये और जो सत्य हो तो करना भी चाहिये और झूठ हो तो छोड़ देना चाहिये॥

इस में पर-मन-रञ्जन शब्द को यदि शिखावन का विशेषण मानिये तो इन की शिक्षा पर दुसरे अर्थात् शिष्य की शिक्षा गुरु, मित्र की मित्र, मन्त्री की राजा, सेवक की स्वामी और स्त्री की पति के लिये अत्यन्त मनोहर होती है इस लिये उन शिक्षाओं को अवश्य सुनना चाहिये, ऐसा अर्थ करना उत्तम होगा॥ २५॥

तुष्टहिँ निज रुचि काज करि रुष्टहिँ काज बिगारि।
तिया तनय सेवक सखा मन के कण्टक चारि ॥२६॥

तिया तनय सेवक सखा निज रुचि काज करि तुष्टहिँ (अन्यथा) रुष्टहिँ काज बिगारि (अतएव) ये चारि मन के कण्टक (हैँ) ॥

स्त्री पुत्र सेवक मन्त्री वा मित्र अपनी इच्छा के अनुसार काम करने से सन्तुष्ट होते हैँ और इच्छा के विरुद्ध काज करने से क्रोधित हो कर काम विगाड़ देते हैँ इस से ये मनुष्योँ के मन मेँ काटे के समान गड़नेवाले हैँ ॥

इस कारण इन की इच्छा के विरुद्ध काम करने से ये अपने प्रभु के काम ही को विगाड़ देते हैँ तब प्रभु के मन मेँ दुःख उत्पन्न कराते हैँ इस कारण प्रभु को उन के रुचि के विरुद्ध अच्छा भी काम करने मेँ सङ्कोच होता है। स्वामी को चाहिये कि इन चारो को इस प्रकार अपनी बश मेँ रक्खे कि अपने प्रभु से क्रोद्धित न हो कर प्रेम के साथ काम किया करेँ॥ २६ ॥

नारि नगर भोजन सचिव सेवक सखा अगार।
सरस परिहरे रङ्ग रस निरस बिखाद बिकार ॥२७॥

अन्वय। नारि नगर भोजन सचिव सेवक सखा अगार रङ्ग रस परिहरे सरस (अन्यथा) निरस बिखाद बिकार ॥

स्त्री, पुर, खानपान, मन्त्री, चाकर, मित्र और घर इन सातोँ के साथ प्रीति और आनन्द को बीच मेँ छोड़ देने से ये सब अधिक

रस देने वाले होते हैं। नहीं तो अधिक सहवास से रस-हीन हो कर और दुःख और झगड़े को बढ़ाते हैं॥

अभिप्राय यह है कि सदा स्त्री के साथ रहने से प्रीति घटती है कैसा भी सुन्दर नगर हो सदा उस में वास करने से उस की शोभा फीकी पड़ जाती है। एक ही प्रकार का भोजन सदा करने से चाहे वह कैसा भी उत्तम हो परन्तु निःस्वाद हो जाता है, मन्त्री नौकर और मित्र सदा पास रखने से ढीठे और आज्ञा के भङ्ग करनेवाले हो जाते हैं और प्रभु में इन का प्रेम भी घट जाता है इस कारण राजनीति इन के सदा साथ को मना करती है। कैसा भी उत्तम घर क्यों न हो जो लोग उस में सदा रहते हैं उन की दृष्टि में उस की शोभा वैसी मनोहर नहीं बुझाती जैसी उन की दृष्ट में जान पड़ती है जो लोग थोड़े काल के लिये उस घर वा स्थान में आते हैं। इसी कारण महाराजों के यहाँ अनेक घर अनेक मन्त्री अनेक विवाहिता स्त्री अनेक नगर अनेक प्रकार के भोजन अनेक प्रकार के नौकर आदि रहते हैं जिस में सब लोगों की प्रीति बढ़ती रहे॥

इसी सर्ग के बीसवें दोहे में कह चुके हैं कि स्त्री आदि बियोग से नष्ट हो जाती हैं और यहाँ कहते हैं कि सदा साथ से प्रीति घटती है तो इस में विरोध जान पड़ता है परन्तु इस के ठीक ठीक अभिप्राय को सोचने से कुछ भी विरोध नहीं है। उस दोहे का अभिप्राय यह है कि बहुत दिनों तक त्याग कर देने से स्त्री आदि नष्ट हो जाती हैं परन्तु इस का यह अभिप्राय है कि थोड़े दिन

के लिये त्याग करना चाहिये और इन के साथ अत्यन्त संयोग न रखना चाहिये ॥ २७ ॥

दीरघ-रोगी दारदी कटु-बच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान जो तुरित त्यागिबे जोग ॥ २८ ॥

तुलसी दीरघ-रोगी दारदी कटु-बच लोलुप लोग जो प्रान समान (तो भी) तुरत त्यागिबे जोग ॥

बहुत दिन का रोगी और अत्यन्त दुःखी (करम जरू) कटुभाषी (कड़ा बोलनेवाला) अत्यन्त कामी ये लोग यदि प्राण के समान प्यारे हों तो भी तुरन्त त्याग करने के योग्य हैं।

अभिप्राय यह कि सङ्ग में रहने से अपने दुःख वा दुर्गुण से अपने सङ्गी को भी दुःखी करते हैं इस लिये इन का त्याग तुरन्त ही उचित है ॥ २८ ॥

घाव लगे लोहा ललकि खैंचिब लेइब नीच।
समरथ पापी सोँ बयर तीनि बेसाही मीच ॥ २९ ॥

घाव लगे ललकि लोहा खैंचि लेइब समरथ नीच पापी सोँ बैर तीन मीच बेसाही ॥

जिस के शरीर में घाव लगो हो अर्थात् घायल, लड़ाई के लिये तैयार हो कर लहलहा के धनुष वा तरवार खींचने के लिये तैयार, बलवान् पाप-करनेवाला, वा बड़ी शक्तिवाले दया-हीन से बैर करनेवाले इन तीन प्रकार के मनुष्यों ने अपनी मृत्यु मोल ली।

अभिप्राय यह कि ये तीन मनुष्य अपनी मृत्यु को हाथ में लिये

रहते हैं, घायल मनुष्य थोड़ी घाव लगने से तुरन्त मर जाता है, युद्ध के लिये तैयार पुरुष अपने शत्रु से एक प्रहार पाने पर तुरन्त मर जाता है और दया-हीन नीच पापी बलवान् तुरन्त पाप कर के अपने को नष्ट कर सकता है।

अथवा (तीनि बैर मीच बेसाही) इन तीनों से शत्रुता करनेवाले लोग अपने और उस के दोनों के मृत्यु को मोल लेते हैं अर्थात् लड़नेवाले और शक्तिमान् से जो लोग शत्रुता करते हैं उन्हें ये तुरन्त जम-धाम को पठा सकते हैं घायल तो अधमरे के समान रहते हैं उन को प्राण लेते देते विलम्ब नहीं लगता॥२९॥

तुलसी स्वा-ऽरथ सामुहे परमा-ऽरथ तन पीठ ।
अन्ध कहे दुख पाव को हि दिठिआरे हिय-दीठ॥३०॥

स्वा-ऽरथ सामुहे परमा-ऽरथ पीठि हिय-दीठि अन्ध के कहे हि दिठिआरे दुख पाव॥

अपने संसारी विषय सुख की ओर देखते हुये और ज्ञान वैराग्य ईश्वर-भक्ति आदि परमा-ऽर्थ को विसरा देनेवाले, अपने हृदय में ज्ञान रखनेहारे, अन्धेके कहने से ज्ञानी भी (अवश्य) दुःख पाते हैं। अर्थात् ऐसे संसारी विषय में आसक्त चतुर ज्ञान के अभिमानी पुरुष के उपदेश से दुःख होना सुलभ है। जो लोग आप ही संसार-सागर में डूबे हैं वे दूसरों का किस प्रकार उद्धार कर सकते हैं॥

"जहाँ अन्ध कहे दुख पावक हिँ" पाठ हो वहाँ (हि) निश्चय कर (दुख पावक) दुःखरूपी आग अन्धे के कहने से चलने वालों के लिये प्रगट होती है ऐसा अर्थ करना चाहिये॥ ३०॥

अन-समुझे नय सोच बर अवसि समुझिये आप।
तुलसी आपन समुझ बिनु पल पल पर परिताप॥३१॥

अन्वय। नय अन-समुझे बर सोच आप अवसि समुझिये, तुलसी आपन समुझ बिनु पल पल पर परिताप।

कहते हैं कि नीति को बिना समुझे काम करनेवाले मनुष्य को बड़ा दुःख होता है इस कारण आप नीति को अवश्य समझ कर काम करना चाहिये, तुलसी-दास कहते हैं कि अपनी समझ के बिना प्रत्येक चण में दुःख हुआ करता है।

अभिप्राय यह कि संसार के सब कामोँ को भली भाँत समझ के और उन के करने के लिये जो नीति की बातेँ शास्त्र मेँ कही हैँ उन के अभिप्राय को भी भली भाँत बिचार के काम करना उचित है जो कोई ऐसा नहीँ करता उस के दुःख का अन्त नहीँ होता॥३१॥

कूप खनहिँ मन्दिर जरत लावहिँ धारि बबूर।
बोये लन-चह समै बिनु कुमति-सिरोमनि कूर॥३२॥

कुमति-सिरो-मनि कूर मन्दिर जरत कूप खनहिँ बबूर धारि लावहिँ समय बिन बोये लन-चह॥

(३१) एकतिस के दोहे तक सुनीति के उपदेशोँ को कह कर अब बत्तिस के दोहे से कुनीति का वर्णन करते हैँ॥

अज्ञानियोँ मेँ बड़े और निर्दयी लोग जिस समय घर मेँ आग लगती है उस समय उसे बुझाने के लिये कूआँ खोदते हैँ और

बबूर की पाँती को रोपते हैं और समय नहीं आया बीच ही में बोये ऊये अनाज को काटना चाहते हैं ।

अभिप्राय यह कि कुबुद्धि और दुर्नीतिवाले मनुष्य जब विपत्ति आन पड़ती है तब उस को दूर करने का उपाय करते हैं अथवा जब गाढ़ी विपत्ति उन्हें ग्रास करती है तब उस से छूटने के लिये तड़फड़ाने लगते हैं काँटेवाले बबूर वा शत्रुओं के समूह को बढ़ाते जाते हैं प्रारम्भ किये ऊये काम की सिद्धि कार्य के अन्त के होने के पहिले ही चाहते हैं अथवा (बिन समय बोये लन चह) कुसमय में बोये ऊये अन्न को लवना वा कुसमय लिये ऊए कार्य के फल को पाना चाहते हैं ये बातें असम्भव हैं ॥ ३२ ॥

निडर अनय करि अन-कुसल बीस-बाहु सम होय ।
गयो गयो कह सुमति जन भयो कुमति कह कोय॥३३॥

निडर अनय करि बीस-बाऊ सम होय, सुमति जन गयो गयो कह कोय कुमति भयो कह ॥

ईश्वर वा राजा से न डर कर पर-द्रव्य पर-स्त्री हरन आदि अनीत के कामों को करनेवाले निर्बुद्धि मनुष्य रावन के समान नष्ट हो जाते हैं बुद्धिमान लोग नष्ट ऊआ नष्ट ऊआ ऐसा कहते हैं परन्तु कोई कोई उसी के समान अबुद्धिमान कार्य सिद्ध ऊआ ऐसा कहते हैं ॥

अभिप्राय यह कि जो कोई किसी का भय न मान कर कोई बुरा काम करेगा वह चाहे राक्षसाधीश रावण के समान बीस-बाऊ

बाला भी हो तौ भी बच नहीं सकता और दूसरे को कौन चलाता है सब बुद्धिमान लोग उस के नाश के विषय में निश्चय रखते हैं पर उसी के समान केवल दो एक निर्बुद्धि उस को भलाई का बिश्वास करते हैं ॥ ३३ ॥

बहु सुत बहु रुचि बहु बचन बहु अचार बेओहार।
इन को भलो मनाइबो यह अग्यान अपार ॥ ३४ ॥

(जा के) बहु सुत बहु रुचि बहु बचन बहु अचार बेओहार, इन को भलो मनाइबो अपार अज्ञान (है)।

जिन के बहुतेरे बेटे हैं, अनेक प्रकार के कामों में प्रीति है अनेक प्रकार की बात बोलते हैं बहुत से आचारों को करते हैं और अनेक प्रकार का व्यवहार चलाते हैं ऐसे लोगों का भला मनाना अर्थात् सब कामों में भलाई की इच्छा करना बड़े भारी अज्ञान की बात है ॥

अभिप्राय यह कि बहुत से पुत्रों के पिता के घर में कभी न कभी झगड़ा अवश्य होगी। जिन को अनेक प्रकार के कामों को करने की इच्छा है चाहे खाने पीने की हो, चाहे पहनने ओढ़ने की हो सब बात की इच्छाओं का पूरा होना बहुत कठिन है। जो लोग बहुत प्रकार की बातें बोलते हैं सभों का सच होना बहुत कठिन है, जो बहुत प्रकार के आचार से चलते हैं उन के किसी न किसी आचार मे कुछ न कुछ बिकार होना अवश्य ही है, जो लोग बहुत भाँति के व्यवहार में लगे रहते हैं सब में सिद्धि होना असम्भव है इस कारण

तुलसी-दास जी कहते हैं कि ऐसे लोगों का अपने सब कामों में सफल होना असम्भव है, जो कोई सब की सफलता का मनोरथ करै वह केवल अज्ञानी है एक प्रकार के काम की सिद्धि भी बड़े पुन्य से होती है और सब की कौन कहे। इस कारण सब काम में परिमित आचरण करना उत्तम है ॥ ३४॥

अजस जोग की जानकी मनि चोरी की कान्ह ।
तुलसी लोग रिझाइबो करसि कातिबो नान्ह ॥३५॥

जानकी कि अजस जोग कान्ह कि मनि चोरी जोग तुलसी लोग रिझाइबो नान्ह कातिबो करसि ॥

सीता ऐसी पतिव्रता क्या कलङ्क के योग्य हो सकती हैं ? अर्थात् कभी नहीं । ऐसे प्रतापी श्रीकृष्ण भगवान् क्या मणि की चोरी के योग्य हो सकते हैं ? अर्थात् कभी नहीं हो सकते । तुलसी-दास कहते हैं कि संसार के लोगों को प्रसन्न करना बहुत पतला सूत कातना है अर्थात् सब को प्रसन्न रखना बहुत कठिन है नहीं हो सकता।

सीताजी बहुत दिन तक रावण के घर में निर्दोष रहीं और मनसा बाचा कर्मणा सर्वदा रामचन्द्र जी के चरण से उन का प्रेम कभी घटा नहीं तौ भी अयोध्या में आने पर उन को मिथ्या अपवाद लगाया गया ।

श्रीकृष्ण भगवान् ने मणि नहीं चोराया था । प्रसेन नाम राजकुमार को मार कर एक सिंह मणि ले कर चला गया, तब उस सिंह से लड़ कर जामवन्त ने उसे मारा और मणि ला कर अपनी पुत्री को दिया परन्तु लोगों ने इस सत्य बात को न जान

कर झूठ मूठ अनुमान किया कि गुप्त रीत से प्रसेन को मार कर कृष्ण ही ने मणि ले लिया होगा और दुष्ट लोगों ने ऐसा झूठा अपवाद फैला दिया। यद्यपि महारानी सीताजी और महाराज कृष्ण भगवान ने पीछे से अपनी सत्यता के द्वारा मिथ्या कलङ्क को दूर किया तौ भी कुछ समय तक झूठे अपवाद के भागी ऊए।

इन दो दृष्टान्तों को दिखला कर तुलसी-दास जी कहते हैं कि संसार में सब को प्रसन्न करना बऊत कठिन है। महीन कातते हैं इस कहावत के द्वारा उक्त बात की कठिनता को दृढ़ करते हैं इस कारण इस दोहे के पूर्वार्द्ध में काकु और उत्तरार्द्ध में लोकोक्ति अलङ्कार हैं॥३५॥

माँगि मधुकरी खात जे सोवत पाय पसारि।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि-परी तुलसी बाढ़ी रारि॥३६॥

जे मधुकरी माँगि खात पाव पसारि सोअत, तुलसी (तिन को ऊ) प्रतिष्ठा पाप बढ़ि परी रारि बाढ़ी॥

जो साधुलोग रोटी की भिक्षा माँग कर भोजन करते हैं और पाव फैला कर निःशोच हो सोते हैं उन का भी जब प्रतिष्ठारूपी पाप बढ़ जाता है अर्थात् सब लोग यह बात जान लेते हैं कि अमुक साधु बड़े सिद्ध हैं तो झगड़ा फैल जाता है अर्थात् सब लोग आ२ कर साधु को दुःख देने लगते हैं।

अभिप्राय यह कि सच्चे साधु जो किसी की उद्धौमद्धौ में नहीं रहते हैं और सदा अपने इष्ट-देवता की सेवा में लगे रहते हैं

वे संसार में नामवरी और प्रतिष्ठा बढ़ना भी एक पाप समझते हैं संस्कृत में कहा है कि (प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा गौरवं चाति रौरवं) प्रतिष्ठा शूकरी के मल के समान है और बड़ाई रौरव नरक के समान है अर्थात् ये दोनों पदार्थ ज्ञानी और उदासीन के लिये विघ्न कारक हैं इसी बात का तुलसी-दास ने इस दोहे में वर्णन किया है इस पर कई एक टीकाकार कहते हैं कि तुलसी-दास ने यह बात अपने ऊपर कही है, हो सकता है कि जब गोसाईं जी का नाम बहुत बढ़ गया, दिल्ली तक पहुंचा और दिल्ली के बादशाह ने उन्हें बुला कर दुःख दिया उसी पर उन्हों ने यह दोहा बनाया हो, अथवा शिवभक्तों की झगड़ा पर यह दोहा कहा हो परन्तु इस बात को ज्ञानी लोग पहिले ही से बुरी समझते आते हैं ॥ ३६ ॥

लही आँखि कब आँधरे बाँझ पूत कब पाय ।
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाय ॥ ३७ ॥

आधरो कब आँख लही बाँझ कब पूत पाय, कोढ़ी कब काया लही (तथापि) जग बहराइच जाय ॥

संसार की जड़ता और भेड़ियाधसान पर तुलसी-दास कहते हैं कि किस समय अन्धे ने आँख पाई ? किस समय बाँझ ने लड़का जना ? कुष्ठी ने कब निर्मल शरीर पाई ? अर्थात् यह कभी नहीं सुनने में आया कि बहराइच जाने से उक्त लोगों ने उक्त वस्तुओं को पाया तौ भी संसार के लोग ऐसे अन्धपरम्परा से काम करने वाले हैं कि बहराइच जहाँ सैयद सालार का रौज़ा है अपने मनोरथ को पूरा करने के लिये जाया करते हैं ॥ ३७ ॥

या जग की बिपरीत गति का हि कहौँ समुझाय ।
जल जलिगौ झख बाँधि गौ जन तुलसी मुसुकाय ॥३८॥

या जग की गति बिपरीत जल जलि गौ झख बाँधि गौ तुलसी का हि समुझाय कहौ जन मुसुकाय ॥

इस संसार की उलटी रीति है, पानी सूख गया मछली पकड़ी गई तुलसी-दास कहते हैं कि किस को समुझा कर कहूँ मनुष्य हँस-रहे हैं ॥

अभिप्राय यह कि जब बरसात में जल की धारा बह चलती है तो मछलियाँ चढ़ दौड़ती हैं और लोग जाल औ पहरा ले ले कर मछली पकड़ने दौड़ते हैं उस समय सब पानी बह कर सुख जाता है और मछलियाँ पकड़ ली जाती हैं, तौ भी मछली पकड़नेवाले दूर से सुन कर मछली पकड़ने दौड़ते हैं और चाहे मछली मिले चाहे न मिले "भेड़िया धसान" मचा देते हैं कितना समुझाओ नहीँ सुनते; ऐसी ही दशा इस संसारी जीव की भी है सुखरूप जल तो परमार्थ वा रामभक्ति में है उसे त्याग कर संसारी बिषय सुख पर दौड़ते हैं और मछली के समान बन्ध जाते हैं कितना भी समुझाइये कि बिषय सुख अन्त में दुःखदाई होता है नहीँ सुनते। तिस पर तुलसी-दास कहते हैं कि भक्तजन उन का अज्ञान देख कर हँसते हैं कि ये कैसे मूर्ख हैं ॥ ३८॥

कै जुझिबो कै बूझिबो दान कि काय-कलेस ।
चारि चारु परलोक-पथ जथा-जोग उपदेस ॥ ३९ ॥

कै काय-कलेस कै जूभिबो कै बूभिबो कै दान जथा-जोग चारि परलोक-पथ चाह उपदेश ॥

संसार के लोगों की जड़ता देखा कर अब उन के मुक्ति के उपाय का उपदेश देते हैं ॥

(जथा-जोग) अपनी २ योग्यता के अनुसार चारो वर्णों के लिये तुलसी-दास जी कहते हैं कि ब्राह्मण के लिये ज्ञान वा जप तप, क्षत्री के लिये सन्मुख रण में लड़ मरना, वैश्य के लिये (बूभिबो) अर्थात् समझ बझ के सच २ वाणिज्य और व्यवहार करना वा श्रद्धा समेत दान देना, और शूद्र के लिये दान देना वा (काय-कलेस) अपने शरीर को दुःख दे कर द्विजों की सेवा करना ये चार उपदेश परलोक में मुक्ति पाने के लिये चारो वर्णों के हितकारी हैं ॥३९॥

बुध किसान सर बेद बन मतें खेत सब सींच।
तुलसी क्रिषि-गति जानिबो उत्तम मध्यम नीच॥४०॥

बुध किसान बेद सर बन मते सब खेत सींच, तुलसी उत्तम मध्यम नीच क्रिषि-गति जानिबो ॥

परलोक मार्ग में बुद्धिमान लोग किसान हैं और बेदरूपी तालाब है जिस के अनेक सिद्धान्त जलरूपी हैं उन्हीं जलों से अपने मतरूपी खेत को सींचना चाहिये। तुलसी-दास कहते हैं कि अपने२ परिश्रम के अनुसार उत्तम मध्यम और नीच खेती का फल जानना चाहिये ॥

अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार रीति के अनुसार जो आप

खेती में परिश्रम करता है वह उत्तम किसान समझा जाता है, जो थोड़े परिश्रम से मजूरों के द्वारा खेती का काम चलाता है वह मध्यम और जो सम्पूर्ण रूप से मजूर ही के ऊपर खेती का सब काम छोड़ देता है वह निकृष्ट किसान कहलाता है, उसी प्रकार जो मुमुक्षु ज्ञान वैराग्य भक्ति आदि कामों में आप रात दिन लगे रहते हैं, प्रारब्ध की अपेक्षा नहीं करते वे उत्तम हैं और जो संसारी व्यवहार में रह कर प्रारब्ध की आशा करके थोड़ा बहुत ज्ञान वैराग्य भक्ति का भी काम किया करते हैं वे मध्यम और जो सम्पर्ण रूप से प्रारब्ध ही की आशा रखते, ज्ञान वैराग्य भक्ति के कामों को करने में पूरे उद्योगी नहीं हैं कहते हैं कि लिखा होगा सो होगा वे निकृष्ट हैं, इस प्रकार परलोक के कामों को भी खेती के काम के समान जान कर परिश्रम करने का उपदेश तुलसी-दास जी देते हैं॥

अथवा किसान के समान बुद्धिमान लोग वेदरूपी सरोवर से मत-रूपी जल ले कर अपने हृदयरूपी खेत को जैसे परिश्रम से सींचते हैं वैसे ही खेत के उत्तम मध्यम नीच सुभाव के अनुसार उत्तम मध्यम नीच फल होता है यही दशा परलोक की भी है॥ ४०॥

सहि कु-बोल सासति असम पाय अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरहिँ ते बर सन्त सु-जान॥४१॥

तुलसी कु-बोल सासति सहि असम अनट अपमान पाय जे धरम न परिहरहिँ ते सु-जान सन्त बर॥

तुलसी-दास कहते हैं कि गाली क्लेश और अत्यन्त अन्याय और अनादर पा कर भी जो लोग अपने किसान के धर्म को नहीं छोड़ते वेही लोग बड़े ज्ञानी और सज्जन किसान कहलाते हैं।

परमार्थ पक्ष का अर्थ।

तुलसी-दास कहते हैं जो साधु दुखों की कड़ी बातों को अनेक भान्ति के क्लेशों को और बड़े विषम सङ्कट को और अनादर को सह लेते हैं परन्तु धर्म्म नहीं छोड़ते वे ही ज्ञानी साधुओं में श्रेष्ठ हैं॥४१॥

अनहित ज्यौं पर-हित किये आपन हिततम जान।
तुलसी चारु बिचार मति करिय काज सम मान॥४२॥

तुलसी आपन हित हिततम, पर-हित किये ज्यौं अनहित जान, सम काज करिय चारु बिचार मति मान॥

तुलसी-दास कहते हैं कि संसारी मनुष्य अपने हित को बड़ा हित जानते है, परन्तु दूसरे के हित जो करें सो अपने अनहित (ज्यौं) के समान जानते हैं। यह विषमता है, परन्तु साधु जन को समता से काम करना चाहिये (अर्थात् अपने अत्यन्त हितकारी काम के समान दूसरों की भलाई का काम करना चाहिये और जैसी अपनी बुराई वैसी ही दूसरे को बुराई) यही उत्तम विवेक और बुद्धि मानना चाहिये॥

द्वितीयार्थ।

तुलसी ज्यौं पर अनहित किये आपन हित हिततम जान, सम काज मति करिय चारु बिचार मान।

तुलसी-दास कहते हैं कि जैसे दुष्ट लोग (पर) दूसरों की (अनहित) बुड़ाई करते हैं और अपनी भलाई को (हिततम) सब से बड़ा हित जानके (आपन हित) अपनी भलाई करते हैं, (सम) वैसा काम (तुम) मत करो और यह उत्तम बिचार मानो॥

मति शब्द में श्लेष है जब उसे संस्कृत माना तो बुद्धि अर्थ किया, और जब हिन्दी माना तो निषेध वाचक अव्यय जाना॥

अभिप्राय यह कि पण्डित लोग अपनी भलाई बुराई के समान दूसरों की भलाई बुराई को जानते मानते हैं, और मूर्ख लोग इसी का उलटा मानते हैं। यही सज्जन और दुष्टों की पहचान है॥४२॥

मिथ्या माहुर सु-जन कहँ खलहिँ गरल सम साँच।
तुलसी परसि परात जिमि पारद पावक आँच॥४३॥

सु-जन कहँ मिथ्या माहुर खलहिँ साँच गरल सम, तुलसी परसि तिमि परात जिमि पारद पावक आँच परसि परात॥

साधु लोगों के लिये झुठाई विष के समान है और दुष्टों के लिये सचाई विष के समान है। तुलसी-दास कहते हैं कि साधु जन मिथ्या से अथवा दुष्टों के सङ्ग से वैसा ही भागते हैं जैसे पारा आग के स्पर्श से भागता अर्थात् उड़ जाता है॥ ४३॥

तुलसी खल बानी बिमल सुनि समुझब हिय हेरि।
राम राज बाधक भई मन्द मन्थरा चेरि॥४४॥

तुलसी खल बिमल बानी सुनि हिय हेरि समुझब, मन्द मन्थरा चेरि राम राज बाधक भई॥

तुलसी-दास कहते हैं कि दुष्टों की निर्मल सुन्दर चिकनी बात को सुन कर हृदय में अच्छी रीति सोच विचार कर खूब समुझ बूझ के करना चाहिये। निर्बुद्धि मन्थरा नाम दासी भी कैकेयी से ऐसी मीठी पेंचेली बात बना कर बोली कि रामचन्द्र के राजा होने में बाधक हुई अथवा दुष्टा मन्थरा सुनने में प्यारी बातें बना कर राम के राज को रोकनेवाली हुई। इस कारण दुष्टों की भली बात का भी भरोसा करना न चाहिये और बहुत समझ बूझ के उन के कहने पर विश्वास लाने से भी भय रहता है॥ ४४ ॥

दान दयादिक जुद्ध के बीर धीर नहिँ आन।
तुलसी कहँहिँ बिनीत इति ते नर बर परमान॥४५॥

तुलसी (इति बिनीत) कहँहिँ दान दयादिक धीर जुद्ध के बीर आन नहीँ ते नर बर परमान॥

तुलसी-दास जी यह एक विशेष नीति कहते हैं कि जो लोग दान देने में दीनों के ऊपर दया करना आदि अच्छे कामों में धैर्य रखनेहारे हैं वे ही रण क्षेत्र के बीर है दूसरे नहीँ, वे ही मनुष्यों में श्रेष्ठ गिने जाते हैं इस बात को प्रमाण जानना॥

अभिप्राय यह कि जो गति दानी दयालु और धीर पुरुष को मिलती है वही गति रण क्षेत्र म सम्मुख लड़ कर मर जानेवाले क्षत्री को मिलती है, ठीक ठीक सत्य शौच दया दान में लगा रहनेवाला ठीक ठीक बीर है॥ ४५ ॥

तुलसी साथी बिपति के बिद्या बिनय बिबेक।
साहस सु-क्रित सत्य-ब्रत राम-भरोसो एक॥४६॥

तुलसी बिद्या बिनय बिबेक साहस सु-क्रित सत्य-ब्रत एक राम-भरोसो बिपति के साथी॥

तुलसी-दास कहते हैं कि ज्ञान, नम्रता, विचार, साहस, पुन्य सत्यरूपी व्रत और सब के ऊपर एक रामचन्द्र का भरोसा विपत्ति के साथी हैं।

अभिप्राय यह कि कैसी हो भारी विपत्ति क्यों न हो यदि मनुष्य विद्वान हो तो अपनी जीविका कर के विपत्ति काट देगा। उसी प्रकार नम्र विवेकी साहसी सुक्ती और सत्य-व्रतवाले पुरुष के निकट से विपत्ति आप भाग जाती है, इस लिये मनुष्यों को चाहिये कि ऊपर लिखे हुये गुणों को विपत्ति पड़ने पर भी न छोड़ें॥ ४६॥

तुलसी असमय के सखा साहस धरम बिचार।
सु-क्रित सील स्वभाव रिजु राम-सरन-आधार॥४७॥

तुलसी साहस धरम बिचार सु-क्रित सील रिजु स्वभाव राम-सरन-आधार असमय के सखा॥

तुलसी-दास कहते हैं कि पराक्रम धर्म विवेक पुन्य अच्छा शील कोमल स्वभाव और श्रीराम-जी की शरण का अवलम्ब बुरे दिनों के सहायक मित्र हैं इन को किसी समय भी त्यागना उचित नहीं है क्योंकि इन के रहने से सब प्रकार की दुःख-बलाय-बिलाय जाती हैं।

राम-जी का भरोसा ऐसा है कि उस के आश्रयीको कभी क्लेश नहीं हो सकता ॥ ४७ ॥

बिद्या बिनय बिबेक रति रीति जासु उर होइ।
राम-परायन सो सदा आपद ताहि न कोइ ॥ ४८ ॥

अन्वय। जासु उर बिद्या बिनय बिबेक रति राम-परायन रीति सदा होय ताहि कोइ आपद न ॥

जिस के अन्तःकरण में ज्ञान नम्रता विचार मित्रता राम-चन्द्र की आशा सर्वदा रहती है उस के निकट कोई विपत्ति नहीं आती। प्रथम तो विद्या द्विगुण ही ऐसे हैं कि विपत्ति न आने देयँ फिर सब से उत्तम राम की भक्ति है जिस के कारण परम आनन्द होता है ॥ ४८ ॥

बिनु प्रपञ्च बरु भीख भलि नहिँ फल किये कलेस।
बावन बलि सोँ लीन्ह छलि दिन्ह सबहिँ उपदेस ॥४९॥

अन्वय। बिनु प्रपञ्च बरु भीख भलि कलेस किये फल नहीं बावन बलि सोँ छल लीन सबहिँ उपदेस दिन्ह ॥

तुलसी-दास कहते हैं कि विना छल कपट के थोड़ी सी भिक्षा भली है परन्तु छलरूप परिश्रम करने पर फल मिलै तो भला नहीं, ऐसा मन में स्थिर रखिये क्योँकि भगवान विष्णु ने बावन रूप धर के राजा बलि से छल के द्वारा तीन पाव भूमि ली, उस का फल यह हुआ कि उन्हें राजा बलि का द्वारपाल होना पड़ा और कपटी

भी कहाये, सो उन्हों ने मानो यह उपदेश दिया कि कपट के द्वारा काम सिद्ध करने में यही गति होती है इस लिये छल न करना चाहिये क्योंकि छली को सुख नहीं होता। सीधी रीत से चलना ही उत्तम है चाहे उस से फल सिद्ध हो वा न हो ॥ ४९ ॥

बिबुध-काज बावन बलिहिँ छलो भलो जिय जानि ।
प्रभुता तजि बस भे तदपि मन तेँ गइ न गलानि ॥५०॥

अन्वय । बावन भलो जिय जानि बिबुध-काज बलिहिँ छलो, प्रभुता तजि बस भे तदपि मन तेँ गलानि न गइ ॥

बावनरूप भगवान ने परोपकार जान देवताओं के काम के लिये राजा बलि को छला, इस का फल यह हुआ कि अपनी स्वतन्त्रता छोड़ के बलि राजा के अधीन हुए, तो भी उन के मन से छली कहलाने का दुःख न दूर हुआ अर्थात् इतने बड़े सामर्थी ब्रह्मा आदि को आज्ञा देनेवाले विष्णु को भी सेवकाई करनी पड़ी यही कपट की महिमा है ॥ ५० ॥

बड़े बड़े तेँ छल करहिँ जनम कनौड़े होहिँ ।
तुलसी स्त्री-पति-सिर लसै बलि बावन गति सोहिँ ॥५१॥

अन्वय । बड़े बड़े तेँ छल करहिँ जनम कनौड़े होहिँ तुलसी सो हि बलि बावन गति स्त्री-पति-सिर लसै ॥

जो लोग आप बड़े हो कर बड़े बड़े लोगों से छल करते हैं वे जन्म भर के लिये बिक जाते हैं, तुलसी-दास कहते हैं कि तुलसी भगवान

विष्णु लक्ष्मी के स्वामी के शिर पर चढ़ी रहती हैं वही बात बलि के साथ बावन भगवान की है।

अभिप्राय यह कि एक समय जलन्धर नाम दैत्य महादेव जी से अपनी पतिव्रता स्त्री के तेज के कारण युद्ध में हारता नहीं था तब विष्णु भगवान ने जलन्धर का रूप धर के उस की स्त्री बिन्दा के पतिव्रता-पन को नष्ट किया। तब बिन्दा को प्रसन्न करने के लिये सदा तुलसी रूप से उसे अपने शिर पर धारण किया। यह कथा शिवपुराण में प्रसिद्ध है। उसी प्रकार बलि से छल करने के लिये भगवान को सदा बलि के निकट रहना पड़ता है जब विष्णु भगवान के ऐसे प्रतापी को छल करने के कारण इतना दुःख सहना पड़ता है तब औरोँ की क्या कथा है। कभी किसी से छल करना न चाहिये ॥५१॥

खल उपकार बिकार फल तुलसी जान जहान।
मेढ़क मर्कट बनिक बक कथा सत्य उपखान ॥५२॥

अन्वय। खल उपकार बिकार फल जहान जान, सत्य मेढ़क मर्कट बणिक बक कथा उपखान॥

दुष्टोँ के साथ उपकार करने का फल बिकार होता है अर्थात् उस से अपनी बुराई होती है इस बात को संसार जानता है इसकी सचाई के विषय में मेढ़क, बानर, बनिया और बगुले की कथा दृष्टान्त रूप से प्रसिद्ध हैं।

किसी समय एक मेढ़क अपने कुटुम्बोँ से झगड़ा कर के प्रियदर्शन नाम एक साँप को भूखा देख के उपकार करने की इच्छा से उसी

कूयेँ में ला कर बसाया जिस में उस के भाई बन्धु और लड़के वाले रहते थे। सो प्रियदर्शन ने भलाई के बदले और और मेढ़कोँ के खाने के अनन्तर उस के परिवार को खा कर गङ्गदत्त को खाने पर झाँक लगायी इस का समाचार जब गङ्गदत्त ने पाया तब कुयेँ में से भाग कर अपना प्राण बचाया।

एक बानर ने किसी भूखे मगर को वृक्ष से गिरा २ बहुत सा फल खिला कर जिलाया अन्त को मगर ने बानर ही को खाने पर दाँत लगाया तब बहाने से भाग कर बानर ने अपना जी बचाया।

वर्षा ऋतु में भीजते हुये बानरोँ को देख कर उपकार करने की इच्छा से पक्षियोँ ने उपदेश दिया कि घर बना कर रहिये। उस उपकार के बदले में बानरोँ ने पक्षियाँ के खोँतोँ को नोच नाच मट्टी में मिला दिया। भलाई के बदले बुराई पायी।

किसी बनिये ने किसी राजकुमार का उपकार करने के लिये अपनी स्त्री उस के निकट भेज दी जिस में उस राजकुमार के मन्त्र की सिद्धि हो। उस के बिरुद्ध उस राजकुमार ने उस की स्त्री को नष्ट कर दिया।

किसी बगुले ने एक भूखे मरते नेउले को बुझाया कि वह एक सर्प को खावे उस ने केवल सर्प ही को नहीँ खाया बरन बगुले के ऊपर भी दाँत चलाया॥ ५२॥

जो मूरख उपदेस के होते जोग जहान।
दुर्जोधन कहँ बोधि किन आये स्याम सुजान॥ ५३॥

जहान जो मूरख उपदेस के योग होते (तो) स्याम सुजान दुर्योधन के बोधि किन आये॥

मूर्ख को समझाना बड़ा कठिन है शास्त्र में लिखा है कि "मूर्खस्य नास्त्यौषधम्" मूर्ख को समझाने की कोई औषधि नहीं है इस पर तुलसी-दास जी कहते हैं कि संसार में जो मूर्ख उपदेश देने के योग्य होते तो बड़े ज्ञानी श्रीकृष्ण भगवान दुर्योधन को क्यों न समुझा आते।

जब कौरव और पाण्डव के बीच महाभारत के बड़ा भारी युद्ध होने का सम्भव देख पड़ा तो उस को मिटाने के लिये श्रीकृष्ण भगवान स्वयं दुर्योधन के पास गये और समझाने लगे कि पाण्डवों को जीविका के लिये थोड़ी भूमि दे दो जिस में युद्ध की रुकावट हो जाय। परन्तु दुर्योधन ने एक भी न सुनी और अन्त को लड़ कर अन्न धन परिवार सहित मट्टी में मिल गया परन्तु उस समय श्रीकृष्ण का कहना न माना बरन उस का उत्तर कहावत हो गया है कि "सूच्यग्रं न दातव्यं बिना युद्धेन केशव" ॥ ५३ ॥

हित पर बढ़त बिरोध जब अन-हित पर अनुराग।
राम बिमुख बिधि बाम गति सगुन अघाय अभाग॥५४॥

जब हित पर बिरोध बढ़त अन-हित पर अनुराग बढ़त (तब) बिधि गति बाम राम बिमुख होत अभाग सगुन अघाय॥

जिस समय अपनी भलाई के विषय में विरोध बढ़ने लगता है और बुराई के विषय में अनुराग अर्थात् प्रीति अधिक होने लगती है तो समझना चाहिये कि भाग्य की उलटी गति है, रामचन्द्र बिमुख है और भलाई करने से भी बुराई होती है और अपने

शत्रु और मित्र दोनों बुराई ही करने लगते हैं तथा शुभसूचक चिन्ह भी अभाग्य फलदायक होता है॥ ५४॥

साहस ही सिख कोप-बस किये कठिन परिपाक।
सठ सङ्कट-भाजन भए हठि कु-जाति कपि काक॥५५॥

कोप-बस सिख (न सुनि) साहस किये कठिन परिपाक, सठ कु-जाति कपि-काक हठि सङ्कट भाजन भये॥

क्रोध के वश हो कर अपने हितकारकों की शिक्षा न सुनने और जल्दी से काम कर बैठने से परिणाम बहुत दुःखदाई होता है। इस विषय में मूर्ख और कुजाति बन्दर और कौआ बड़ी हठ कर के दुःख के पात्र हुये अर्थात् बड़े दुःख में पड़े॥

अभिप्राय यह कि जो काम करना हो उसे धीरता-पूर्वक सोच बिचार करना चाहिये। अविचार के साथ क्रोधी और हठी हो कर जो लोग काम करते हैं वे बड़ा दुःख पाते हैं इस विषय के दृष्टान्त नीचे लिखे हुये जीव हैं। कपि बालि को उस की स्त्री तारा ने बहुत समझाया और कहा कि आप सुग्रीव से विरोध मत कीजिये नहीं तो दुःख पाइयेगा क्योंकि उन के सहायक राम-चन्द्र जी हैं। परन्तु उस का कहना न माना और साहस-पूर्वक काम कर के मारा गया।

बन के निवासी एक बन्दर ने चञ्चलता के साथ आधी चीरी हुई एक लकड़ी के बीच गड़े खूँटे को हिला डोला कर उखाड़ने के लिये खींचा तब काठ के दोनों पटरों के बीच लटकता हुआ उस का

अण्डकोश दब के चूर२ हो गया और वह हठी बन्दर मर के धूर में मिल गया ।

जयन्त नाम काक लोभ के वश हो कर 'परमेश्वर से बिरोध न करना चाहिये' शास्त्र के इस उपदेश को भूल कर सीता जी के चरण में चोंच मार भागा जिस का परिणाम ऐसा हुआ कि उस की रक्षा कोई न कर सका अन्त को एक आँख फोड़ कर दण्ड दिया परन्तु राम ने उस का प्राण न लिया ।

जहाँ "कुयति" पाठ हो वहाँ कुयोगी अर्थ करना चाहिये, जिस से रावण को समझना चाहिये क्योंकि यह भी मारीच का कहना न मान लोभ और हठ को ठान योगी का रूप बना पञ्चवटी में आ कपट से सीता जी को उठा ले भागा और इस अबिचारी अन्याय काम के लिये अपने वंश के सहित मट्टी में मिल गया ॥ ५५ ॥

मारि सौंह करि खोज लै करि मत सब बिन त्रास ।
मुए नीच बिन मीच तें ये इन के बिस्वास ॥ ५६ ॥

ये मारि खोज लै सौंह करि बिनु त्रास मत करि ते सब नीच इन के बिस्वास तें बिन मीच मुए ।

जो लोग पहले किसी को मारते हैं और फिर उन को खोजवा कर उन से शपथ ले कर मेल करते हैं बेडर हो कर उन से सम्मत करते हैं वे सब निर्बुद्धि इन शत्रुओं पर बिश्वास करने के कारण बिना मृत्यु के मरते हैं, अर्थात् अपने हाथ ही से अपना शिर काटते हैं ।

अभिप्राय यह कि जिस से एक बार गाढ़ी शत्रुता हुई जो लोग फिर उस से मेल मिलाप कर के उस पर बिश्वास करना प्रारम्भ करते हैं वे अपने हाथ से अपना दुःख बढ़ाते हैं क्योंकि राजनीत के अनुसार शत्रु का बिश्वास न करना चाहिये ॥ ५६ ॥

रीझ आपनी बूझ पर खीझ बिचार बिहीन।
ते उपदेस न मानहीँ मोह-महोदधि-मीन ॥ ५७॥

(ये) आपनी बूझ पर रीझ बिचार बिहीन खीझ मोह-महोदधि-मीन ते उपदेस न मानहीँ ॥

अपने हीँ मन से बिना कारण प्रसन्न होते हैं बिना बिचार बिना किसी दोष के क्रोधित होते हैं ऐसे लोग मोहरूपी समुद्र की मछली हैं और अपने बुद्धि के भ्रम के कारण किसी का उपदेश नहीँ मानते।

अभिप्राय यह कि जो लोग बिना कारण किसी के ऊपर प्रसन्न वा क्रोधित होते हैं और बिना बिचार निर्दोषी को दण्ड देते हैं और दोषी लोग दण्ड नहीँ पाते ऐसे लोग केवल मोह के अधीन है इन की प्रसन्नता का कुछ ठिकाना नहीँ है॥ क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा रुष्टा तुष्टा क्षणे क्षणे। अव्यवस्थितचित्तानां प्रसादोऽपि भयंकरः। अर्थात् क्षण में प्रसन्न क्षण में अप्रसन्न कभी रुष्ट कभी तुष्ट अस्थिर चित्तवाले मनुष्यों का प्रसन्न होना भी दुःख-दाई होता है ॥ ५७ ॥

समुझि सु-नीति कु-नीति-रत जागत ही रह सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ॥ ५८॥

सु-नीत समुझ कु-नीत रत जागत ही सोय रह"तुलसी तिन को उपदेशिबो जगाइबो उचित न होय।

जो लोग अच्छी नीत रीति को जान बूझ कर बुरी रीत नीत और कामों में लगे रहते हैं वे लोग जागते भी सोये के समान हैं ऐसे लोगों को उपदेश देना मानो जागते को जगाना है इस लिये तुलसी-दास कहते हैं कि ऐसे को उपदेश देना उचित नहीं है अथवा (जो जागत ही सोय रह ताहि जगाइबो उचित न होय)। जो जागता है परन्तु सोये का बहाना कर के आँख मूंदे पड़ा है ऐसे का जगाना उचित नहीं।

अभिप्राय यह कि जो मनुष्य रावण के समान सब विद्या का जाननेवाला भले बुरे कामों का समझनेवाला महापण्डित हो कर भी सीता के समान परस्त्री-हरण करता निर-पराधियों का जीव हरता बुरे कामों से न डरता और दीनों को सताता है वह केवल हठधर्मी कहाता है और अभिमान से भरा हुआ होने के कारण वह किसी का उपदेश न सुनेगा इस कारण उस को उपदेश देना मानो राख में होम करना है।

जागते को कौन जगावे इस कहात के दोहे में आने के कारण यहाँ लोकोक्ति अलङ्कार स्पष्ट है ॥ ५८ ॥

परमा-ऽरथ-पथ-मत समुझि लसत बिखय लपटान।
उतरि चिता तें अध-जरी मानहुँ सती परान॥५९॥

परमा-ऽरथ-पथ-मत समुझि बिखय लपटान लसत मानहुँ अध जरी सती चिता तें उतरि परान।

जो मनुष्य परलोक में सुख देनेवाले धर्मों को अथवा परलोक के मार्ग ज्ञान भक्ति उपासना आदि विषयों को समझ कर रूप रस गन्ध स्पर्श आदि विषय के सुख में लीन रहता है सो मानो चिता से उतर कर भागी आधी जरी पतिव्रता स्त्री के समान है।

अभिप्राय यह कि जो मनुष्य पढ़ लिख के ज्ञान उपासना कर्म-काण्ड विवेक वैराग्य शान्ति आदि को जान, श्रवण भजन पूजन आदि भक्ति की रीतों को समझ कर, विद्वान हो कर, संसारी सुन्दरी नारी, स्वादिष्ट कुमांस भोजन, वर्जित गन्धों का सूँघना, परस्त्री आदि का स्पर्श करना, निन्दित गीत और वेद निन्दा आदि को सुनना आदि लौकिक विषयों में लपटा रहता है वह ऐसी सती के समान है (जो यदि अपने पति के साथ चिते पर जल गई होती तो परम गति पाती) नहीं तो प्राण के लोभ से चिते पर से उतर भागने के कारण न इधर की हुई न उधर की, आधी जल जाने से शरीर भी खराब हो गया और लोक निन्दा भी हुई। इस दोहे में मानो शब्द के आने के कारण वाच्या उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ५९ ॥

तजत अमिय उपदेस गुरु भजत बिखय-बिख-पान।
चन्द-किरण धोखे पयस चाटत जिमि सठ स्वान ॥६०॥

गुरु अमिय उपदेस तजत बिखय-बिख-पान भजत जिमि सठ स्वान चन्द-किरण धोखे पयस चाटत ॥ ६० ॥

जो लोग गुरु के अमृत के समान दोनों लोक में सुख देनेवाले उपदेश को छोड़ देते हैं और संसारी विषय सुख को जो विष के

करनेवाले अथवा टीका माला दाढ़ी और जटा बढ़ा कर पाखण्ड करनेवाले सुपन्थ पर चलनेवाले साधु कहाते हैं अथवा चोर चतुर अर्थात् चोरी करनेवाले बड़े चतुर कहावेंगे डाँकू योद्धा कहावेंगे अघोरपन्थी सिद्ध कहावेंगे और पाखण्डी सुपन्थी कहावेंगे ॥ ६२ ॥

गौड़ गँवार न्त्रि-पाल कलि जमन महा-महि-पाल ।
साम न दान न भेद कलि केवल दण्ड कराल ॥ ६३ ॥

कलि गौड़ गँवार त्रि-पाल जमन महा-महि-पाल न साम न दान न भेद केवल कलि कराल दण्ड ।

कलि-युग में नीच जात और विद्याहीन गँवार राजा होंगे और म्लेच्छ आदि चक्रवर्त्ती महाराजाधिराज होंगे इस कारण राज्य की चार मुख्य बातें अर्थात् साम दान दण्ड भेद इन चारो में से केवल दण्ड मात्र रह जायगा सो भी बहुत कराल दयाहीन होगा ॥

अभिप्राय यह कि विद्वान बुद्धिमान राजनीति के जाननेवाले धर्मिष्ठ राजा लोग कलि युग में न होंगे केवल बहुत नीच जात जङ्गली निर्दई राजा उत्पन्न होंगे जो (साम) मिलाप (दान) कुछ दे ले के मेल करना (भेद) अर्थात् शत्रु के पक्ष वाले मन्त्री आदि को फोड़ फाड़ के किसी से युद्ध और किसी से मेल कराना इन तीनों उपायों को न कर के केवल किसी रीत से दण्ड दे कर धन हरन करना राजाओं में रह जायगा जिस से प्रजा को बड़ी पीड़ा होगी ॥ ६३ ॥

काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल ।
पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहमी-पाल ॥ ६४ ॥

अन्वय । काल तोपची मही तुपक कराल अनय दारु पुहमी-पाल गुरु गोला पाप कठिन पलीता ।

कलियुगरूप समय गोलन्दाज है पृथ्वी तुपक आदि है बड़ी बड़ी अनीति बारूद है अन्याई राजा लोग बड़े बड़े गोला हैं और अनेक प्रकार का पाप मोई कठिन पलीता है जिन के लगने से गोले छूटते हैं और प्रजालोग बड़ा दुःख भोगते हैं। इस दोहे में युद्ध का रूपक है ॥ ६४ ॥

राग-रोख-गुन-दोख को साखी हिृदय सरोज ।
तुलसी बिकसत मित्र लखि सकुचत देखि मनोज ॥ ६५ ॥

हिृदय-सरोज राग-रोख-गुन-दोख को साखी मित्र लखि बिकसत मनोज देखि सकुचत ।

हृदयरूपी कमल प्रेम क्रोध के गुण और सब दोषों का साखी है सो जिस प्रकार (मित्र) सूर्य को देख कर कमल खिलते हैं उसी प्रकार अविवेकरूप अपने मित्र को देख कर कमलरूपी हृदय विकसित होता है और मन से उत्पन्न वैराग्य विवेक और ज्ञानादि को देख कर चन्द्र को देख कमल के समान संकुचित होता है ॥

अभिप्राय यह कि इन्द्रीरूपी घोड़ों के द्वारा काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सर आदि विषयों पर मन दौड़ता है और विषय सुख

को पा कर प्रसन्न होता है परन्तु ध्यान भक्ति विवेक और सब से अधिक वैराग्य के होने से मन बटुर जाता है ॥ ६५ ॥

बैर सनेह सयान पहिँ तुलसी जो नहिँ ज्ञान ।
ते कि प्रेम मगु पग धरत पसु बिनु पुच्छ बिखान ॥६६॥

जो बैर सनेह ज्ञान सयान पहिँ नहिँ जान ते कि प्रेम-मगु पग धरत तुलसी (ते) बिन पुच्छ बिखान पसु ।

जो लोग किसी से शत्रुता और किसी से मित्रता रखते हैं और विवेक होन हैं वे क्या हरिभक्ति के पथ पर पाव रख सकते हैं ? अर्थात् नहीं रख सकते, तुलसी-दास कहते हैं वे बिना पुच्छ सींग के पशु हैं ॥

अभिप्राय यह कि खाना सोना अपने मित्रों से मित्रता रखना और शत्रुओं से शत्रुता रखना आदि बातें पशु और मनुष्य में समान हैं विवेक विचार ज्ञान आदि मनुष्यों के गुण हैं जो पशुओं में नहीं पाये जाते हैं जिन मनुष्यों में विवेक नहीं है वे पशु ही हैं केवल पुच्छ और सींग नहीं है ॥ ६६ ॥

राम-दास पहँ जाय कै जो नर कथहिँ सयान ।
तुलसी अपनी खाँड़ महँ खाक मिलावहिँ स्वान ॥६७॥

जो सयान नर राम-दास पहँ जाय कै कथहिँ तुलसी ते स्वान अपनी खाड़ महँ खाक मिलावहिँ ।

जो मनुष्य अपने को बड़े चतुर मान कर राम के सच्चे भक्त के पास

आ कर अनेक बातें बनाते हैं तुलसी-दास कहते हैं कि वे कुत्ते के समान अपनी खाड़ में मट्टी मिलाते हैं।

अभिप्राय यह कि जो संसारी लोग अपने को बड़ा बुद्धिमान और पण्डित समझ के सच्चे और सीधे हरि-भक्त से तर्क-वितर्क और बाद-विवाद करते हैं वे अज्ञानी श्वान के समान अपने हित को बिगाड़ते हैं क्योंकि इस चाल से ईश्वर उन पर कोप करते हैं॥ ६७॥

त्रि-बिधि एक-बिधि प्रभु-अगुन प्रजहिँ सवारहिँ राउ।
कर तेँ होत क्रिपाण को कठिन घोर घन घाउ॥६८॥

एक-बिधि प्रभु-अगुन प्रजहिँ त्रि-बिध, राउ प्रजहिँ सवारहिँ क्रिपाण को घाउ करतेँ कठिन घोर घन होत।

राजा का एक प्रकार का दोष प्रजा में तीन प्रकार से प्रगट होता है क्योंकि राजा प्रजा को सीधा वा सुन्दर बनानेवाला है इस में दृष्टान्त देते हैं कि हाथ से तरवार का घाव कड़ा भयङ्कर और घना होता है।

अभिप्राय यह कि जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा भी होती है यदि राजा धर्मी हो तो प्रजा धर्मिष्ठ, पापी हो तो पापिष्ठ और सधारण हो तो सधारण होती है कलियुग का राज है जिस में चार भागों में एक ही भाग धर्म का रह गया है इसी कारण प्रजा में धर्म की अपेक्षा पाप बहुत अधिक है, हाथ ही से तरवार चलाई जाती है परन्तु तरवार का घाव हाथ से कहीं बढ़ कर होता

है इसी प्रकार राजा से दोष प्रजा में आता है और तिगुना बढ़ कर अपना फल उत्पन्न करता है। हाथ से मारने में जितना चोट लग सकती है उस से कहीं बढ़ कर तरवार से लगती है। वैसे ही राजा के बुरे काम का प्रभाव प्रजा को तिगुना दुःख देता है॥ ६८॥

काल बिलोकत ईस रुख भानु काल अनुहार।
रबिहिँ राहु राजहिँ प्रजा बुध व्यवहरत बिचार॥ ६९॥

काल ईस रुख बिलोकत भानु काल अनुहार, राहु रबि हिँ प्रजा राज हिँ बुध बिचारि व्यवहरत॥

समय राजा की ओर देखता है अर्थात् राजा के व्यवहार के अनुसार फल उत्पन्न करता है और सूर्य समय के अनुसार तीक्ष्ण मृदु वा मध्यम होते हैँ राहु ग्रह सूर्य के लिये और प्रजा राजा के लिये दुःख उत्पन्न करता है इस कारण विद्वान लोग विचार के व्यवहार करते हैँ।

अभिप्राय यह कि ईश जो हैँ राजा उस के व्यवहार के अनुसार समय कभी कभी बुरा होता है जैसे महाराज वेणु के समय में हुआ था अथवा ईश अर्थात् परमेश्वर की इच्छा के अनुसार समय भला बुरा होता है और ग्रीष्म समय में सूर्य अति प्रचण्ड शीत काल में मन्द और प्रभात साम को मन्द मध्याह्न में अति प्रचण्ड हुआ करते हैँ समय पा कर राहु सूर्य को दुःख देता है और राजा को प्रजा के दुष्कर्म और शाप से उत्पन्न क्लेश सहना पड़ता है इस कारण विद्वान लोग बहुत विचार के साथ चलते हैँ॥ ६९॥

जथा अमल पावन पवन पाय सु-सङ्ग कु-सङ्ग।
गहत सु-बास कु-बास तिमि काल महीस-प्रसङ्ग॥७०॥

जथा अमल पावन पवन सु-सङ्ग कु-सङ्ग पाय, सु-बास कु-बास गहत तिमि काल महीस-प्रसङ्ग॥

जिस प्रकार निर्मल और पवित्र वायु भली और बुरी वस्तु का साथ पा कर भली वा बुरी हो जाती है उसी प्रकार समय राजा के सङ्ग से भला बुरा हो जाता है अर्थात् जब राजा भला होता है तब समय भला होता है और जब राजा बुरा होता है तब समय बुरा होता है। यह बात प्रत्यक्ष है कि जब वायु अच्छी सगीचर और फूलों के बीच से आती है तो शीतल और सुगन्ध-युक्त होती है और जब दुर्गन्ध-युक्त पदार्थ वा स्थानों से हो कर आती है तो दुर्गन्ध-युक्त होती है। जहाँ "कहिय" पाठ हो वहाँ "कहना चाहिय" ऐसा अर्थ करना उचित है॥ ७०॥

भलउ चलत पथ सोच भय न्रिप-नियोग नय नेम।
कु-तिय सु-भूखन भूखित लोह नेवारित हेम॥७१॥

न्रिप सोच भय नय नेम नियोग (दुष्ट हू) भलउ पथ चलत (यथा) सु-भूखन कु-तिय भूखित हेम नेवारित लोह॥

राजा के सोच डर नीति कानून और आज्ञा से दुष्ट प्रजा भी सुमार्ग पर चलती है जैसे उत्तम उत्तम गहनों से कुरूप स्त्री को भी सोभित करते हैं और सोने से लोहे की कुरूपता दूर की जाती है।

अभिप्राय यह कि समय बुरा हो तो भी यदि राजा धर्मात्मा हो तो उस के भय से प्रजा को नियम धर्म के साथ अवश्य ही चलना पड़ता है जब कोई राजा अपने राज में ऐसी आज्ञा का प्रचार करवा देता है कि जो कोई झूठ बोलेगा विश्वास-घात करेगा और चोरी करेगा उसे अत्यन्त कठिन दण्ड मिलेगा तो ये सब काम बहुत कम हो जाते हैं जैसे पुराने राजाओं के समय में हुआ है कैसी भी कुरूप स्त्री क्यों न हो खूब सुन्दर २ गहना और वस्त्र पहना दीजिये तो उड़ चलेगी ।

लोहे को तरवार बन्दूक आदि हथियारों के कबजों पर सोने की कलई करने से वे कैसे जगमगा उठते हैं इसी प्रकार बुरे समय की बुरी प्रजा भी राजा के धर्म्म से अपने पाप को ढाँप रखती है ॥७१॥

सुधा कु नाज सु-नाज फल आम असन सम जान ।
सु-प्रभु प्रजा-हित लेहिँ कर सामा-ऽऽदिक अनुमान ॥७२॥

सु-प्रभु प्रजा-हित कु-नाज सु-नाज आम फल सुधा असन सम जानि सामा-दिक अनुमान कर लेहिँ ।

अच्छे राजा-लोग प्रजाओं की भलाई के लिये खराब अनाज मोटा चावल चना आदि सुनाज सुन्दर उत्तम बासमती चावल गेहूँ अरहर आदि आम आदि उत्तम २ फल फरहरी अमृत समान जान कर और इस से शान्ति होने का अनुमान कर के उपहार लेते हैं।

अभिप्राय यह कि जो २ धर्मिष्ठ राजा-लोग हैं सो जब अपनी

राज-धानी से बाहर जाते हैं तो धनी निर्धन छोटी बड़ी प्रजा अपनी शक्ति के अनुसार बुरा भला अनाज और फल जो कुछ उन के पास रहता है राजा के सन्मुख ला कर भक्ति के साथ उपहार देती हैं और प्रजा का प्रेम बढ़ाने के लिये राजा उसे प्रसन्नता से स्वीकार कर लेता है जिस में किसी प्रकार का दोष नहीं समझा जाता ॥ ७२ ॥

पाके पकये बिटप दल उत्तम मध्यम नीच ।
फल नर लहहिँ नरेस तिमि करि बिचार मन बीच ॥ ७३ ॥

नर बिटप फल दल पाके पकये लहहिँ तिमि नरेश उत्तम मध्यम नीच (फल लहँहि) मन बीच बिचार करि ॥

संसार में मनुष्य लोग वृक्ष के फल पत्ते को पक कर आप से आप गिरने पर, वृक्ष में पके हुये फल को तोड़ने, और कच्चे ही फल को वृक्ष से तोड़ कर पकाने पर, इन्हीं तीन उत्तम मध्यम नीच उपायों से फल पाते हैं, उसी प्रकार राजा तीन उपायों के द्वारा प्रजाओं से उपहार पाते हैं इस बात को अपने मन में बिचार लीजिये ।

अभिप्राय यह है कि मनुष्य-लोग पहले वृक्ष को लगाते हैं फिर उस को पशु-पक्षी से बचा कर पानी से सींच कर पालते पोसते हैं, तैयार होने पर जब फल लगते हैं और पक के भूमि पर गिरते हैं तो फल ले जा कर खाते हैं इसी प्रकार जो राजा धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन कर के उन की रक्षा करता है और अपनी प्रसन्नता-पूर्वक बिना माँगे जो कुछ वे देते हैं उसी को ले कर सन्तुष्ट होता है वह उत्तम, जो किसी प्रकार की सूचना वा अपने काम-दारों को

प्रेरणा से प्रजा को थोड़ी प्रसन्नता से उपहार लेता है वह मध्यम और जो काम-दारों के द्वारा सूचना करवा कर वा स्वयं आज्ञा दे कर प्रजा को अप्रसन्नता से उपहार लेता है वह नीच कहलाता है और वृक्ष के फलों को तोड़वा कर खानेवाले और कच्चे फलों को तोड़वा कर पाल के द्वारा पकवा कर खानेवाले किसान के समान है ॥ ७३ ॥

धरनि धेनु चरि धरम तिनु प्रजा सु-बत्स पन्हाय।
हाथ कछू नहिँ लागि हैँ किये गोष्ठ की गाय ॥७४॥

धरनि धेनु धरम तिनु चरि प्रजा बत्स पन्हाय, गोष्ठ की गाय किये कछु हाथ न लागिहै।

पृथ्वी-रूपी गौ धर्म-रूपी घास को खा कर प्रजा-रूपी अच्छे बछवे के (नाज-रूपी दूध से) अपने थन को भरती है। इस पृथ्वी-रूपी गौ को गोशाला में बन्धी ऊई गौ बनाने से कुछ लाभ न होगा।

अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार कुट्टी कुटाई गौ तृण आदि चर के बऊत प्रसन्न रहती है उसी प्रकार धर्मिष्ठ राजा होने से जब धर्म-रूपी तृण पृथ्वी पर बढ़ जाता है तब पृथ्वी अत्यन्त प्रसन्न रहती है और अन्न आदिक अधिकाई के साथ उत्पन्न कर के अपने स्वामी राजा और बछवा-रूपी पुत्र को आनन्द देती है और केवल गो-शाला में बन्धी गौ के समान थोड़ी सी घास दे कर दूध-रूपी कर दूहने से कुछ भी लाभ नहीं होता। जो राजा प्रजा को पुत्र के समान पाल-पोस के उस की प्रसन्नता से कर लेता है वह राजा दोनों लोक में सुख पाता है। रूपक अलङ्कार स्पष्ट है ॥ ७४ ॥

कण्ट कण्ट ह्वै पड़त गिरि साखा सहस खजूर।
गरहिँ कु-न्रिप करि करि कु-नय सो कु-चाल भुबि भूरि ॥ ७५ ॥

खजूर सहस साखा कण्ट कण्ट ह्वै सो गिरि पड़त भुबि कु-न्रिप भूरि कु-चाल कु-नय करि करि गरहिँ।

खजूर के वृक्ष की हजारोँ शाखा जिन की प्रत्येक गाँठ पर काँटे ही काँटे होते हैँ सो टुकड़ा टुकड़ा हो कर भूमि पर गिर पड़ती है पृथ्वी पर दुष्ट राजा लोग बहुत खराब काम श्रीर अनीति कर के गल जाते हैँ अथवा (सो कु-चालि भरि भुबि) उन्ही बुरे राजाश्रोँ की अनीति से पृथ्वी पर बहुत सी कु-चाल बुरी रीत फैल गई है॥

अभिप्राय यह कि जितनी गाठोँ से भरा हुआ खजूर वृक्ष अनेक काँटाश्रोँ के कारण टुकड़े२ हो कर गिर जाता है वही दशा कण्टक-रूप अनीति से भरे अधर्मी राजाश्रोँ की है जो आप गल जाने पर भी अपनी कुचाल से अपनी प्रजा को दुःखी कर छोड़ते हैँ॥ ७५॥

भूमि रुचिर रावन-सभा अङ्गद-पद महि-पाल।
धर्म राम-नय सीम बल अचल होत तिहुँ काल ॥ ७६॥

भूमि रुचिर रावन-सभा रुचिर महि-पाल अङ्गद-पद राम-नय सीम धर्म बल तिहुँ काल अचल होत।

ऊपर के कई एक दोहोँ मेँ कलियुग कुराज श्रीर अनीति का बर्णन कर के अब छहत्तर के दोहे से सुनीत का बर्णन करते हैँ।

अनेक रत्नोँ से भरी हुई यह पृथ्वी ही रावण की अत्यन्त सुन्दर सभा

है जिस पर धर्मिष्ठ राजा लोग अङ्गद जी के पाव हैं।सुन्दर रमणीय नीति-रूपी सीमा के धर्म के बल से अथवा महाराज राम-चन्द्र की सुनीति-रूपी धर्म की सीमा की शक्ति से तीनों समय में अचल रहते हैं।

अभिप्राय यह कि इस संसार में जो राजा सुन्दर नीति और धर्म से चलेगा वह अनेक विघ्न दुःख और शत्रुओं से बच कर रावण की सभा में अङ्गद जी के पाव के समान सदा दृढ़ रहेगा जिस प्रकार रावण की सभा में बड़े२ बलवान राक्षस आदि अङ्गद के पाव को हिलाते थे तो भी वह न डगा उसी प्रकार अनेक शत्रुओं के उठाने पर भी धर्मनीति युक्त राजा अचल रहेगा अङ्गद पक्ष में तिहुकाल शब्द का अर्थ आदि मध्य और अन्त समय और राजा पक्ष में प्रातः मध्याह्न और सायं अथवा वर्तमान भूत और भविष्यत् काल करना अच्छा होगा।

आशय यह कि जो राजा प्राचीन समय में धर्मनीति पूर्वक राज करते थे उन्हें कोई न हिला सका जो अब नीति पूर्वक करते हैं उन्हें कोई नहीं दुःख दे सकता है और जो सुधर्म औ सुनीति के साथ राज करेंगे कोई उन को न हिला सकेगा॥ ७६॥

प्रीति राम-पद नीति-रत धरम-प्रतीत सुभाय।
प्रभुहिं न प्रभुता परिहरै कबहुँ बचन मन काय॥ ७७॥

बचन मन काय राम-पद प्रीति-सुभाव नीति-रत सुभाव धरम-प्रतीत प्रभुता प्रभुहिं कबहुँ न परिहरै।

जिन राजाओं की प्रीति मनसा बाचा कर्मणा राम-चन्द्र के चरण

में रहती है और जो राजा अपने स्वभाव से राज-नीति में लगा रहता है और स्वभाव ही से धर्म में प्रीति रखता है ऐसे राजा को प्रभाव उत्साह और मन्त्र से उत्पन्न प्रभुता कभी नहीं छोड़ती अर्थात् जो राजा ईश्वर-भक्त धर्म-तत्पर हो कर राज-नीति से चलता है उस का राज सदा अचल बना रहता है और उस की सामर्थ्य कभी नहीं घटती है ॥ ७७ ॥

कर के कर मन के मनहिँ बचन बचन जिय जान।
भू-पति भलहिँ न परिहरहिँ बिजय बिभूति सयान॥
॥ ७८ ॥

बिजय बिभूति कर के कर मन के मनहिँ बचन बचन जिय जिय जान सयान भल भू-पतिहिँ बिजय बिभूति न परिहरहिँ॥

युद्ध में जय और सब प्रकार का ऐश्वर्य्य जिस को जीत हाथ में रहती है और मन की उदारता आदि गुण मन ही में तथा बचन के सत्यता आदि गुण बचन ही में बने रहते हैं ऐसे चतुर और सयाने राजा को रण में जय और सब प्रकार का ऐश्वर्य्य कभी नहीं छोड़ता है।

आशय यह कि जिन अङ्गों के जो ऐश्वर्य्य हैं वे उन्हीं में रहते हैं॥

द्वितीयार्थ।

(जिय जान) मन में निश्चय कर जानिये कि जिस राजा के हाथ से करने योग्य जो काम हैं सो हाथ में रहते हैं अर्थात् जब तक सिद्ध नहीं होते तब तक न दूसरे के हाथ जाने पावें न दूसरा जान सके और जिस काम को करने के लिये मन में बिचारता है

वह जब तक सिद्ध नहीं होता तब तक मन ही में रहता है मन की बात को दूसरा कोई नहीं जान सकता और बात के द्वारा जो होनेवाला है सो भी बात ही में गुप्त रहता है इस प्रकार राज-नीति के कामों को गुप्त रीत से करनेवाले राजा का पराजय कभी नहीं होता और ये बुद्धिमान और उत्तम महाराज कहाते हैं॥७८॥

गोली बान सु-मन्त्र सुर समुझि उलटि गति देखु।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु-बचन बिचारु बिसेखि॥ ७९॥

उत्तम मध्यम नीच प्रभु-बचन बिसेखि गोली बान सु-मन्त्र सुर बिचार उलटि गति समुझि देखु॥

उत्तम सब से भले उस से कम भले मध्यम और सभों से दुष्ट नीच इन तीन प्रकार के राजाओं की बात की विशेषता को गोली बाण और मात्रा स्वर को बिचारो अर्थात् जैसे गोली बन्दूक के मुख से निकल कर जब तक निसाने पर नहीं लगती तब तक पीछे नहीं फिरती उसी प्रकार उत्तम राजा का बचन जो मुख से निकला सो सिद्ध हुआ और मध्यम राजा का बचन बाण के समान है अर्थात् जिस प्रकार बाण निकलते समय देख पड़ता है चलनेवाले को यह आशा होती कि लक्ष्य को अवश्य वेधेगा परन्तु उस की गति दूर के लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकती यदि पूरी शक्ति हुई तो लक्ष्य में लगा नहीं तो बीच ही में गिर गया और नीच राजाओं के बचन मात्रा (सुर) के समान है अर्थात् सुनने में मात्रा का स्वर व्यञ्जन के अक्षर से मिला हुआ जान पड़ता है परन्तु अलगाने से व्यञ्जन

झूठा जान पड़ता है अर्थात् बिना स्वर की सहायता उस का उच्चारण ही नहीं होता उसी प्रकार कहते जान पड़ता है कि यह वचन अवश्य ही सत्य है परन्तु जब उस की सचाई का समय आता है तो पूरा नहीं पड़ता ॥ ७९ ॥

सत्रु सयाने सलिल इव राख सीस रिपु-नाव।
बूड़त लखि डगमगत अति चपरि चहूँ दिसिधाव ॥ ८० ॥

सयाने सत्रु सलिल इव रिपु-नाव सीस राखत डगमगत बूड़त लखि अति चपरि चहूँ दिसि धाव।

बुद्धिमान वैरी जल के समान हैं, वे अपने शत्रु को नाव के सदृश शिर पर रखते हैं परन्तु जब शत्रु नाव के समान डगमगा कर डूबने लगता है तो उसे देख कर चारो ओर से अत्यन्त बल के साथ लपट कर दौड़ते हैं।

अभिप्राय यह कि जैसे जल नाव को सदा अपने पीठ पर रखता है परन्तु किसी प्रकार यदि नाव डगमगानी तो चारो ओर से वेग के साथ उस में भर कर शीघ्र उसे डुबा देता है। उसी रीत बुद्धिमान राजा अपने शत्रु को आदर भाव से शिर पर चढ़ाये रहते हैं परन्तु जब देखते हैं कि उस के ऊपर कोई बिपत्ति आई है तो चारो ओर से लपट झपट कर उसे बिपत्तिरूपी सागर में दौड़ के ऐसा डुबा देते हैं कि वह जरा मूल से नष्ट हो जाता है ॥ ८० ॥

रैयत राज-समाज घर तन धन धरम-सुबाहु।
सत्यसु-सचिवहिँ सौंपि सुख बिलसहिँ निज नर-नाहु ॥८१॥

नर-नाहु धर्म-सुबाहु सत्यसु-सचिवहिँ निज रैयत राज-समाज घर तन धन सौंपि सुख बिलसहिँ।

राजा लोग धर्म-रूपी सुन्दर बाहु को धारन करनेवाले सत्य-रूपी मन्त्री को अपनी प्रजा राज-सेना घर के लोग अपना शरीर धन सौंप कर के आनन्द भोग करते हैं।

अथवा धर्म-रूपी सुन्दर बाहु-बल रखनेवाले राजा सत्य-रूपी मन्त्री को अपना अन्न धन सब सौंप के निश्चिन्त आनन्द करते हैं॥

अभिप्राय यह कि जिस राजा के धर्म बाहु हैं और सत्य मन्त्री हैं उस के निकट बिपत्ति नहीँ आती और धर्म तथा सत्य को धारन करनेवाला राजा सदा अकण्टक राज भोगता है॥ ८१॥

रसना मन्त्री दसन जन तोख पोख सब काज।
प्रभु कैसे न्रिप दान-दिक बालक राज समाज॥८२॥

रसना मन्त्री, दसन जन, सब काज तोख पोख, न्रिप प्रभु बालक से दानादिक के तोख पोख।

राजा के मन्त्री को जीभ के समान होना चाहिये कि भला बुरा सब यथार्थ बता देवे जिस प्रकार जिह्वा खट्टा मीठा सब का स्वाद बता कर पेट को दे देती है, दाँत के समान राजा के

कारोबारिओं को होना चाहिये जो भोजन को काट कूट के मुख को दे देते है, राजा को मुख के समान होना चाहिये कि दामादिक दे कर के प्रजा का बालक के समान पोषण पालन करे।

अभिप्राय यह कि जिस प्रकार दाँत सब वस्तुओं को काट छाट के पचने के योग्य बना के मुख को समर्पित करता है और जीभ सब स्वाद को यथार्थ चीखती है और इन दोनों की सहायता से उत्तम भोजन मुख को मिलता है और मुख भी उसे खा कर शरीर के छोटे बड़े सब अङ्गों को पोढा करता है उसी प्रकार राजा के मन्त्री और सेवकों को होना चाहिये कि सब अपनी कमाई राजा को दे और राजा जीभ के समान ले कर अङ्ग-रूपी सब का पोषण करे रामायण में कहा भी है।

> मुखिया मुख सो चाहिये खान पान को एक।
> पोखै पालै सकल अङ्ग तुलसी सहित बिबेक॥८२॥

लकड़ी डौवा करछुली सरस काज अनुहारि।
सु-प्रभु जु नाहिन परिहरहि सेवक सखा बिचारि॥८३॥

काज अनुहारि लकड़ी डौवा करछुली सरस जु सेवक सखा समाज नाहिन परिहरहि (सो) सु-प्रभु।

जिस प्रकार काम के अनुसार काठ, चिमचा, कलछुल बड़ी सुखदाई होती है उसी रीत अपने कामों को बिचार कर जो राजा छोटे बड़े नौकर चाकर और मन्त्रियाँ के समाज को नहीं त्याग करता है वह अच्छा राजा कहाता है।

अभिप्राय यह कि अपने २ समय पर सब वस्तु काम देती हैं रसोई के लिये काठ न हो वा रोटी उतारने सेकने के लिये चिमटा आदि वा दाल तरकारी आदि चलाने परोसने के लिये करछुल न हो तो बड़ी कठिनता भोगनी पड़े उसी रीत छोटे कामों को करने के लिये छोटे नौकर और बड़े२ प्रयोजनों के लिये बड़े २ बुद्धिमान मन्त्री न रहैं तो राज-काज में विघ्न हो सकता है इस कारण अच्छे राजा लोग बड़े छोटे सब प्रकार के लोगों को रखते हैं और उन को त्याग नहीं करते क्योंकि छुड़ा देने से वे जा कर शत्रु से मिल के राजा को बुराई भी कर सकते हैं॥८३॥

प्रभु समीप छोटे बड़े अचल होहिँ बलवान।
तुलसी बिदित बिलोकही कर अङ्गुलि अनुमान॥८४॥

अन्वय। प्रभु समीप छोटे बड़े अचल बलवान होहिँ। तुलसी कर अङ्गुलि अनुमान (प्रभु) बिलोकही (इति) बिदित॥

अपने स्वामी के निकट छोटे बड़े अचल निर्भय और बली बने रहते हैं। तुलसी-दास कहते हैं कि हाथ की अङ्गुलियों के समान अच्छे स्वामी छोटे बड़े सब को अपने२ काम के लिये आवश्यक देखते हैं यह बात लोक में प्रसिद्ध है॥

अथवा जिस प्रकार हाथ की पाँचो अङ्गुली समान गिनी जाती और मनुष्य पाँचो को काम-काजी और प्यारी मानते हैं किसी के भी काटने से समान पीड़ा होती है, सब को पूरी और बलवान रखने के लिये यत्न करते हैं उसी प्रकार अच्छे स्वामी करते हैं।

यदि "हाथ की पाँचो अङ्गुली बराबर" इस कहावत को दोहे में अन्तर्गत समझिये तो लोकोक्ति अलङ्कार होगा ॥ ८४ ॥

तुलसी भल बरनत बढ़त निज मूलहिँ अनुकूल।
सकल भाँति सब कहँ सुख-द दलन सहित फल-फूल ॥ ८५ ॥

तुलसी बरनत निज मूलहिँ अनुकूल दलन-सहित फल-फूल भल बढ़त सकल भाँति सब कहँ सुख-द (होत)।

तुलसी-दास कहते हैं कि (वृक्ष आदि) अपने मूल के अनुसार अर्थात् जड़ में पानी आदि देने से अपने पत्ता फल फूल आदि सब सहित भली भाँत बढ़ता और सब प्रकार सब के लिये सुख-दाई होता है उसी प्रकार राज अपने मूल राजा के अनुसार सब के लिये सुख-दाई होता है बढ़ता है ऐसा कवि वर्णन करते हैं॥

अभिप्राय यह कि राज में राजा सब का मूल है इस कारण राजा की भलाई बुराई से सब की भलाई बुराई होती है इस से सब के लिये उचित है कि राजा की भलाई करे ॥ ८५॥

स-धन स-गुन स-धरम स-गन स-जन सु-स-बल मही-प।
तुलसी जे अभिमान बिन ते त्रि-भुवन के दीप ॥ ८६ ॥

स-धन स-गुन स-धरम स-गन मही-प सु-स-बल, जे अभिमान बिन ते त्रि-भुवन के दीप।

सब प्रकार के धन पूरे कोष के सहित, शौर्य औदार्य आदि गुणों से युक्त, दान मान तप क्षमा दया आदि धर्मों से शोभित

और अच्छे२ नौकर चाकर और सेना से युक्त राजा बड़ा बली होता है। तुलसी-दास कहते हैं कि इन में जो राजा अभिमान रहित होते हैं वे स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तीनों लोकों में श्रेष्ठ हैं। ऐसे महाराजाओं का मिलना दुर्लभ है॥ ८६॥

साधन समय सुसिद्ध लहि उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनौ समय सम ते महि-मण्डल मूल॥ ८७॥

(जे) साधन समय सुसिद्धि लहि (जाहि) उभय साधन मूल अनुकूल तुलसी ते तीनौ समय सम महि-मण्डल मूल।

अपना कार्य सिद्ध करने के समय ही में जो लोग सिद्धि पाते हैं और जिस को इस लोक में सुख देनेवाले भोजन वस्त्र आदि और परलोक में सुख देनेवाले धर्म कर्म और राज्य के सब अष्टाङ्ग अनुकूल हैं उन के लिये तुलसी-दास कहते हैं कि लोक और परलोक की सिद्धि और कार्य की सफलता इन तीनों के समय पर सिद्ध हो जाने से वह राजा भूमण्डल के सब राजाओं के मण्डली में भी मुखिया गिना जा सकता है।

अभिप्राय यह कि सब प्रकार का सुख मिलना बड़े पुन्य का काम है। राज्य के सात अङ्ग, राजा मन्त्री मित्र कोष राज्य किला और सेना राज ये सब दृढ़ और अपने वश में रहैं लौकिक सुख के पदार्थ सुगन्ध, स्त्री, वस्त्र खान पान भोजन गहने और वाहन (सवारी) सब सुन्दर और उत्तम मिलें और जो मनोरथ करे उस को सिद्धि में किसी प्रकार का विघ्न न हो ऐसा राजा अवश्य

ही अपने राज समूह का भूषण कहा जा सकता है। जहाँ मङ्गल मूल पाठ हो वहाँ सब कल्याण का कारण ऐसा अर्थ करना चाहिये ॥ ८७॥

रामायन अनुहरत सिख जग भौ भारत रीत।
तुलसी सठ की को सुनै कलि कु-चालि परतीति ॥८८॥

(को) रामायन सिख अनुहरत जग भारत रीत भौ। तुलसी की को सुनै कलि सठ कु-चालि परतीति।

कौन रामायण की शिक्षा अर्थात् पिता की आज्ञा मानना शान्त स्वभाव हो कर काम करना परस्त्री हरण न करना आदि धर्म का अनुसरण करता है अथवा रामायण के समय का अर्थात् त्रेता युग जिस में तीन भाग पुन्य और एक भाग पाप था कौन अनुकरण करता है अर्थात् कोई नहीं करता है। संसार भारत के समान हो गया अर्थात् लड़ाई झगड़ा अपने २ अंश के लिये युद्ध डाह कपट इत्यादि के करने के कारण संसार भारत के समान कलि युग में हो रहा है अथवा कलि युग के आने के समय के कुछ पूर्व भारत हुआ इस कारण उस समय धर्म का एक ही पाव रह गया तो अब सब लोग बुरे समय के अनुसार पाप करने लगे। अब तुलसी-दास के उपदेश को कौन सुनता है कलि युग के दुष्टों को बुरी रीतों ही पर विश्वास और अनुराग है।

अभिप्राय यह कि कलि में रामायण के उपदेश की रीत पर चलनेवाले बहुत कम हैं राम के राज में जैसा धर्म था वैसा

होना कलि में बड़त कठिन है वा रामायण में तुलसी-दास जी ने जो उपदेश दिया है उस के अनुसार भी लोग नहीं चलते अब तो महाभारत के समान भाई के उचित अंश को न देने में परम हठी दुर्योधन से बड़ों की आज्ञा के विरुद्ध चलने वाले नृप होंगे और युद्ध कर सकुल नाश को पावेंगे।

"राम राज" का सुख जो कहावत हो गया है नीचे की चौपाइयों में तुलसी-दास वर्णन करते हैं।

चौपाई।

राम राज बैठे चयलोका। हरखित भए गए सब सोका॥
बैर न कर काह्न सन कोई। राम प्रताप विखमता खोई॥

दोहा।

वरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग॥

चौपाई।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिँ काहुहिँ व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं सुधरम निरत श्रुति नीती॥
चारिउ चरन धर्म जग माँहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
राम भक्ति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥
अलप मित्यु नहिँ कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब निरुज सरीरा॥
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिँ कोउ अन-धन लक्षण हीना॥
सब निर्दम्भ धर्म रत धरनी। नर अरु नारि चतुर शुभ करनी॥
सब गुनज्ञ सब पण्डित ग्यानी। सब क्रितग्य नहिँ कपट सयानी॥

दोहा।

राम राज बिहगेस सुनु सचराचर जग माहिँ।
काल करम सुभाउगुन क्रित दुख काहुहिँ नाहिँ॥

चौपाई।

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघु-पति कोसला॥
भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरणत हीनता घनेरी।
सो महिमा खगे-स जिन जानी। फिरि यह चरित तिनहुँ रति मानी॥
सो जाने कर फल यह लीला। कहहिँ महा मुनि सु-मति सु-सीला॥
राम राज कर सुख-सम्पदा। बरणि न सकहिँ फणीस सारदा॥
सब उदार सब पर-उपकारी। द्विज-सेवक सब नर अरु नारी॥
एक-नारि-व्रत रत नर भारी। ते मन बच निज-पति हितकारी॥

दोहा।

दण्ड यतिन कर भेद जह नर्त्तक न्रित्य-समाज।
जीतहिँ मनहिँ सुनिय अस राम-चन्द्र के राज॥

चौपाई।

फूलहिँ फलहिँ सदा तरु कानन। रहहिँ एक सङ्ग गज पञ्चानन॥
खग म्रिग बैर सहज बिसराई। सबनि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
कूजहिँ खग म्रिग नाना ब्रिन्दा। अभय चरहिँ बन करहिँ अनन्दा॥
सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गुञ्जत अलि लेचलु मकरन्दा॥
लता बिटप माँगे फल स्रवहीँ। मन भावते धेनु पय स्रवहीँ॥

ससि-सम्पन्न सदा रह धरणी। त्रेता भइ सत-जुग कीन्करणी॥
प्रकटे गिरि नाना मणि-खानी। जगदाऽऽतमा रूप पहिचानी॥
सरिता सकल वहैं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुख-कारी॥
सागर निज मर्यादा रहही। डारहिं रत्न तटनि नर लहही॥
सरसि-ज सङ्कुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस-दिसा विभागा॥

दोहा।

विधु महि पूर पियूख-रवि तप तेज न काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज॥

चौपाई।

कोटिन बाज-पेय प्रभु कीन्हे। अमित दान विप्रन कहं दीन्हे॥
श्रुति-पथ पालक धरम-धुर-न्धर। गुणा-तीत अरु भोग पुरन्दर॥
पति अनुकुल सदा रह सीता। सोभा-खानि सु-सील बिनीता॥
जानति क्रिपा-सिन्धु प्रभु-ताई। सेवति चरण-कमल मन लाई॥
यद्यपि गिह सेवक व सेकिनी। सभ प्रकार सेवा-विधिलि ते॥
निज कर गिह परिचर्य्या करहीं। रामचन्द्र आयसु अनुसरहीं॥
जेहि विधि क्रिपा-सिन्धु सुख मानहिं। सोइ पिय सेवा विधि उर आनहि॥
कौसल्याऽऽदि सासु गिह माही। सेवहिं सबे मान-मद नाही॥
उमा-रमा-ब्रह्माणि-वन्दिता। जगदम्बा सन्तत मनिन्दिता॥

दोहा।

जा के क्रिपा-कटाछ सुर चाहत चितवनि सोइ।
राम पदारबिन्द रत रहति सुभावहि जोइ॥

चौपाई ।

सेवहिं सानुकूल सब भाई । राम चरण रति प्रीति सुहाई ॥
प्रभु-पद कमल विलोकत रहहीं । कबहिं क्रिपाल हमहिं कछु कहहीं ॥
राम करहिं भ्रातन पर-प्रीती । नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥
हरखित रहहिं नगर के लोगा । करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा ॥
अह निसि विधिहिं मनावत रहहीं । श्री-रघु-बीर चरन-रति चहहीं ॥

रामचन्द्र के राज में धर्म का वर्णन यों किया है ।

सोचिय विप्र जो वेद विहीना । तजि निज धरम विखय लवलीना ॥
सोचिय न्रिपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना ॥
सोचिय वैस्य क्रिपण धनवाना । जो न अतिथि सिव-भक्ति सु-जाना ॥
सोचिय सूद्र विप्र-अपमानी । मुखर मान-प्रिय ग्यान-गुमानी ॥
सोचिय पुनि पति-बञ्चक नारी । कुटिल कलह-प्रिय इच्छा-चारी ॥
सोचिय बटु निज ब्रत परिहरई । जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई ॥

दोहा ।

सोचिय गिही जो मोह-बस करै धरम-पथ त्याग ।
सोचिय यति प्रपञ्च-रत बिगत बिबेक बिराग ॥

चौपाई ।

वैखानस सोइ सोचन जोगू । तप बिहाय जेहि भावत भोगू ॥
सोचिय पिसुन अकारण क्रोधी । जननि-जनक-गुरु-बन्धु-विरोधी ॥
सब बिधि सोचिय पर अपकारी । निज जन पोखक निर्दय भारी ॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई । जो न छाड़ि छल हरि-जन होइ ॥

"राम राज" यह आज कल कहावत हो गया है इस से उस का वर्णन दिखलाया ॥ ८८ ॥

सु-हित सुख-द गुण-जुत सदा काल-जोग दुख होय।
घर धन जारत अनल जिमि त्यागे सुख नहिँ कोय ॥८९॥

सदा सु-हित सुख-द गुण-जुत ते काल जोग दुख होय। जिमि अनल घर धन जारत त्यागे कोय सुख नहिँ ॥

जो वस्तु सर्वदा हित करनेवाली है जैसे कमल के लिये सूर्य तथा सदा सुख देनेवाले जैसे सस्य के लिये जल और सब दिन उत्तम गुणयुत दूध भी समय के अनुसार दुखदाई होता है जैसे शीत-काल में अग्नि सुखदाई होती है परन्तु समय पा के वही अग्नि घर धन में लग जाती है तब उन्हें जला के राख बना देती है परन्तु सब दिन के लिये उस के त्याग देने में सुख नहीँ होता है ॥

अभिप्राय यह कि यद्यपि सूर्य का नाम कमल-बन्धु है तो भी जल न रहने पर उसे सुखा डालते हैं। जल खेती बारी के लिये बहुत अच्छा है तो भी अधिक जल होने से सस्य सड़ जाता है। घी दूध आदि भोजन निर्दोष है तो भी ज्वर आदि कई एक रोगों में दुख-दाई होता है बिना अग्नि संसार का काम नहीँ चल सकता है परन्तु अधिक अग्नि होने से असह्य हो जाता है इस कारण इन सब वस्तुओं को सब दिन के लिये त्याग करना उचित नहीँ है केवल भला बुरा समय देख के काम करना चाहिये ॥ ८९ ॥

तुलसी सर-वर खम्भ जिमि तिमि चेतन घट माहिँ।
खल न तपन हुँ तन सो समुझ सु-बुध-जन ताहि ॥९०॥

तुलसी जिमि सर-वर खम्भ तिमि चेतन घट माहिं तपन डूं न सूख ताहि सु-बुध-जन सूझ ॥

तुलसी-दास कहते हैं कि जैसे उत्तम तालाव में खम्भा गड़ा रहता है उसी प्रकार चैतन्य-स्वरूप जीवात्मा शरीर में रहता है और सूर्य्य के घाम से वह खम्भा नहीं सूखता इस बात को अच्छे विद्वान लोग समझते हैं। खम्भा जल में रहता है परन्तु जलमय नहीं हो जाता है उसी प्रकार आत्मा शरीर में रहता है परन्तु शरीरमय नहीं हो जाता। परमात्मा सर्व दोष-हीन निर्लेप है ॥

(द्वितीय प्रासङ्गिकार्थ)।

जैसे सरोवर में खम्भा रहता है और जल के ठण्ढेपन से रसीला बना रहता है और सूर्य के घाम से भी नहीं सूखता है वैसे ही (घट) शरीर में आत्मा है जिसे पण्डित लोग समझते हैं और जिस का जैसा अपराध हो उसे वैसा ही दण्ड देते हैं परन्तु त्याग नहीं करते ॥ ९० ॥

तुलसी झगड़ा बड़न के बीच परहु जनि धाय।
खड़े खोह पाहन दोऊ बीच रूद्द जरि जाय ॥ ९१ ॥

तुलसी बड़न के झगड़ा बीच धाय जनि परहु खोह पाहन दोऊ खड़े रूद्द बीच जरि जाय ॥

तुलसी-दास कहते हैं कि बड़ो की लड़ाई के बीच दौड़ कर मत पड़ो इस में दृष्टान्त देते हैं कि लोहा पत्थर जब आपस में रगड़े जाते हैं तो बीच की रूई जल जाती है ॥

अभिप्राय यह कि जब चकमक पत्थल में से आग निकालने के लिये लोहे से ठोकते हैं तो आग निकल के बीच की रूई को भस्म कर डालती है और पत्थल और लोहे की कुछ हानि नहीं होती है उसी रीत दो बड़े २ जनों में जब युद्ध होने लगता है तो छोटों का उन के बीच पड़ना भला नहीं होता क्योंकि बिचबई मारा जाता है ॥ ९१ ॥

अरथ आदि इन परिहरहु तुलसी सहित बिचार।
अन्त गहन सब कहँ सुने सन्तन मत सुख-सार ॥९२॥

अरथ आदि सहित बिचार इन परिहरऊ, तुलसी सन्तन मत अन्त गहन सब कहँ सुखसार सुने ॥

अर्थ, धन, धर्म, पुण्य काम, भोग और मोच ये चार पदार्थ हैं तिन के सङ्ग्रह में बिचार के साथ (इन) हिंसा छोड़ देना चाहिये अर्थात् धन और धर्म के बढ़ाने में मनसा वाचा कर्मणा किसी को पीड़ा न देना चाहिये और बिचार के साथ अपराधी को दण्ड देना उचित है तुलसी-दास कहते हैं कि साधु जनों के मत के अनुसार अन्त समय में (गहन) बन में जा बसना सब के लिये सुखदाई होता है ॥

नीति में लिखा है कि,—

"प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम् ।
तृतीये नार्जिता कीर्तिश्चतुर्थे किं करिष्यति ॥"

१ पहली अर्थात् बाल्यावस्था में विद्या पढ़ना, द्वितीय युवावस्था

में धन फिर धर्म से उत्पन्न यश और अन्त में चौथे पन में बन में जा कर ईश्वर का भजन करना उचित है। इस अवस्था में शक्ति-हीन होने के कारण मनुष्य से अर्थ आदि का उपार्जन नहीं हो सकता ॥ ८२ ॥

गहु उकार विविचार पद मा फल हानि बिमूल।
अहो जान तुलसी जतन बिन जाने इव सूल ॥ ८३ ॥

उकार विविचार पद गहु तुलसी अहो (तथा) मा फल हानि बिमूल (कहु) बिन-जान जतन सूल इव ॥

उकार तर्क के सहित विशेष विचार युक्त जो बात है उसे ग्रहण करो अर्थात् विशेष तर्कना और विवेक के साथ काम में लगो क्योंकि "बिना विचारे जो करै सो पाछे पछताय" बिना तर्क और विचार के जो काम किया जाता है उस में पीछे से दुःख होता है विचार होने पर तुलसी-दास कहते हैं कि (अहो) आश्चर्य कारक जो काम हैं उन्हें भी तू जानेगा और (मा) निषेध युक्त जो काम हैं जिन कामों का करना शास्त्र में मना है उन के फल को हानि निर्मूल कर डालो अर्थात् वैसे कामों को कभी न करो। जब तुम को विवेक होगा तब आप ही तुम शास्त्र-निषिद्ध काम न करोगे बिना ज्ञान का जो काम करने में यत्न किया जाता है सो (सूल) पीड़ा देनेवाले के समान होता है भले काम से भी बुरा फल होता है जैसे राजा नृग ने बिना बिचार एक गौ दो ब्राह्मणों को दी थी उस से दुख पाया। विचार और तर्क के साथ सब काम उत्तम होते हैं इस से विचार और तर्क अवश्य कर्तव्य है ॥ ८३ ॥

नीच निरावहिँ निरस तरु तुलसी सींचहिँ ऊख।
पोखत पयद समान जल बिखय ऊख के रूख॥ ९४॥

अन्वय। तुलसी नीच निरस तरु निरावहिँ पयद समान जल बिषय ऊख के रूख पोखत सींचहिँ।

संसार के मूर्ख लोग ज्ञानियों के लिये सुखदाई वैराग्य हीन रहने के कारण विषय-रस रहित नीरस वैराग्य-रूपी वृक्ष को उखाड़ के फेंक देते हैं और मेघ के समान जल से विषय-रूपी सरस ऊख के वृक्ष को बढ़ाते और सींचते हैं।

अभिप्राय यह कि संसार की उलटी रीत पड़ गई है जो लोग ज्ञान वैराग्य हरि-भक्ति आदि की ओर मन लगाते हैं वे नीरस समझे जाते हैं क्योंकि ये इस लोक के व्यवहार से कुड़ा कर परलोक में मन लगाते हैं और जो लोग विषय वासना में लीन रह कर संसारी सुख में जी लगाते हैं वे सरस समझे जाते हैं परन्तु इस के विरुद्ध काम करने से मनुष्य को अधिक सुख होता है लौकिक सुख नश्वर होने के कारण अन्त में दुखदाई होता है॥ ९४॥

लोक बेद हूँ लौँ दगी नाम भले को पोच।
धरम-राज जम-राज जम कहत सकोच न सोच॥ ९५॥

ऊपर के दोहे में कह चुके हैं कि लोक की उलटी रीत है अब उसी बात का उदाहरण दिखाते हैं

अन्वय। पोच नाम को भूल लोक वेद हूं सो हगी धर्म-राज (को) यम-राज यम कहत सकोच सोक न।

लोक में ऐसे मूर्ख हैं कि अच्छा नाम कहने में वे दुःख पाते हैं। सो यह बात केवल लोक ही में नहीं वरन वेद तक प्रसिद्ध है।

नीच लोग नाम पुकारने में भी भूल करते हैं धर्म-राज ऐसा उत्तम नाम उत्तम लोग कहते हैं उन से जो मध्यम हैं वे यम-राज कहते हैं और (पोच) नीच लोग बिना सङ्कोच और विचार यम कहते हैं। बड़ों के नाम को बिगाड़ने से अपराध होता है सो छोटे लोग यह बात नहीं विचारते बिना सङ्कोच बड़ो के नाम को बिगाड़ते हैं और पुराण, धर्मशास्त्र, उपनिषत् और वेद में भी यह बात मिलती है ऐसा तुलसी-दास कहते है ॥९५॥

तुलसी देवल राम के लागे लाख करोर।
काक अभागे हगि भरँ महिमा भएउ न थोर॥९६॥

दो दोहों में दुष्टों की दुष्टता का वर्णन कर के अब इस दोहे से यह बात प्रमाणित करते हैं कि इस से बड़ो का कुछ बिगाड़ नहीं होता है।

अन्वय। तुलसी राम के देवल लाख करोर लागे (परन्तु) अभागे काक हगि भरँ महिमा थोर न भएउ।

तुलसी-दास कहते हैं कि राम के मान्दिर में लाखों करोड़ों

रुपये लगते हैं परन्तु अभागे कौवे उस पर भी हग भरते हैं तो इस से राम जी के देवालय का माहात्म्य कम नहीं होता।

उसी प्रकार यदि वैराग्य और भक्ति की निन्दा दुष्ट लोग करते हों तो भी उन का माहात्म्य कम नहीं होता।

"तुलसी-दास के दूसरे स्थान के वर्णन के अनुसार दुष्टों के उपहास से साधुओं का माहात्म्य बढ़ता है उन्हों ने रामायण में कहा है।

खल उपहास होइ भल मोरा।
काक कहहिँ पिक कण्ठ कठोरा॥

इस कारण साधु और सज्जनों को भक्ति और परोपकार करने से हटना न चाहिये चाहे दुष्ट जन कितना भी उपद्रव करें॥ ८६॥

भलो कहहिँ जाने बिना को अथवा अपवाद।
तुलसी गाँवर जानि जिय करब न हरख बिखाद॥८७॥

अन्वय। जाने बिना भलो कहहिँ अथवा को अपवाद (देहिँ) तुलसी गाँवर जानि जिय हरख बिखाद न करब।

बिना जाने चाहे कोई भला कहे वा कोई दोष लगावे तो उसे (गाँवर) अज्ञान समझ कर बुद्धिमान को अपने मन में उस के कहने पर हर्ष वा विषाद न करना चाहिये।

अज्ञानी और गँवारों की बात पर ध्यान देने से दुःख को छोड़ सुख नहीं होता इस लिये गोसाईँ तुलसी-दास कहते हैं कि इन की बात पर बुद्धिमानों को ध्यान ही न देना चाहिये॥ ८७॥

तन-धन महिमा धर्म जेहि जा कहँ सह अभिमान।
तुलसी जियत विडम्बना परिनाम हुँ गति जान॥९८॥

अन्वय। जेहि धर्म-सह अभिमान तन-धन महिमा (ता कहँ) जियत बिडम्बना परिनाम हुँ (बिडम्बना) गति जानि।

तुलसी-दास कहते हैं कि जिस मनुष्य का धर्म्म आचरण करना अहङ्कार के सहित है, और अपने शरीर और धन की बड़ाई देखलाने के लिये है, उन के लिये जीते जी इस संसार में नकल है, अर्थात् लोग संसार में नकल कह के उस की हंसी करते हैं, और अन्त में भी ऐसी ही नकल की गति जाननी चाहिये।

अभिप्राय यह कि जो धर्म्म का आचरण अपने शरीर की बड़ाई वा धन की बड़ाई देखलाने के लिये किया जाता है, और दम्भ और अभिमान से भरा रहता है, उस से इस लोक में दुर्नाम और निन्दा होती है और परलोक में भी विशेष फल नहीं होता, इस कारण निरहङ्कार और निर्दम्भ हो कर धर्म्म करना चाहिये॥९८॥

बडो बिबुध दरबार तेँ भूमि भूप-दरबार।
आपक पूजक देखियत सहत निरादर-भार॥९९॥

अन्वय। भूमि भूप-दरबार बिबुध-दरबार तेँ बड़ो आपक पूजक निरादर भार सहत देखियत।

पृथिवी पर राजाओं का दरबार देवताओं की सभा से भी बड़ा जान पड़ता है क्योंकि जापक अर्थात् राजा के मति के विरुद्ध जप और पूजा करनेवाले बड़े अपमान को सहते हुये देखे जाते हैं।

अभिप्राय यह कि इस लोक में मनुष्य के लिये परलोक का दण्ड वा किसी देवता की दी यातना वैसी कठिन और भारी नहीं जान पड़ती क्योंकि उस का दण्ड भविष्यत् में होनेवाला है, परन्तु भूमि के क्रोधी राजाओं का डर अधिक कार्य्यकारी होता है, क्योंकि तुरन्त दण्ड पाने के डर से लोग चोरी आदि बुरे काम से दूर रहते हैं, और जो कोई यहाँ के राजाओं की विरुद्ध बातें दूसरे राजाओं से कहता है, या ऐसे राजाओं की पूजा (भक्ति) छोड़ कर दूसरों की भक्ति करता है, उस को अनेक प्रकार का दण्ड मिलता है, जैसे प्रह्लाद ने अपने पिता दैत्यराज हिरण्य-कश्यप के मत के विरुद्ध विष्णु की भक्ति दिखलाई इस लिये अनेक प्रकार का दण्ड उन्हें सहना पड़ा।

आज कल भी जो कोई राजा के विरुद्ध काम करता है, अनेक दण्ड पाता है ॥९९॥

खग-मृग मीत पुनीत किय बन हुँ राम नय-पाल।
कुनय बालि रावन घरहिँ सुखद बन्धु किय काल॥१००॥

अन्वय। पुनीत नयपाल राम बनहूँ खग-मृग मीत किये कु-नयपाल बालि रावन घरहिँ सुखद बन्धु काल किय।

पवित्र सुनीति के पालन करनेवाले रामचन्द्र ने बन में भी नीतिमार्गी पक्षी (जैसे जटायु आदि) और पशु (जैसे जामवन्त) रिच्छों के राजा और सुग्रीव बानरों के राजा को अपना मित्र बनाया. और दुर्नीति को पालन करनेवाले बालि और रावण ने अपने घर

ही में सुखदाई निज भाई सुग्रीव और विभीषण को अपना काल अर्थात् मृत्यु देनेवाले शत्रु किया।

अभिप्राय यह है कि अच्छी नीति के साथ चलनेवाले मनुष्य घर वन खदेश परदेश सब स्थान में सुख पाते हैं, और क्रूर-स्वभाव और अपस्वारथी लोग चाहे घर चाहे वन जहां रहें दुःख पाते हैं, इस कारण मनुष्य को सुनीति के साथ चलना चाहिये॥१००॥

राम-लखन विजयी भये बन हुँ गरीब-नेवाज।
सुखर बालि-रावन गये घर ही सहित समाज॥१०१॥

अन्वय। गरीब-नेवाज राम-लखन बनहुँ विजयी भये मुखर बालि-रावन घरहीँ सहित समाज गये।

दुखियों पर दया करनेवाले राम-लक्ष्मण ने वन में भी रावण आदि बड़े बड़े शत्रुओंको विनाश कर जय लाभ किया. परन्तु कटु-भाषी बालि और रावण अपने घर ही में अपनी सेना और परिवार के सहित विनाश को प्राप्त हुये।

पहले (९९) दोहे में जो बात कह चुके हैं दृढ़ता देखलाने के लिये और उसी अर्थ को अधिक पुष्ट करने के लिये इस दोहे में भी वही विषय वर्णन किया। इस से यह सूचित हुआ कि कुनीति दुःख-भाव सर्वथा त्यागने योग्य हैं क्योंकि इन के नहीं त्यागने से जब बालि और रावण के ऐसे प्रतापी धुरन्धर राजा स-कुल नष्ट हुये तो आज कल्ह के साधारण राजाओं के विषय में क्या कहना है।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥ १०१ ॥

द्वारे टाट न दै सकहिँ तुलसी जे नर नीच।
निदरहिँ बलि हरिचन्द कहँ कहु का करन दधीच
॥१०२॥

तुलसी जे नर नीच, द्वारे टाट न दे सकहिँ बलि हरिचन्द कहँ निदरहिँ करन दधीच का कहुँ।

ऊपर सुनीति से चलनेवाले राजाओं का वर्णन कर के १०२ दोहे से दुर्जनों के स्वभाव का वर्णन करते हैं॥

तुलसी-दास कहते हैं कि जो लोग स्वभाव के कुटिल और नीच हैं वे अपने द्वार पर आये हुये याचकों को टाट तक नहीं दे सकते। परन्तु राजा बलि और हरिचन्द्र की निन्दा करते हैं और कहते हैं कि मेरे सामने करण और दधीचि क्या हैं। ॥१०२॥

तुलसी निज कीरति चहहिँ पर कीरति को खोय।
तिन के मुँह मसि लागि हैं मिटिहि न मरिहैं धोय॥
१०३ ॥

अन्वय। तुलसी (जे) पर कीरति कहँ खोय निज कीरति चहहिँ तिन के मुँह मसि लागि हैं धोय मरिहैं (परन्तु) मिटिहि न।

अर्थ। तुलसी-दास कहते हैं कि जो लोग दूसरे की नामवरी

को मिटा कर अपना यश बढ़ाना चाहते हैं उन के मुख में कारिख लगेगा और धोते२ वे मर जावेंगे तौ भी नहीं मिटेगा ।

आशय यह कि जो कोई ईर्षा और द्वेष के कारण दूसरे के यश को नाश करना चाहता है और उस के द्वारा अपने यश को बढ़ाना चाहता है वह अपनी भलाई न कर बुराई करता है क्योंकि उस का यश तो कुछ होता नहीं वरन दुर्यश फैलता है लोग उसे दुष्ट और पर कीरति को घटानेवाला कह के इस लोक में उस की निन्दा करते हैं और परलोक में यहाँ के दुर्नाम के कारण वह नरक-गामी होता है ॥ १०३ ॥

नीच चङ्ग-सम जानिबो सुनि लखि तुलसी-दास ।
ढीलि देत महिँ गिरि परत खैँचत चढ़त अकास ॥ १०४ ॥

अन्वय । तुलसी-दास नीच सुनि लखि चङ्ग सम जानिबो ढीलि देत महिँ गिरि परत खैंचत अकास चढ़त ।

तुलसी-दास कहते हैं कि नीचों की रीति सुन कर और देख कर उन्हें पतङ्ग के समान जानना चाहिये क्योंकि ढिलाई देने से भूमि पर गिर पड़ते हैं, और खींचने से आकाश पर चढ़ जाते हैं ।

आशय यह है कि जिस प्रकार पतङ्ग हलका है वैसे ही दुष्ट जन भी हृदय के हलके होते हैं जैसे पतङ्ग की डोरी ज्यों २ ढीली कीजिये अर्थात् बढ़ाइये त्यों २ वह नीचे को गिरता जाता है उसी प्रकार जैसे जैसे दुष्टों के सघ स्नेह-रूपी डोरी को बढ़ाइये

तैसे तैसे वे नीचे हो कर अपनी निचाई दिखलाते हैं परन्तु जो स्नेह-रूपी डोरी को खींच लीजिये अर्थात् निर्मोह हो के उन को दण्ड दीजिये तो वे ठीक रीति से चलते हैं जैसे पतङ्ग की डोरी को खींचिये तो वह आकाश में ठीक रीति से उड़ने लगता है गिरता पड़ता नहीं "आर्यवत्स कुटिलेषु हि नीतिः" दुष्टों के सङ्ग सीधापन वा सद्व्यवहार नीतिवर्धक नहीं होता है उन के साथ कड़ाई करने ही से वे सीधे प्रकार से चलते है। किसी२ टीकाकारों ने "डोरी खींचने" का अर्थ स्नेह ज्यादा करना लिखा है सो भ्रम सा जान पड़ता है क्योंकि स्नेह-रूपी डोरी को खींच लेना जिस प्रकार पतङ्ग को बढ़ने से रोकता है उसी रीति प्रीति की डोरी खींच लेना अर्थात् कम कर देना भाषा में अधिक बोलते हैं॥ १०४॥

सह-बासी काचो भखहिँ पुर-जन पाक प्रबीन।
काल-छेप केहि बिधि करहिँ तुलसी खग-मृग-मीन॥
१०५॥

अन्वय। सह-बासी काचो भखहिँ पुर-जन पाक-प्रबीन, तुलसी खग-मृग-मीन केहि बिधि काल-छेप करहिँ॥

साथ के रहनेवाले कच्चा ही खा जाते हैं और नगर के निवासी मार कर ले जाते और सुन्दर मांस रींध कर भोजन करते हैं ऐसी अवस्था में तुलसी-दास कहते हैं कि छोटे२ पक्षी, मृगादि पशु और मछलियाँ किस प्रकार अपने जीवन-काल को सुख पूर्वक बिता सकती हैं अर्थात् नहीं बिता सकतीं।

कहने का अभिप्राय यह है कि दुर्बल और सीधे स्वभाववाले जीवों का इस संसार में सुख से रहना बहुत कठिन है जैसे छोटी२ चिड़ियों को बड़े२ बाज आदिक मार कर कच्चा ही खा जाते हैं और हरिण शशकादि पशुओं को बाघ और चीता आदि सह-वासी ही मार कर खा जाते हैं और छोटी२ मछलियों को उन की साथी बड़ी बड़ी मछलियाँ कच्चा ही निगल जाती हैं और मनुष्य लोग इन को पकड़ के घर लाते तब मसाला लगाते और पका कर खाते हैं इस प्रकार दुर्बल जनों को एक ओर से अरोसी-परोसी दुःख देते और दूसरी ओर से राजा आदि भी दण्ड दे कर क्षय-दाई होते हैं इस कारण बहुत सीधेपने से चलने में संसार में सुख-पूर्वक निर्वाह नहीं हो सकता है तो जहाँ जैसा देखना वहाँ वैसा बर्ताव करना उचित है ॥ १०५ ॥

बडे पाप बाढे किये छोटे करत लजात ।
तुलसी ता पर सुख चहत बिधि पर बहुत रिसात ॥
१०६ ॥

दुष्ट जनों का यह स्वभाव है कि वे अत्यन्त अनीत करने में भी नहीं डरते ॥

वे बड़२ पापों में भी जो बढ़ कर पाप हैं उन को करते हैं और छोटे२ पाप करने में अथवा पुण्य के द्वारा उन पापों को छोटा बनाने में लजाते हैं। तिस पर भी सुख चाहते हैं और सुख न पाने पर क्रोध कर कहते हैं कि दैव परम दुष्ट है।

बड़े पापी छोटे मोटे जीवों को मारने में सन्तुष्ट न हो कर ब्रह्म-हत्या करते हैं। मद्यप साधारण मदिरा के पान से सन्तुष्ट न हो कर सुरा आसव आदि महा२ मद्य को पीते हैं। चोर लोग छोटी२ चोरी से असन्तुष्ट हो कर ब्राह्मण आदिक का सोना चोराते हैं। परस्त्री-गामी लोग साधारण स्त्रियों से न सन्तुष्ट हो कर अपने गुरु की स्त्री चाची मामी आदि के सङ्ग का महा-पाप बटोरते हैं और इन पापों के दूर करने का उपाय यज्ञ जाप हरि-भजन तीर्थ-भ्रमण सत्सङ्गा-ऽऽदि को नहीं करते तो उन का पाप कैसे कटे॥१०६॥

सुमति निवारहिँ परिहरहिँ दल सुमन-हुँ सङ्ग्राम।
स-कुल गये तनु बिन भये साखी यादव काम॥१०७॥

अन्वय। सुमति निवारहिँ (सहाय) परिहरहिँ दल सुमन-हुँ संग्राम, (जय) परिहरहिँ सकुल गये यादव तनु बिन भये काम साखी॥

जो लोग सुबुद्धि वा मेल को त्याग करते हैं और अपने सहायक साथियों को छोड़ देते हैं वे पत्ते और फल से भी युद्ध करने में जय-लक्ष्मी को त्याग करते हैं कुल के सहित नाश को प्राप्त हुये। यदुवंशी लोग और शरीर को नाश करनेवाला कामदेव इस विषय में साखी हैं।

आशय यह है कि कुमति और आपस का बिगाड़ ऐसा बुरा है कि इन में पड़े हुये लोग बहुत तुच्छ वस्तुओं के युद्ध में भी नाश को पाते हैं। जलक्रीड़ा करने के समय मधुमत्त होने से यदुवंशी क्षत्रियों के बीच आपस में छेड़ छाड़ हुई जिस के कारण एक प्रकार की घास

ले कर परस्पर लड़ने लगे और लड़ते लड़ते निर्मूल हो गये और कामदेव ने बिना विचारे अहङ्कार के मारे महादेव जी के ऊपर अपना फूलरूपी वाण सन्धाना और शिवजी के कोप से अपने शरीर को भस्म किया। इन दो दृष्टान्तों से यह बात प्रगट होती है कि ऐक्यता और विचार जयलाभ करने के लिये परम आवश्यक है और फुटमत तथा कु-बुद्धि नाश के कारण हैं। इस कारण इन को परित्याग करना अवश्य चाहिये॥१०७॥

कलह न जानब छोट करि कठिन परम परिनाम।
लगत अनल अति नीच-घर जरत धनिक-धन-धाम॥
१०८॥

अन्वय। कलह छोट करि न जानब परिणाम परम कठिन, अति नीच-घर अनल लगत धनिक-धन-धाम-जरत॥

मनुष्य को चाहिये कि झगड़े को छोटा कर कभी न जाने क्योंकि उस का फल अन्त को बड़ा हानि-कारक होता है इस में दृष्टान्त देते हैं कि निर्धन नीच के घर में आग लगती है जिस से आसपास के रहनेवाले बड़े२ धनी-लोगों के घर और धन जल कर राख हो जाते हैं। कलहरूपी अग्नि छोटी भी हो तौ भी बढ़ते बढ़ते इतनी बढ़ सकती है कि सर्वस नाश कर सकती है। इस कारण कलह से सदा दूर रहना चाहिये॥१०८॥

जूझे तें भल बूझिबो भलो जीति तें हारि।
जहाँ जाय जहँडायिबो भलो जु करिय विचार॥१०९॥

अन्वय । जूझे तें बूझिबो भल, जीति तें हारि भलो, जु बिचार करिय जहाँ जाय (तहाँ) अहंड़ायिबो भलो ।

बिना बिचारे लड़ाई छेड़ देने की अपेक्षा बिचार कर सहना अति उत्तम है । अबिचार पूर्वक जीत पाने से हारना उत्तम है ।

यदि बिचार कर शान्ति को धारण कीजिये तो जहाँ जाना वहाँ अपने को ठगा देना भला है ।

"शतं दद्यान्न विवदेत्" सौ देना परन्तु झगड़ा न करना इत्यादि नीतिवाक्यों से और युद्ध में जय पराजय के अनिश्चय से शान्ति और क्षमा करनेवालों का यह मत है कि झगड़ा करना सर्वथा त्याज्य है। बहुत स्थानों में ऐसा देखा गया है कि अति अन्याय से न्यायवाले लोग बड़े भारी राक्षस के राजा को जीत लेते हैं, और बड़े २ बिजयी भी अन्त को जीते जा कर दुःख सागर में डूबते हैं। जैसे इसी ग्रन्थ में रामचन्द्र और रावण का उदाहरण दिखला चुके हैं और आगे कौरव औ पाण्डवों का उदाहरण दिखलावेंगे। यद्यपि परशुराम जीने २१ वार पृथिवी को निःक्षत्रिय किया परन्तु अन्त-समय रामचन्द्र से हार मान पछिताये ॥ १०९ ॥

तुलसी तीनि प्रकार तें हित अनहित पहिचान ।
परबस परे परोस-बस परे मामला जान ॥ ११० ॥

अन्वय । तुलसी हित अनहित तीनि प्रकार तें पहिचान । परबस परे परोस-बस मामला परे जान ॥

संसार में सबे मित्र और शत्रु तीन प्रकार से पहिचाने जाते हैं

अर्थात् जब कोई किसी सङ्कट में पड़ के दूसरे का बन्धुआ हुआ, अथवा परोस में जब आग लगी वा किसी के घर में चोर पैठा तो रात को परोसियों से सहायता मांगने के समय परोस के हित अन-हित की परीक्षा होती है और जब राजा के यहां कोई (अभियोग) वा मामला अपने ऊपर पड़ा तब भी अपने मित्र और शत्रु पहिचाने जाते हैं।

आशय यह है कि संसार के लोगों के भिन्न२ स्वभाव के कारण किसी के मन का सहज में जानना कठिन है। क्योंकि जो लोग स्वाभाविक मित्र हैं वे कड़ी बात और दोष कह कर अपने मित्र को क्रोधित करते हैं। जो लोग ऊपर के मित्र और भीतर के शत्रु हैं वे ऐसी मीठी मीठी बातें बना के बोलते हैं कि सुननेवाला उस को अपना परम हित समझ प्यार करने लगता है। ऐसी अवस्था में शत्रु मित्र का पहिचानना कठिन हो जाता है इस कारण नीति में इन के पहिचानने के लिये सु-अवसर दिखलाये गये हैं अर्थात् जब कोई मनुष्य बन्धन में पड़ता है तो उस के स्वाभाविक मित्र उसे छोड़ाने के लिये और स्वाभाविक शत्रु उसे फँसाने में लग जाते हैं और उदासीन लोग चुप चाप बैठ रहते है। इसी प्रकार घर में अग्नि और चोर भय होने से तथा राजकीय दोष अपने ऊपर लगने से शत्रु मित्र पहिचाने जाते हैं। नीतिशास्त्र में लिखा है।

"उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः"॥

पुत्र जन्मादि उत्सव श्राद्ध मरणादि व्यसन युद्ध राजद्रोह अर्थात्

अथवा वा राजा के स्थिति के गड़बड़ होने पर राजा के द्वारे पर अर्थात् मामला पड़ने पर श्मशान में अर्थात् किसी के मर जाने पर जो खड़ा हो कर सहायता करता है वह सच्चा बन्धु कहलाता है ॥११०॥

दुरजन बदन कमान सम बचन विमुञ्चत तीर ।
सज्जन उर बेधत नहीं छमा सनाह सरीर ॥ १११ ॥

दुरजन बदन कमान सम बचन तीर विमुञ्चत । चमा सनाह शरीर सज्जन उर नहीं बेधत ।

दुष्ट लोगों के मुख-ही धनुष के समान हैं जो बचन-रूपी तीर को छोड़ा करते हैं परन्तु चमा-रूपी कवच शरीर में रहने के कारण सज्जनों के मन को नहीं बेधते ॥

दुष्टों का यह सुभाव होता है कि वे सदा कटु-बचन बोला करते हैं। परन्तु सज्जन लोग उन के कटु बचन पर कुछ ध्यान नहीं करते।

चमा-रूपी कवच रहने के कारण सज्जनों के हृदय में दुर्ज्जनों के बचन का कुछ भी घाव नहीं लगता। चमा अत्यन्त उत्तम गुण है। इसे त्याग न करना चाहिये। किसी२ पुस्तकों में " दुरजन बचन " पाठ है सो छापे की भूल जान पड़ती है क्योंकि उसी के अनन्तर फिर बचन है। दो वार बचन नहीं हो सकता ॥ १११ ॥

कौरव पाण्डव जानिबो क्रोध छमा को सीम ।
पाँचहिँ मारि न सौ सके सबै निपाते भीम ॥ ११२ ॥

अन्वय। क्रोध और चमा को सीम कौरव पाण्डव जानिबो, सौ पाँचहिं न मारि सके भीम सबै निपाते ।

कोप और क्षमा की सीमा दुर्योधनादि कौरवों और युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को जानना चाहिये। क्योंकि दुर्योधन आदि सौ भाई मिल के युधिष्ठिर आदि पाँचो भाइयों को नहीं मार सके परन्तु अकेले भीम ने सब भाइयों को क्रम क्रम से मार गिराया।

पाण्डवों में युधिष्ठिर ऐसे क्षमाशील थे कि दुर्योधन ने लाक्षा-भवन में जराना द्रौपदी की चीर खींचवाना, जूवा खेलवा कर सर्वस्व ले कर बारह वर्ष बनबास और एक वर्ष अज्ञात बास करने के लिये सभों को राज्य से निकाल देना आदि अनेक उपाय और उपद्रव किये। परन्तु पाण्डव लोग सब सहते चले गये। इस क्षमा का फल अन्त को ऐसा हुआ कि पाँचो पाण्डवों ने थोड़ी सी सेना की सहायता से कौरवों की महा सेना को मार गिराया।

उसी पर तुलसी-दास-जी ने लिखा है कि क्रोधान्ध दुर्योधन अनेक सहाय और सौ भाइयों के साथ रह कर भी पाण्डवों को न मार सका। और थोड़े सहायकों को इकट्ठा कर पाण्डवों में भीम ने सब भाइयों को मार डाला ॥११२॥

जो मधु दीन्हें तें मरै माहुर देउ न ताउ।
जग जिति हारे परसु-धर हारि जिते रघु-राउ ॥११३॥

जो मधु दीन्हें ते मरै ताउ मांहुर न देउ परसु-धर जग जिति हारे रघु-राउ हारि जिते।

जो कोई मधु आदि मीठी वस्तु देने से मरे उसे संखिया आदि विष मत दो। परशुराम जी को जिन्हों ने संसार भर के क्षत्रियों को

जीत लिया था रघुकुल भूषण रामचन्द्र जी ने हरा कर प्रार्थना आदि के द्वारा जीत लिया।

सदा की यह रीति है कि जो काम क्षमा आदि के द्वारा सहज में हो सकता है, उस के लिये क्रोधादि कर के बड़ा परिश्रम करना नीति से विरुद्ध है। इस विषय में दृष्टान्त देते हैं कि धनुर्यज्ञ के समय अत्यन्त क्रोधी परशुराम जी जनकपुर में आ कर रामचन्द्र जी के ऊपर क्रोध कर कटु-बचन-रूपी बाण छोड़ने लगे और रामचन्द्र जी नम्रता के साथ कोमल २ वाणी से उन के क्रोध को घटाने लगे। अन्त को क्षमा गुण के द्वारा रामचन्द्र जी ने परशुराम को ऐसा हराया कि उन से धनुष ले कर परशुराम जी के पुण्य लोकों को राम ने नशाया।

क्रोध कर के कुवचन कहना बहुत हानि-कारक है। और क्षमा करना बड़ा सुखदाई होता है। इस कारण कोपित हो कर कुवचन बोलना न चाहिये॥ ११३॥

क्रोध न रसना खोलिये बरु खोलब तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित बोलब बचन बिचारि॥ ११४॥

रसना क्रोध न खोलिये बरु तरवारि खोलब सुनत मधुर हित परिणाम बचन बोलब।

जिह्वा के द्वारा कटु-बचन बोल कर अपने हृदय के कोप को प्रगट न करना चाहिये। क्योंकि क्रोध वशीभूत मनुष्य ऐसा २ बचन

खोल सकता है, जिस का करना बहुत कठिन है। कटु-वचन-रूपी बाण से बिंधे-हुये शत्रु से सन्धि होने पर भी भय रहता है। इस लिये राज नीति कटु-वचन के द्वारा क्रोध दिखलाना मना करती है। वरन शत्रु को मारना हो तो तरवार खोल कर उसे मार डालना चाहिये सुनने में मीठा और अन्त में हित कारक वचन सदा बोलना चाहिये। क्रोध के वश कटु-वचन बोलना सदा नीति के विरुद्ध है, क्योंकि इस से संसार में बहुत से शत्रु हो जाते है और दुष्कीर्ति भी होती है ॥ ११४ ॥

तुलसी मीठो समय तेँ माँगी मिलै जो मीच ।
सुधा सुधा-कर समय बिन कालकूट तेँ नीच ॥ ११५॥

अन्वय। तुलसी समय तेँ जो माँगी मिलै तो मीच मीठो समय बिन सुधा-कर सुधा काल-कूट तेँ नीच।

तुलसी-दास कहते हैं कि उचित समय में यदि माँगी मृत्यु मिलै तो वह भी मीठी जान पड़ती है, परन्तु कुसमय में चन्द्रमा और अमृत भी हलाहल विष से भी दुःख-दाई होते हैं।

आशय यह है कि आवश्यक समय पर यथा पतिव्रता स्त्री के पति मर जाने के समय में अत्यन्त दुःखी रोगी के लिये यदि माँगी हुई मृत्यु मिले तो वह बड़े सुख का कारण होती है। उसी प्रकार पति के वियोग-रूपी अग्नि से जलती हुई विरहिनी के लिये अमृत के किरणवाला चन्द्रमा दुःख-दाई और अनेक रोगों से पीड़ित

दीर्घ रोगी के लिये अमृत के समान स्वाद भोजन विष का काम देता है। इस कारण सु-समय कु-समय वस्तु के गुण अवगुण को घटा बढ़ा देते हैं ॥ ११५॥

पाही खेती लगन बडि रिन कु-ब्याज मग-खेतु ।
बैर आपु तेँ बडन तेँ किया पाँच दुख हेतु ॥ ११६ ॥

अन्वय। पाही खेती, बड़ी लगन, कुब्याज रिन, मग खेतु आपु तेँ बड़न तेँ बैर, पाँच दुख हेतु कियो।

अपने घर से दूर पर खेत बोना, बड़ी प्रीति, बहुत ब्याज बढ़ानेवाला ऋण, राह पर का खेत, और अपनी अपेक्षा बड़े लोगोँ की शत्रुता पाँचो दुःख के लिये किये जाते हैँ अर्थात् इन के करने से मनुष्य को दुःख होता है।

आशय यह है कि दूर की खेती पहले तो वहाँ सब अन्नादि वस्तु ले जा कर बोना फिर उस की रक्षा करना बहुत कठिन होता है इस लिये सुख चाहे तो इसे त्याग करे। बड़ी प्रीति भी अन्त मेँ वियोग होने से बहुत दुःखदाई होती है। इस कारण अत्यन्त प्रेम ईश्वर को छोड़ कर और किसी मेँ अन्त को सुखदाई नहीँ होता। अथवा बड़ी लगन का अर्थ अनेक लोगोँ से वा आप से बड़े से प्रीति भी दुःखदाई होती है। क्योँकि शास्त्र मेँ समान से प्रीति करना लिखा है अथवा एक मन को कहाँ कहाँ लगावे। ऐसा ऋण जिस का ब्याज बहुत हो बड़ा दुःखदाई होता है। क्योँकि उस से छुटकारा पाना बड़ा कठिन है। राह के समीप

खेती रहने से गौ आदिक जो पशु जाते हैं सो चार कवर खा लेते हैं। इस प्रकार सहज में खेती उजाड़ हो जाती है। और अपने से बलवान की शत्रुता अपने लिये नाश-दुःखकारी होती है। इस कारण इन पाँचो दुःखदाई वस्तुओं से बचना चाहिये॥ ११६॥

रीझि खीझि गुरु देत सिख सखहिँ सुसाहिब साध।
तोरि खाय फल होय भल तरु काटे अपराध॥ ११७॥

अन्वय। गुरु सिखहिँ, सखा सखहिँ साधु सुसाहिब (जगहिँ) रीझि खीझि सिख देत तोरि फल खाये भल होय, तरु काटे अपराध होय।

गुरु अपने चेलों को, मित्र अपने मित्र को, और साधु जन अथवा धर्मशील राजा प्रसन्न हो कर वा क्रोधित हो कर जगत के लोगों को, शिक्षा देते हैं। वृक्ष से फल तोड़ कर खाने में भलाई होती है परन्तु वृक्ष को काटने में अपराध होता है।

आशय यह है कि संसार में पढ़ानेवाला अपने सब शिष्यों को चाहे क्रोध कर वा प्रसन्नता-पूर्वक सत्य उपदेश देता है। उसी प्रकार मित्र मित्र को सज्जन लोग और राजा संसार के भले बुरे लोगों को वृक्षादि न काटने की भली शिक्षा देते हैं। परन्तु दुष्ट-जन यह नहीं सोचते कि वृक्ष रहेगा तो पुनः फल देगा और वृक्षादि को काट डालते हैं। यह बात न करना चाहिये। और अच्छे राजाओं को भी अपनी प्रजा को बचा कर उन से दण्ड आदि लेना चाहिये। अथवा गुरु और सखा अपने साधु शिष्य और मित्रों को प्रसन्नता से

और और बुरों को क्रोध से उपदेश देते हैं कि तोड़ कर फल खाना चाहिये॥ ११७॥

चढे बधूरहिँ चङ्ग जिमि ज्ञान तेँ सोक-समाज।
करम धरम सुख सम्पदा तिमि जानिबो कुराज॥ ११८॥

अन्वय। जिमि बधूरहिँ चढ़ो चंग, जिमि ज्ञान तेँ सोक समाज तिमि कुराज करम धरम सुख-सम्पदा जानिबो।

जिस प्रकार बवंडर में पड़ा हुआ पतङ्ग, और जैसे तत्त्वज्ञान से दुःख समूह नष्ट हो जाता है उसी प्रकार खराब वा दुष्ट राजा के राज में सत्कर्म धर्म, सुख आरोग्यता आदि सम्पदा अन्न धन आदि की दशा जाननी चाहिये॥

आशय यह कि जैसे बवंडर में पड़ कर गुड्डी टूक टूक फट जाती है। ज्ञान से राग द्वेष मद मात्सर्य्य विला जाते हैं वैसे ही खराब राजा होने से प्रजाओं का यज्ञ पूजा तप दान सत्य शौच दया आदि सब धर्म और पुत्र पौत्र धन धान्यादि का सुख घट जाता है॥११८॥

पेट न फूटत बिन कहे कहे न लागत ढेर।
बोलब बचन बिचार युत समुझि सुफेर कुफेर॥११९॥

अन्वय। बिन कहे पेट न फूटत कहे ढेर न लागत (यातेँ) सुफेर कुफेर समुझि बिचार युत बचन बोलब।

किसी को निन्दा कु-वचन बिना कहे पेट नहीँ फटता और कहने से धन का ढेर भी नहीँ लग जाती तो अपने वचन की बुराई

भलाई समझ कर विचार पूर्वक वचन बोलना उचित है। क्योंकि किसी को बुरी बात कहने से उस की बुराई होती है और अपने को कोई लाभ नहीं होता इस कारण बहुत विचार के वचन बोलना चाहिये जो कोई बिना विचार बोलता है सो पीछे पछताता है॥११९॥

प्रीति सगाई सकल बिधि बनिज उपाय अनेक।
कल-बल-छल कलि-मल-मलिन डहकत एकहिँ एक॥
१२०॥

अन्वय। सकल बिधि प्रीत सगाई अनेक बनिज उपाय कल-बल-छल कलि-मल-मलिन एकहिँ एक डहकत।

सब प्रकार का प्रेम का सम्बन्ध अर्थात् सेवक स्वामी, स्वामी सेवक की भक्ति, मित्र मित्र का प्रेम, राजा प्रजा का पालन, पुत्र माता पिता ससुर आदि का आज्ञाकारी, स्त्री पुरुष आदि का प्रेम, जितने संसारी सम्बन्ध हैं, और व्यापार बनिज आदि करने की जो अनेक उपाय हैं। सब कल-बल अर्थात् कपट व्यवहार और छल अर्थात् ठगहारी आदि कलियुग के पापों से मलिन हो रहा है। इस कारण मनुष्य लोग एक दूसरे को ठग लेते हैं।

घोर कलिकाल में जितनी आपस की प्रीति आदि है सो अपना हित साधन के लिये वा धन-लाभ के लिये लोग करते हैं।

उसी प्रकार बनिज व्यापार में अनेक प्रकार कु-व्यवहार और ठगहारी फैल रही है। शिष्य गुरु छोटे बड़े प्रजा राजा असामी महाजन को ठगने की चेष्टा कर रहे हैं और कलियुग के पाप में पड़ रहे हैं॥१२०॥

दम्भ सहित कलि धरम सब छल समेत व्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब रुचि अनुहरत अचार॥
१२१॥

अन्वय। कलि सब धरम दम्भ सहित, सब व्यवहार छल समेत सब स्नेह स्वारथ सहित, सब अचार रुचि अनुहरत।

कलि युग में दानादि जितने धर्म हैं सब पाखण्ड युक्त हैं और देन-लेन आदि व्यापार कपट युक्त है भाई बन्धु आदि की प्रीति अपनी भलाई के सहित है और सब का चाल-चलन अपने मन के अनुसार है।

अभिप्राय यह कि सत्य, शौच, तप, दान, तीर्थ, व्रत, साधुसेवा पितृभक्ति आदि जितने वर्ण और आश्रम के धर्म हैं सब कपट से भरे हुए हैं बनिज व्यापार लेन-देन आदि लौकिक व्यवहार सब छल छिद्र से पूर्ण हैं, सब लोग स्वार्थ के लिये प्रीति करते हैं सच्चा प्रेम बहुत कम पाया जाता है जैसा वेद में लिखा है और धर्म शास्त्र जैसा बतलता है उन्हें छोड़ कर मन मानता आचार व्यवहार करते हैं इस प्रकार सब कर्म कलि में बिपरीत और स्वार्थ से भरे हुये हैं॥ १२१॥

धातु बन्धी निरुपाधि बर सद्-गुरु-लाभ स-भीत।
दम्भ दरस कलि-काल मँह पोथिन सुनिय सुनीत॥
१२२॥

अन्वय। निरुपाधि धातुबंधी, सद्गुरु लाभ वर, कलिकाल मँह निरुपाधि सभीति दंभ दरस, पोथिन सुनीति सुनिय।

कलि में निर्दोषता केवल धातु ही में बंध गई है अर्थात् सोना चांदी आदि धातुओं में जो मैल और मुरचा आदि लग जाते हैं वे मसाले आदि से दूर किये जा सकते हैं, उत्तम गुरु का मिलना ही बड़ा भारी लाभ है। और दर्श (अर्थात् दर्शन के लिये देवतादिक का मन्दिर) पाखण्ड युक्त और भय सहित है, और अच्छी नीति की बातें केवल पुस्तकों में देखने में आती हैं, लोक व्यवहार में उस का प्रचार बहुत कम देख पड़ता है॥

इस कराल कलिकाल में भूमि पर के पदार्थ उपाधि से भरे हैं, मनुष्यादि में कफ वात पित्त की अधिकाई क्षुधा, पिपासा, रोग, दुःख, देखने में आते हैं लाभ भी सब भय से भरे हुए हैं, केवल यदि कोई उत्तम गुरु मिल जाय तो उस के उपदेश से परम लाभ हो सकता है, अथवा सद्गुरु का मिलना ही परम लाभ है, और सब लाभ मित्रता आदिक भय से सदोष है, क्योंकि जिस से मित्रता कीजिये वह कपट के द्वारा अपना ही अर्थ साधता है, सच्चे मित्र का मिलना बहुत कठिन है, केवल लाभ के लिये लोग मित्रता करते हैं, दर्शन के योग्य देवतादि के मन्दिर लोगों ने बनवाये हैं, उन में प्रत्यक्ष कोई देवता तो देख पड़ती नहीं परन्तु दम्भ पाखण्ड बहुत है, और नीति का व्यवहार मनुष्यों में होना चाहिये सो तो कलियुग में सुनीति से चलनेवाले बहुत कम देख पड़ते हैं परन्तु पुस्तक नीति के वर्णन से भरी हैं, इस दोहे में परिसङ्ख्या अलङ्कार है॥ १२२॥

फोरहिँ मूरख सिल सदन लागे अढुक पहार।
कायर क्रूर कुपूत कलि घर घर सरिस उहार॥१२३॥

अन्वय। मूरख पहार उढ़ुक लागे सदन सिल फोरहिँ कलि घर घर कायर क्रूर कुपूत उहार सरिस।

कलि युग मेँ मूर्ख लोग पहाड़ पर चोट लगने पर घर मेँ आ कर सिल अर्थात् मसाला पीसने के छोटे २ पत्थल को फोरते हैँ। इस लिये तुलसी-दास कहते हैँ कि कलि युग मेँ प्रत्येक घर मेँ भीरु और निर्दयी कुसन्तान उहार अर्थात् भले कामोँ को छिपाने के ढपने के समान देख पड़ते हैँ।

अभिप्राय यह कि इस कलिकाल मेँ ऐसे २ मूर्ख हैँ जो बिना लाभ के दुसरोँ की हानि करने मेँ आनन्द पाते हैँ भारी पहाड़ मेँ जहाँ उन का बश नहीँ चल सकता अपना पराक्रम नहीँ दिखलाते, और घर मेँ आ कर, छोटे२ पत्थलोँ को फोड़ते हैँ वा छोटे२ जीवोँ को दुःख देते हैँ, और जो कुछ भला काम भी किसी घर मेँ है भी उसे वे बुरा२ काम कर के परदे के समान ढ़ाप लेते हैँ।

भाषा मेँ यह कहावत "कि अढ़ुके पहार फोरै घर को सील" प्रसिद्ध है, और वही कहावत इस दोहे मेँ आई है, इस कारण यहाँ लोकोक्ति अलङ्कार समझना चाहिये। कोई२ टीका कार लिखते हैँ कि "घर की सिल घर के लगे पत्थल फोरते हैँ अढ़ुक पहाड़ पहाड़ से पत्थल नहीँ लाते" यह टीका भ्रम से की जान पड़ती है क्योँकि इस अर्थ मेँ कोई चमत्कारी नहीँ आती॥१२३॥

जो जगदीस तो अति भलो जो महीस तो भाग।
जनम जनम तुलसी चहत राम-चरन अनुराग॥१२४॥

* अन्वय। जो जगदीस तो अति भलो जो महीस तो भाग, तुलसी जन्म जन्म राम-चरन अनुराग चहत॥ १२४॥

ऊपर कई एक दोहों में कलि-काल का वर्णन कर के अब राम-चन्द्र में अपने अति अनुराग और सतसई की प्रशंसा के साथ ग्रंथ की समाप्ति वर्णन करते हैं॥

जो लोग इस जगत् के स्वामी श्री-कृष्ण-चन्द्र आनन्दकन्द को भजते हैं वे बहुत अच्छा काम करते हैं, और जो (महीश) इस संसार के राजा सब गुणों के धाम श्री-राम-चन्द्र का भजन करते हैं, उन का भी बड़ा भाग्य है, अर्थात् अपने २ इष्ट देवों के सब उपासक सब प्रशंसा योग्य हैं, परन्तु तुलसी-दास जी जन्म जन्म श्री-राम-चन्द्र जी के चरणा-ऽरविन्द में अपनी भक्ति चाहते हैं॥

इस दोहे के विषय में नीचे लिखी हुई कथा प्रसिद्ध है।

एक समय जब तुलसी-दास जी ब्रज में गये तो वहाँ के रहने-वाले श्री-कृष्ण के उपासकों ने चाहा कि तुलसी-दास राम को छोड़ कृष्ण की भक्ति करें और तुलसी-दास से कहा कि भगवान् विष्णु के साक्षात् स्वरूप श्रीकृष्ण भगवान् को छोड़ कर अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र को आप क्यों भजते हैं। इस बात का उत्तर तर्क वितर्क के द्वारा न दे कर श्री-तुलसी-दास जी ने सीधी रीति और कोमल वचन से यह कह कर दिया कि त्रिभुवन के स्वामी अन्तर्यामी श्री-कृष्ण भगवान् की उपासना भली है, परन्तु मेरे चित्त के चोर, राजाओं में

प्रधान, कोशल-किशोर, श्री-राम-चन्द्र जी हैं। उन की सेवा को, और उन के चरण-कमल के मकरन्द को मेरा मन-मधुप सर्वदा पान करने में अत्यन्त सुख पाता है। इस कारण मैं जन्म जन्म उन्हीं के चरण-कमल की भक्ति चहता हूँ।

तुलसी-दास जी के जीवन चरित में भी यह बात मिलती है, कि नाभा जी से भेंट करने के अनन्तर जब तुलसी-दास जी ने श्री-कृष्ण भगवान् का दर्शन किया तो वहाँ कई वैष्णवों ने व्यङ्ग वचन कहा जिस के उत्तर में तुलसी-दास जी ने यह दोहा पढ़ा।

का बरणौं छबि आज की भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष-बान ल्यो हाथ॥ १२४॥

का भाखा का संसक्रित बिभव चाहिये साच।
काम जो आवै कामरी का लै करिय कमाच॥ १२५॥

अन्वय। साच बिभव चाहिये का भाषा का संस्कृत जो कामरी काम आव (तौ) कमाच लै का करिय॥ १२५॥

चाहे संस्कृत हो चाहे भाषा हो उस में सच्चे ऐश्वर्य्य का वर्णन होना चाहिये इस बात में दृष्टान्त देते हैं कि कमरी से यदि अधिक काम निकले, तौ (कमाच) रेशमी जामों को ले कर क्या कीजिये।

अभिप्राय यह कि यदि कोई शङ्का करे कि संस्कृत विद्या के रहते गोस्वामी तुलसी-दास जी ने राम-चरित को भाषा में क्यों वर्णन किया तो इस का उत्तर यही है कि राम-चन्द्र के चरित-रूपी उत्तम विषय को चाहे। जिस भाषा में वर्णन कीजिये उत्तम-ही होगा। और कलि युग में संस्कृत जानने-वाले लोग बहुत नहीं हैं। इस कारण

भाषा में वर्णन करने से अधिक लोगों के बोध-गम्य होगा। और संस्कृत में वाल्मीकि जी ने राम-चरित वर्णन किया-ही है। भाषा में राम-चरित नहीं था। इस कारण तुलसी-दास जी ने भाषा-ही में रामायण बनाई। इस के विषय में कमरी का दृष्टान्त दे कर के, यह सूचित करते हैं, कि वह रेशमी वस्त्र की अपेक्षा अधिक काम देती है। जब जल दृष्टि आई, तो कमरी ओढ़ जल से बचे। विश्राम करना हुआ, तो उसे बिछा कर लेट गये। शीत लगा, तो झाड़ कर ओढ़ लिया। इस प्रकार कमरी अधिक काम देने-वाली है॥ १२५॥

बरन बिसद मुकता सहस अर्थ सूच-सम तूल।
सतसैया जग वर बिसद गुन-सोभा-सुख-मूल॥१२६॥

अन्वय। बिसद बरन मुकता सदृस अर्थ सूत्र, सम तूल जग-वर सोभासुख-मूल सतसैया गुन बिसद।

अब मोती की माला और सतसैया का रूपक वर्णन करते हैं। सतसई के अक्षर निर्मल मोती के समान हैं और उस के अर्थ मोती गुथने की रूई के सूत के समान हैं। इस प्रकार सुन्दर शोभा और आनन्द की जड़ इस संसार में सतसई-रूपी माला निर्मल है॥

अभिप्राय यह कि इस संसार में सुन्दर २ शब्द-रूपी मोतियों से गुथी हुई सतसई-रूपी माला को जो कोई कण्ठ में धारण करेगा, वह परमानन्द पावेगा, क्योंकि सतसैया में शोभा, गुण, दोनों, पाये जाते हैं॥ १२६॥

बर माला बाला सुमति उर धारै युत नेह।
सुख सोभा सरसाय निति लहै राम पति-गेह॥१२७॥

अन्वय। सुमति बाला नेह युत बर माला उर धारै, (तौ) निति सुख शोभा सरसाय राम-पति को गेह लहै,॥ १२७॥

सुन्दर बुद्धि-रूपी स्त्री अथवा (बाला) के (वाला) पाठ करने से (सुमति-युत) पुरुष अपने कण्ठ वा हृदय में धारण करै, तो सर्वदा आनन्द-रूपी शोभा सरस होती जाय, और अन्त के स्वामी राम-चन्द्र जी के धाम अर्थात् स्वर्ग को पावे।

अभिप्राय यह कि सतसई के भक्ति से युत पढ़ने-वाले जन राम-भक्ति और विष्णु लोक के पाते हैं॥ १२७॥

भूप कहहिँ लघु गुनिन कहँ गुनी कहहिँ लघु भूप।
महि गिरि पर गत लखत जिमि तुलसी खरब स्वरूप॥
१२८॥

अन्वय। भूप गुनिन कहँ लघु कहहिँ गुनी भूप कहँ लघु कहहिँ तुलसी जिमि महि-गत गिरि-गत खरब स्वरूप लखत (तथा) गिरि पर गत महि पर गत खरब स्वरूप लखत॥ १२८॥

राजा-लोग गुणी-लोगों के अपने से छोटा कहते हैं, और गुणी-लोग राजा-लोगों के अपने से छोटा कहते हैं। इस पर तुलसी-दास जी दृष्टान्त देते हैं, कि जिस प्रकार मही पर के मनुष्य परबत पर के मनुष्य के छोटा देखते हैं, और परबत पर के मनुष्य भूमि पर के मनुष्यों के छोटा देखते हैं, परन्तु वस्तुतः अपने अपने स्थान पर दोनों बराबर हैं।

अभिप्राय यह कि धन के लाभ की इच्छा से गुणी-लोग आप जा कर राजाओं के यहाँ रहते हैं, तब राजा लोग उन्हें अपना नौकर जान के छोटा समझते हैं। परन्तु जब गुणी निर्लोभ रहता है, तो राजा लोग प्रार्थना कर गुणी को अपने दरबार में स्वयं बोलाते हैं, ऐसी

अवस्था में गुणी लोग राजा को छोटा समझते हैं। इसी पर दृष्टान्त दिया गया है, कि अपनी अवस्था में एक दूसरे को छोटा समझता है, परन्तु गुणी अधिक आदर-योग्य होता है। क्योंकि बिना उस के राजाओं की सभा की शोभा नहीं हो सकती जिस के विषय में हितोपदेश का यह श्लोक निर्णय करता है।

(विद्वत्वञ्च नृपत्वञ्च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते) ॥

कि विद्वान् और राजा किसी प्रकार समान नहीं हो सकते, क्योंकि राजा अपने-ही देश में पूजा जाता है, और विद्वान् सब ठौर पूजे जाते हैं।

**दोहा चारु बिचारु चलु परिहरि बाद-बिबाद।
सुक्रित सीम स्वा-ऽरथ अवधि परमा-ऽरथ मर्याद॥१२९॥**

इति श्री-गोस्वामि-तुलसी-दास-कृत-सप्तशतिकायां
राजनीति-निरूपणं नाम सप्तमः सर्गः॥

समाप्ता चेयं सप्तशती ॥

अन्वय। सु-कृत सीम स्वारथ अवधि परमारथ मर्याद चारु दोहा बिचारु बाद-बिवाद परिहरि चलु॥ १२९ ॥

सु-कृत (पुण्य की) सीमा, और अपने अर्थ के सिद्ध करने की अर्थात् लोक सुख की मर्यादा है, और पर-लोक सुख की अवधि है। सुन्दर दोहों को विचार कर और वाद अर्थात् हठ पूर्वक झगड़ा और क्रोध के सहित तर्क वितर्क को छोड़ कर इस सतसैया के दोहे के अनुसार चलिये।

अभिप्राय यह कि सतसई के जो दोहे हैं वे राम नाम के गुण से भूषित होने के कारण परम पुण्य के देने-वाले हैं, और लोक सुख के बढ़ाने-वाले हैं। क्योंकि इन में धर्म और नीति का भी वर्णन है, और राम-भक्ति के द्वारा मुक्ति की भी मर्यादा को देने-वाले सतसैया के दोहे हैं। जो कोई तर्क वितर्क और मत-सम्बन्धी झगड़ों को छोड़ कर इस के अर्थ को भली भाँति विचार कर चलेगा वह सुख पावेगा।

सतसई में वर्णन की गई नीति की बातों को विचार कर, उन के अनुसार चलने से मनुष्य राग द्वेष से छूट कर, वाद-विवाद-हीन हो सकता है। छठवें सर्ग के वर्णन को पढ़ कर ज्ञान पा सकता है। तृतीयादि सर्ग के कूट दोहों को जानने से कूट-स्थ परमेश्वर का ज्ञान होता है, जिस से लोक माया से छूट कर मनुष्य मन में ईश्वर की भक्ति उत्पन्न होती है, जिस से परमेश्वर की प्रसन्नता होगी और जीव को परम-सुख मिलेगा।

इस प्रकार सब वस्तुओं का वर्णन कर अंत में परमार्थ की प्राप्ति का निर्देश किया॥ इति शुभम्॥

दोहा।

काशी सुख-राशी निकट मथुरा-पुर इक ग्राम।
जिला यमनपुर मध्य जो बसत परम अभिराम॥ १॥
तहाँ रहे द्विज-कुल-कमल-बन्धु बन्धु-सुख-धाम।
"रछपाल चौबे" परम-रम्य शुद्ध-गुन-ग्राम॥ २॥
श्री पण्डित रछपाल के पुत्र बिहारी विप्र।
काव्यामृत रस-स्वाद जो लाभ कीन्ह अति छिप्र॥ ३॥
वर्ष चन्द्र शर अङ्क भू आश्विन सित तिथि सात।
सतसैया संक्षिप्त शुभ टीका कीन्ह समाप्त॥ ४॥

अन्त में शिवाष्टकरूप मङ्गल ॥

लीजिये प्रणाम नाम-मन्त्र मोहिं दीजिये।
विश्वनाथ पाप से विमुक्त मोहिं कीजिये ॥
क्यों विलम्ब होत नाथ शीघ्र दुःख छीजिये।
आपनी पुरी निवास मोहिं शम्भु दीजिये ॥ १ ॥
हे भुजङ्ग अङ्ग धारि भङ्ग को अहारिये।
गङ्ग के तरङ्ग शीश बीच भूति धारिये ॥
मोर मोह काम क्रोध दूर आशु कीजिये।
आपनी पुरी निवास मोहिं शम्भु दीजिये ॥ २ ॥
मै न कौन पुण्य पाप जाल मोर नासिये।
दीन हीन मैं मलीन बुद्धि मो प्रकाशिये ॥
भुक्ति मुक्ति शक्ति दान नाथ आप कीजिये।
आपनी पुरी निवास शम्भु मोहिं दीजिये ॥ ३ ॥
कोटि कोटि सूर्य्य के प्रकाश तें प्रकाशिये।
हे महेश मोर क्लेश शीघ्र क्यों न नाशिये ॥
दास मैं न आश और पास क्यों न लीजिये।
आपनी पुरी निवास मोहिं शम्भु दीजिये ॥ ४ ॥
मोर चित्त वित्त मत्त ताहि आशु शासिये।
धर्म्म कर्म्म दान दच्छ क्यों न प्रेम फासिये ॥
आप क्यों न हो दयाल आशु ही पसीजिये।
आपनी पुरी निवास मोहिं शम्भु दीजिये ॥ ५ ॥

नित्य विल्व पत्र भार मोर आप लीजिये।
मोहि मोह-हीन और भक्ति-लीन कीजिये॥
आशुतोष क्यों न छिप्र नम्र देखि रीझिये।
आपनी पुरी निवास मोहिँ शम्भु दीजिये॥ ६॥
और दान भो दयाल मोहि नाहिँ चाहिये।
भक्तिदान श्री कृपाल नेम यों निबाहिये॥
मैं हुँ दीन दुःख छीन भक्ति-पीन कीजिये।
आपनी पुरी निवास शम्भु मोहिँ दीजिये॥ ७॥
मध्यजट्टजूट गङ्गधारिकीर्ति गाइये।
देवराजवास सी पुरी सुवास पाइये॥
सच्चरित्र के पवित्र गान प्रेम भीजिये।
आशुतोष की पुरी निवास आशु लीजिये॥ ८॥
काशिका निवास आठ पद्य नित्य गाइहैं।
शम्भु के समीप जो निवास चैां मनाइहैं॥
दीन हीन हो "बिहारि" भक्ति चित्त लाइहैं।
काशि वास ईश भक्ति सो अवश्य पाइहैं॥ ९॥

इति विहारिकृता सप्तशतिका-संचिप्त-टीका समाप्ता॥

(ओं तत्सत्)॥